पाठ्यक्रम का परिचय –

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर में 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (MAST-113 N) नामक प्रश्न–पत्र निर्धारित है। इसमें कुल 04 खण्ड एवं 13 इकाईयाँ हैं। प्रश्न–पत्र 100 अंकों का है जिसमें 70 अंक की सैद्धान्तिक परीक्षा होगी एवं 30 अंक कर अधिन्यास पत्र लिखकर जमा करना अनिवार्य है।

खण्ड – क

इकाई–1

रामायण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य।

1.1 ऐतिहासिक महाकाव्यों की विकास–परम्परा।

1.2 रामायण का संक्षिप्त परिचय आदिकवि वाल्मीकि।

1.3 रामायण का रचनाकाल।

1.4 रामायण की आदिकाव्यता।

1.5 रामायण की शैली तथा रामायण का सांस्कृतिक महत्त्व।

1.6 उपजीव्य काव्य के रूप में रामायण।

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन द्वारा शिक्षार्थियों का रामायण के महत्त्व, मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जीवन से जुड़ी अन्यान्य बातों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी। रामायण महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित प्रथम महाकाव्य है, जिसके बाद वाल्मीकि 'आदिकवि' कहलाये। शिक्षार्थी रामायण के धार्मिक, सामाजिक मूल्यों, रामायण की काव्यशैली, रामायण के कथानक पर परवर्ती ग्रन्थों का प्रभाव, रामायण के पात्रों का चरित्र–चित्रण आदि विषयों से अवगत हो सकेंगे। वाल्मीकि ने मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के आदर्श चरित्र का अंकन रसात्मिका शैली के द्वारा किया है, जिसमें केवल स्रोत सुख देने वाले वर्णों का विन्यास न होकर सहृदयों के हृदय को मुग्ध करने वाले वाग्विलास भी अधिक है। इसके आधार पर शिक्षार्थी भारतीय संस्कृति के मूल्यों को आत्मसात कर सकेगा।

1.1 ऐतिहासिक महाकाव्यों की विकास–परम्परा –

भारतीय साहित्य में पुराणों के साथ इतिहास वेद के समकक्ष माना जाता है। ऋक् – संहिता में ही इतिहास से युक्त मन्त्र है। छान्दोग्य उपनिषद में सनतकुमार से प्रभावित ब्रह्मविद्या सीखने के समय अपनी अधीत विधाओं में नारद मुनि ने 'इतिहास पुराण' को पंचम वेद बतलाया है।

ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेद सामवेदमाथर्वणां।
चतुर्थवेदं वेदशब्दस्य प्रकृतत्वात् –
इतिहास–पुराणं पंचमं वेदम्"।। (छान्दोग्य 7/9)

यास्क ने निरुक्त में ऋचाओं के विशदीकरण के लिये ब्राह्मण ग्रन्थों तथा प्राचीन आचार्यों की कथाओं को 'इतिहास–माचक्षते' ऐसा कहकर उद्धृत किया है। वेदार्थ के निरुपण करने वाले विभिन्न सम्प्रदायों में ऐतिहासिकों का भी एक अलग सम्प्रदाय था, इसका स्पष्ट परिचय निरुक्त से चलता है – 'इति ऐतिहासिकाः।' इतना ही नहीं, वेद के अर्थों को समझने के लिये इतिहास और पुराण का अध्ययन आवश्यक बताया गया है।

राजशेखर ने उपवेदों में इतिहास वेद को अन्यतम माना है। कौटिल्य की 'इतिहास' की कल्पना बहुत विशाल है, उदात्त है। वे सबसे पहले 'इतिहास वेद' की गणना अथर्ववेद के साथ करते हैं और इसके अन्तर्गत पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का अन्तर्भाव मानते हैं।

वेदों के समय में जो इतिहास की कल्पना हुई, जिसे पंचम वेद कहा गया और उसे चार भागों में विभक्त किया गया। जिसमें इतिहास शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयोग हुआ है –

(1) इतिहास

(2) पुराण

(3) गाथा

(4) नाराशंसी

(1) इतिहास – इतिहास का अर्थ है –इति+ह+आस, अर्थात ऐसी घटना हुई थी। वेदों में जो इतिहास वर्णित है, वह प्राचीन एवं शाश्वत है। जैसे – विराट ब्रह्म (अथर्व0 10/7), ज्येष्ठ ब्रह्म (अथर्व0 10/8), इन्द्र (अथर्व0 काण्ड/20)

(2) पुराण –पुरातत्व यानि पुराना जो पूर्व से है, जैसे – सृष्टि की उत्पत्ति, भूगोल, खगोल, विविध द्वीपों आदि का वर्णन।

(3) गाथा – इसमें प्राचीन कथाएं–नैतिक, वास्तविक, काल्पनिक – सम्मिलित हैं, जैसे– पुरुरवा–उर्वशी, विश्वामित्र नदी, अगस्त्य– लोपामुद्रा इत्यादि।

(4) नाराशंसी – इसमें वीरगाथा, वीर स्तुति ययातिः नहुषः (ऋ0 8–101–4 से 6 तक), नहुषः मानवः (ऋ0 9–101–4 से 7–9 तक), मरुतः परीक्षित आदि की गाथा।

वैदिक साहित्य में इन चारों का प्रयोग पारिभाषिक अर्थ में किया गया था। बाद में इन चार में से इतिहास, पुराण शब्द शेष रहे।

इस प्रकार विकास की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि, इतिहास से ऐतिहासिक काव्य, पुराण से पुरातत्वग्रन्थ, गाथा से कथा और आख्यान–साहित्य तथा नाराशंसी से एतिहासिक वीर–काव्य, रामायण, महाभारत आदि विकसित हुये। अतएव महाभारत में कहा गया है कि इतिहास और पुराण से वेदार्थ का सुस्पष्टीकरण एवं उसकी विशद व्याख्या होती है।

इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।

बिभेत्यल्प श्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

इतिहास के जिस व्यापक अर्थ का हमने निर्देश किया है, उसका समर्थन राजशेखर की काव्यमीमांसा से भी होता है। इतिहास दो प्रकार का है– (1) परिक्रिया (2) पुराकल्प

परिक्रिया से अभिप्राय उस इतिहास से है जिसका नायक एक ही व्यक्ति होता है, जैसे रामायण।

पुराकल्प अनके नायक वाले इतिहासग्रन्थ का सूचक है जैसे महाभारत।

राजशेखर के अनुसार भी ये दोनों ग्रन्थ रत्न 'इतिहास' के ही अन्तर्गत ठहरते है। राजशेखर का कथन ' काव्यमीमांसा' में इस प्रकार है–

"परिक्रिया पुराकल्पः इतिहास गतिर्द्विधा।

स्यादक नायका पूर्वा द्वितीया बहुनायका।।"

भारतीय काव्यसाहित्य के आधार तथा उपजीव्य हैं ये ही इतिहास पुराण, रामायण एवं महाभारत

रामायण

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।

तावत् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यन्ति।।

आदिकवि वाल्मीकि की वाणी पुण्यसलिला भागीरथी है, जिसका पान करके छात्र तथा कवि अपने आपको अमृतमयी काव्यशैली के हृदयावर्जक स्वरूप को भी समझने में कृतकार्य होते हैं। रामायाण एक ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें सर्वस्व त्याग, प्रचण्ड शौर्य, अनुपमभ्रातृप्रेम, ढ़ृढ निश्चय, धैर्य, अद्‌भुत सहिष्णुता और शील एवं भक्ति का चरम उदाहरण है, जिसके पान से पाठक जीवन के दुरुह एवं दुर्गम पथ को भी सरलता से पार कर सकता है। 'रामायण' शब्द की निष्पत्ति दो शब्दों के आधार पर हुई है – राम + अयन।

'अयन' शब्द का शाब्दिक अर्थ प्रयाण या अभियान होता है।

1.2 रामायण का संक्षिप्त परिचय, आदिकवि वाल्मीकि

महर्षि वाल्मीकि रचित महाकाव्य रामायण का मूल स्वरूप क्या था, उसमें कितने श्लोकों एवं उपाख्यानों का समावेश था। इस सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों से लेकर अन्यान्य विद्वानों तक अलग–अलग मत सामने आते हैं। जिसके बाद यह कहा गया कि '' चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्'' सम्प्रति महर्षि वाल्मीकि ने रामायण को सात काण्डों में विभाजित करके प्रस्तुत किया है।

रामायण कथा में सात काण्ड हैं – बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड। कतिपय विद्वान बालकाण्ड एवं उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं। इन सभी काण्डों में लगभग 24 हजार श्लोक निबद्ध हैं। इसलिये इसे –**''चतुर्विंशति–साहस्त्री संहिता''** भी कहते हैं। यह मुख्यतः अनुष्टुप् छन्द में निबद्ध है।

बालकाण्ड की कथा–

बालकाण्ड में राजा दशरथ का पुत्र के लिये पुत्रेष्टि करना जिसके बाद राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का जन्म–संस्कार, शील एवं सदृश गुणों का वर्णन मिलता है। लेकिन जन्म के बाद राम और लक्ष्मण का विश्वामित्र के यज्ञरक्षा के लिये वनगमन जाना, जनकपुर में राम द्वारा धनुषभङ्ग.के पश्चात् सभी भाइयों का विवाह एवं राजा दशरथ का पुत्रों एवं बन्धुओंसहित अयोध्या में प्रवेश और राम के कार्यनिष्पादन से सभी को पूर्ण सन्तोष होना आदि अनेक विषय कथा वस्तु में शामिल हैं। महर्षि वाल्मीकि का नारद के संवाद और राम की महिमा और राम के सदगुणों का पूर्ण वर्णन मिलता है। वाल्मीकि द्वारा शोकातुर क्रौञ्ची का करुण क्रन्दन करना और उनके द्वारा अनुष्टुप् छन्दों में शाप देने का वर्णन है। महर्षि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षाप्रसंग के अंतर्गत राम द्वारा राक्षसों का वध करना, गंगा की उत्पत्ति और महर्षि वशिष्ठ द्वारा महर्षि विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि की संज्ञा देना आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

अयोध्याकाण्ड की कथा–

महर्षि वाल्मीकि ने रामकथा के विकास का आरंभ इसी काण्ड से किया है। उनके बालकाण्ड के वर्णन में जहाँ राम और उनके भाइयों के बचपन से लेकर किशोर जीवन तक की बयार बहती है तो अयोध्याकाण्ड में राम का पूर्वाह्न दृष्टिगोचर होता है। इस काण्ड में ही प्रथम सर्ग में राम को विष्णु का अवतार कहा गया है–

''स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः।

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुस्नातनः''।।

नारद द्वारा वाल्मीकि के समक्ष वर्णित इस काण्ड के प्रतिपाद्य विषयों में प्रजा के कल्याणार्थ राम का राज्याभिषेक करने की राजा दशरथ की इच्छा, कैकेयी द्वारा दशरथ से दो वरों की याचना करना जिसमें

राम को 14 वर्ष का वनवास और राजकुमार भरत को राज्याभिषेक सम्मिलित है, जिसके बाद दशरथ द्वारा राम को वन जाने की आज्ञा देना, राम का पत्नी सीता एवं अनुज लक्ष्मण के साथ वनगमन, राम द्वारा गंगातट पर श्रृंगवेरपुर के निकट से मंत्रिवर सुमन्त्र को वापस भेजना, निषादपति गुह से मिलन, चित्रकूट प्रस्थान एव निवास करना, राम के शोक में दशरथ का स्वर्गगमन, राजा दशरथ की मृत्यु के उपरांत भरत का राज्याभिषेक से इंकार करना, भरत का चित्रकूट जाकर राम से मिलना एवं उनसे चरण पादुकायें प्राप्त करना, भरत का वापस लौटकर नंदीग्राम में रहकर राज्य चलाना आदि प्रसंग सामने आते हैं।

वाल्मीकि द्वारा प्रणीत इस काण्ड में कई और प्रसंग भी दृष्टिगोचर होते हैं। जिसमें दशरथ का कौशल्या के साथ संवाद, कैकेयी–भरत संवाद, मंथरा का कैकेयी से वार्ता, भरत का सेनासहित महर्षि भरद्वाज आश्रम में जाना, राम– अत्रि संवाद, राम का जाबालि से संवाद, सीता का सती अनुसुइया से संवाद, अनुसुइया द्वारा सीता को दिव्यमाल्यवस्त्र प्रदान करना आदि है।

अरण्यकाण्ड की कथा–

राम का अनुज लक्ष्मण और सीता के साथ दंडकारण्य में प्रवेश होता है, जहां पर विराधों द्वारा उन पर आक्रमण का प्रसंग आता है। विराध का वध, शरभङ्ग., अगस्त्य के कहने पर राम द्वारा ऐन्द्र धनुष स्वीकार करना। राक्षसों का वध करने के लिये मुनियों का राम के पास आना, शूर्पणखा प्रकरण, खरदूषण का बंधु–बांधवोंसहित वध, रावण का मारीच के पास जाकर संवाद करना, राम के आश्रम में मारीच की माया रचना और राम –लक्ष्मण का आश्रम छोड़कर जाना, जिसके बाद रावण द्वारा सीता का हरण करना, जटायु का वध, राम का विलाप, कबन्ध का वध और राम का शबरी के आश्रम में जाना और शबरी का दिव्यधाम को प्रस्थान करने की अपूर्व घटनाओं का वर्णन किया गया है।

इस काण्ड की प्रासंगिक कथाओं में अगस्त्य की महिमा, हेमऋतु का वर्णन, मारीच द्वारा रावण को उपदेश सुनाना, सीता और लक्ष्मण के साथ संवाद करना और सीता का रावण के साथ संवाद आदि शामिल कथानक भावपूर्ण है।

किष्किन्धाकाण्ड की कथा

किष्किन्धाकाण्ड में राम की पम्पासरोवर जाने पर बहुत भावविह्वल करने वाला वर्णन किया गया है। राम की व्याकुलता, हनुमान के साथ भेंट और ऋष्यमूक पर्वत पर जाना, सुग्रीव का राम के साथ मैत्री संवाद, राम द्वारा बालि के वध की प्रतिज्ञा करना, सुग्रीव द्वारा सीता की खोज में सहायता का वचन देना, सुग्रीव द्वारा बालि की शक्ति का वर्णन, किष्किन्धा में सुग्रीव का बालि से द्वन्द्व युद्ध करना, लेकिन राम द्वारा बालि को न पहचानना, ऋष्यमूक पर्वत पर वापस आना (सर्ग 11 से 12), पुनः सुग्रीव द्वारा बालि को युद्ध के लिये ललकारना, राम के बाणों से बालि का घायल होना, जिसके बाद राम और बालि के बीच संवाद करना, तारा का विलाप हनुमान द्वारा सांत्वना देना, बालि द्वारा सुग्रीव के हाथ अंगद को सौंपना, सुग्रीव का वानर सेना

बुलाना, राम का शरदऋतु वर्णन तथा सुग्रीव की कृतघ्नता दिखाना, लक्ष्मण का कुपित होना, जिसके बाद तारा और सुग्रीव की क्षमायाचना , सुग्रीव द्वारा चारों दिशाओं में वानर सेना का अभियान, अपने विश्वासपात्र हनुमान को दक्षिण दिशा में भेजना और राम द्वारा हनुमान को पहचान की अंगूठी देना। इसके बाद सर्ग 45 से 67 तक वानर सेना द्वारा खोज का अभियान सम्मुख आता है, जिसमें असफल होकर वानर सेना का उत्तर पूर्व और पश्चिम से वापस लौटना। स्वयंप्रभा की कंदरा में प्रवेश करना और सुग्रीव से भयभीत होना। संपाति के सामने अंगद द्वारा जटायु की मृत्यु का संकेत देना और वानरसेना को लंका की स्थिति बताना। जिसके बाद संपाति का पंखों का पुनः उगना, सागर तट पर जाम्बवान् द्वारा हनुमान् का सामर्थ्य जगाना और सर्ग 64 से 67 तक हनुमान का महेंद्र पर्वत से कूदने का वर्णन है।

सुन्दरकाण्ड की कथा–

महेन्द्र पर्वत से कूदकर हनुमान् का लंका प्रवेश (सर्ग 1 से 17) और समुद्र लांघते समय मैनाक का आग्रह करना, सुरसा से संवाद, सिहिंका वध, विशाल आकार में हनुमान् द्वारा लंका में प्रवेश, लंकादेवी को परास्त करना और अशोक वाटिका में प्रवेश करना जहाँ पर राक्षसों से घिरीं हुई सीता को देखना। इसी दौरान वहाँ पर रावण का आगमन (सर्ग 18 से 40), उसका सीता से अनुरोध करना और सीता द्वारा निवेदन ठुकराना, रावण के जाने के उपरांत त्रिजटा द्वारा राक्षस पराजय का स्वप्न बताना, सीता का विलाप और हनुमान द्वारा राम की मुद्रिका देना, हनुमान् – सीता का संवाद और अशोक वाटिका में हनुमान द्वारा जंबुमाली, अक्षय कुमार (सर्ग 41 से 47) सहित राक्षसों का वध करना। ब्रह्मास्त्र द्वारा हनुमान का बंधना और रावण की सभा में उनके पूँछ का दहन जिसके बाद उनके द्वारा लंका दहन करना। हनुमान् द्वारा वापस आकर राम को सीता का सुखद समाचार देना इस काण्ड का मुख्य विषय रहा है।

युद्धकाण्ड की कथा–

इस सर्ग में वाल्मीकि द्वारा सर्ग (1– 128) में सुग्रीव का सेतुबंध प्रस्ताव, हनुमान् द्वारा लंका का वर्णन। विभीषण से मंत्रणा और रावण द्वारा अपमानित होकर राम की शरण में आना। नल द्वारा सेतु बनाना, सुग्रीव और रावण का द्वन्द्व युद्ध, अंगद का दूत कार्य, अंगद द्वारा रावणपुत्र इन्द्रजित की पराजय, इन्द्रजित द्वारा राम लक्ष्मण को मोहपाश में बाँधना, राम का लक्ष्मण विलाप और हनुमान द्वारा औषधि लाना। राम –रावण का युद्ध, रावण का वध, विभीषण का विलाप और उनका अभिषेक कराना। राम द्वारा सीता को अस्वीकार करना, सीता का अग्नि परीक्षा, राम का अयोध्या वापस लौटना और रामराज्य के वर्णन तक की कथा है।

उत्तरकाण्ड की कथा–

अगस्त्य द्वारा रावणचरित के वर्णन के अंतर्गत रावण द्वारा उसकी विजय–यात्राओं का वर्णन, नलकुबेर का शाप, दंडकारण्य में खर–दूषण को भेजना, देवताओं से मेघनाद को वरदान, हनुमत्कथा, लोकोपवाद के कारण राम द्वारा सीता को त्यागना और सीता का वाल्मीकि आश्रम में जाना। शम्बूक वध, लक्ष्मण द्वारा

अश्वमेघ यज्ञ का प्रस्ताव, जिसमें लव–कुश द्वारा राम का गान, राम का वाल्मीकि को संदेश देना शुद्धि साक्ष्य के लिये सीता द्वारा पृथ्वी को बुलाना एवं लव–कुश द्वारा उत्तरकाण्ड का गान, लक्ष्मण की मृत्यु विभीषण एवं हनुमान को अमरत्व प्रदान करना, जिसके बाद राम द्वारा अपने भाइयों सहित विष्णु रूप में अंर्तभाव एवं नागरिकों के स्वर्ग की प्राप्ति तक की कथा है।

1.2 (I) आदिकवि वाल्मीकि

स व पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः।
ओंकार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः।। (रामायण मंजरी)

'कवीन्दुं नौमि वाल्मीकिं यस्य रामायणीं कथाम्।
चन्द्रिकामिव चिन्वन्ति चकोरा इव साधवः।।"

महर्षि वाल्मीकि को ब्रह्मा ने 'आद्यः कविरसि' कहकर सम्बोधित किया था। आज भी यह परम्परा बद्धमूल है कि, महर्षि वाल्मीकि आदिकवि और उनकी प्रथम रचना महाकाव्य रामायण आदिकाव्य है। वे विश्व के उन कवियों में अग्रणी हैं, जिनकी वाणी एक देशविशेष के प्राणियों का ही मंगल साधन नहीं करती और न ही किसी काल विशेष के जीवों का मनोरंजन करती है। संस्कृत–साहित्य के विकास में आदिम होने पर भी वाल्मिकि रामायण का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वाल्मीकि की अमृतमयी वाणी में सौन्दर्य–सृष्टि का चरम उत्कर्ष है तथा महनीय काव्य कला का औदात्य है। वाल्मीकि का रामायण 'महनीय कला' के लिये जिस आदर्श को काव्य गोष्ठी में प्रस्तुत करता है, वह काव्यरसिकों के बीच में सुचारू रूप से अपनी अभिव्यक्ति पा रहा है।

जीवन को ओजस्वी तथा उदात्त बनाने के लिये रामायण में जिन आदर्शों को वाल्मीकि ने अमर तूलिका से चित्रित किये हैं, वे भारतवर्ष के लिये ही मान्य और आदरणीय नहीं है, अपितु सम्पूर्ण मानव–मात्र के समक्ष उच्च नैतिक स्तर तथा सामाजिक उदात्तता की भावना को प्रस्तुत करते हैं। महर्षि वाल्मीकि विमल प्रतिभा से सम्पन्न, दैवीगुणों से युक्त, आर्षचक्षु रखने वाले एक महान् कवि थे। 'कवि' के वास्तविक स्वरूप की झलक आलोचकों को वाल्मीकि के दृष्टान्त से ही मिली।

संस्कृत की काव्य–धारा रसकूल का आश्रय लेकर प्रवाहित होगी– इसका परिचय उसी समय मिल गया जब प्रेमासक्त कौञ्च पक्षी जोड़े के आकस्मिक वियोग के करुण क्रन्दन को सुनकर वाल्मीकि के हृदय का शोक श्लोक के रूप में फूट पड़ा–"**शोकः श्लोकत्वमागतः**"। काव्य जीवन का रस है, काव्य की आत्मा रस है। यह आदिकवि वाल्मीकि के काव्य की आलोचना जगत् को महती देन है।

वाल्मीकि के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है– उदात्तता। पात्रों के चित्रण, प्रकृति के चित्रण, प्रसंगों का वर्णन तथा सौन्दर्य की स्फूर्ति में सर्वत्र उदात्तता स्वाभाविक रूप से विराजती है। आदिकवि के इस काव्य

मंदिर की पीठस्थली है – राम और जानकी का पावन चरित्र। राम शोभन गुणों के भव्य पुञ्ज है। वाल्मीकि ने ही हमें रामराज्य की सच्ची कल्पना देकर संसार के सामने एक आदरणीय आदर्श प्रस्तुत किया है।

महर्षि वाल्मीकि का यह काव्य शाश्वत काव्य है, क्योंकि, यह मानव जीवन के स्थायी मूल्यवान तत्त्वों को लेकर रचा गया है। यह मानव जीवन को राह दिखाने वाला, संकट के समय दीन का संरक्षण, आने वाली पीढ़ियों को राह दिखाने की क्षमता रखने वाला, विपत्ति में भी धैर्य प्रदान करने वाला, शरणागत की रक्षा आदि गुणों से परिपूर्ण है। इन्हीं गुणों की प्रतिष्ठा जीवन में स्थायित्व तथा महनीयता की जननी होती है।

भारतीय सभ्यता का यह इतिहास ग्रन्थ भी है, किन्तु आधुनिक इतिहास ग्रन्थों के समान एकमात्र घटनावलियों या तिथियों का इतिहास नहीं है, अपितु भारतीय संस्कृति और सभ्यता का चिरन्तन आदर्श ग्रन्थ है। 'वाल्मीकि रामायण' प्रायः प्रत्येक युग के कवियों और नाटककारों का आदर्श ग्रन्थ रहा है – 'मधुमय भणितीनां मार्गदर्शी महर्षि'। संसार में ऐसा लोकप्रिय काव्य ग्रन्थ मिल पाना कठिन है। सम्पूर्ण भारत एक स्वर में इसे पवित्र और आदर्श काव्यग्रन्थ स्वीकार करता है। कालिदास, भवभूति से लेकर गोस्वामी तुलसीदास के लोक साहित्य पर एवं भारतीय लोकजीवन पर रामायण का प्रभाव अक्षुण्ण रूप से पड़ा है।

1.3 रामायण का समय

रामायण के समय निर्धारण की बात करें तो कोई स्प्ष्ट मत नहीं प्राप्त हैं कि, किस समय इसकी रचना हुई। न ही इसका कोई मौलिक प्रमाण प्राप्त होता है। अधिकांशतः सभी मत अनुमानों पर आधारित हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय में बहुत शोधकार्य किया है, उससे जो कुछ निष्कर्ष प्राप्त हुआ उनमें –

वरदाचार्य के अनुसार राम त्रेतायुग में हुये। त्रेतायुग ईसा से 8 लाख 67 हजार 100 वर्ष समाप्त हुआ था। वाल्मीकि राम के समकालीन थे, ऐसा उनका अनुमान है। याकोबी के अनुसार 800 ई0पूर्व से 500 ई0 पूर्व का समय माना है, जबकि कामिल बुल्के ने 600 ई0पू0 का मानते हुये रामायण को पाणिनि, भास तथा कौटिल्य से पूर्व का बताया है तथा विन्टरनित्ज ने 300 ई0पू0 बताया है।

महाकवि अश्वघोष (78 ई0) ने अपने बुद्धचरित काव्य में रामायण के सुन्दरकाण्ड की अनेक उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं को निबद्ध किया है, यह निश्चित ही वाल्मीकि रामायण को आदर्श मानकर लिखी गई थी। चीनी स्त्रोतों से ज्ञात होता है कि, चौथी शताब्दी में बौद्ध विद्वान दार्शनिक वसुबन्ध के समय में रामायण को भारत के बौद्ध में प्रसिद्धि मिल चुकी थी। विमलसूरि ने रामकथा को अपने प्राकृत काव्य पउमचरिय (पद्मचरित) में परिवर्तित किया था।

महाभारत में रामोपाख्यान द्रौपदीहरण के समय युधिष्ठिर को सांत्वना देने के लिये, हरिवंश पुराण में तो रामायण को नाट्यरूप से मंच पर प्रस्तुत करने का उल्लेख मिलता है।

महाभारत में रामायण के पात्रों का उल्लेख मिलता है, परन्तु रामायण में महाभारत के पात्रों का उल्लेख नहीं मिलता है।

रामायण और महाभारत वैदिक साहित्य के बाद की रचनायें हैं, अतः इनकी पूर्व सीमा वैदिक काल की समाप्ति है।

रामायण में कोसल राज्य की राजधानी अयोध्या है। बौद्ध और जैन ग्रन्थों में अयोध्या का साकेत नाम से निर्देश है। अतः रामायण का रचनाकाल महावीर और बुद्ध से पूर्ववर्ती है।

बालकाण्ड की सूचना के अनुसार उत्तरी भारत का अंग, कान्यकुब्ज, मगध, मिथिला आदि छोटे राज्यों में बंटा था। यह राजनीतिक अवस्था बुद्ध पूर्व भारत में ही दृष्टिगोचर होती है।

रामायण के टीकाकार–

वाल्मीकि रामायण का महत्त्व केवल काव्यदृष्टि से ही नहीं है, प्रत्युत वह नाना वैष्णव सम्प्रदायों में एक उपास्य धार्मिक ग्रन्थ भी है। रामायण को आश्रय मानकर ग्रन्थों की रचना की गई है। मध्ययुग में रामायण की लोकप्रियता इतनी अधिक थी कि, पन्द्रहवीं व सोलहवीं शताब्दियों में कम से कम दस टीकायें लिखी गई हैं।

1)रामानुजीय – प्राचीन व्याख्यानों में रामानुज की यह व्याख्या नितान्त प्रसिद्ध है। ये वाधूलगोत्रीय वरदार्य के पुत्र थे। इस टीका को वैद्यनाथ दीक्षित तथा गोविन्द राज ने उल्लिखित किया है, जिसका समय है 1400 ई0 आसपास का।

2)सर्वार्थसार – इससे पश्चाद्वर्ती हैं। हारीतगोत्रीय वेंकटेश कृष्णाध्वरी रचित टीका है। ''पितृमेघसार'' नामक प्रख्यात धर्म निबन्ध के भी ये प्रणेता हैं। इनका समय 1475 ई0 के आसपास का है।

3)रामायण दीपिका – वैद्यनाथ दीक्षित (प्रख्यात धर्मग्रन्थ मुक्ताफल) की यह व्याख्या है। ये सर्वार्थसार को अपनी टीका में उद्घृत करते हैं और ईश्वर दीक्षित का उल्लेख करते हैं। इसलिये इनका समय 1500 ई0 के लगभग माना जाता है।

ऐसे ही रामायण तत्वदीपिका, रामायण भूषण, बाल्मीकि ह्रदय, अमृतफलक अथ रामायण तिलक, रामायण शिरोमणि,

4)धर्माकूतम – रामायण की आलोचनात्मक व्याख्या है जिसमें ग्रन्थकार ने बड़े प्रमाणों को उपन्यस्त कर दिखाया है कि, रामायण वेद तथा धर्मशास्त्र की शिक्षा और आदेशों का प्रतिपादक ग्रन्थरत्न है।

इस प्रकार वाल्मीकीय रामायण के सन्दर्भों व्याख्यानों अनुशीलनों की बहुत लम्बी परम्परा रही है। अनेकानेक साहित्यों की रचना रामायण को आधार बनाकर की गई है।

यूनानी प्रभाव – रामायण में केवल दो स्थानों पर यवन शब्द का प्रयोग है, जिसके आधार पर डा0 वेबर ने रामायण पर यूनानी सभ्यता का प्रभाव सिद्ध करने का प्रयत्न किया है।

श्रावस्ती– श्रीरामके पुत्र लव ने अपनी राजधानी श्रावस्ती बनाया था–

"गंङ्गाकूले निविष्टास्ते विशालां ददृशुः पुरम्"(1/45/9)

बुद्धकालीन राजा प्रसेनजित् की राजधानी अयोध्या रही है। अतः रामायण का बुद्ध से पूर्ववर्ती होना सिद्ध होता है।

रामायण का अधिकांश चित्रण, विशेषकर उसका सामाजिक चित्र पांचवीं शताब्दी ई0 पू0 का है। उसमें हमें पाँचवीं शताब्दी ई0पू0 के भारतीय समाज में आर्थिक राजनीतिक और धार्मिक जीवन का अच्छा चित्र मिलता है।

विन्टरनित्स ने यह सिद्ध किया है कि, वर्तमान परिवर्धित रामायण प्रथम या द्वितीय शताब्दी ई0पू0 में इस रूप में आ चुकी थी।

उपर्युक्त विवेचन से हम निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, मूल रामायण 600 ई0 पू0 के बाद की रचना नहीं है। इससे पूर्व इसकी रचना मानना भावी प्रमाणों की उपलब्धि पर निर्भर है। वर्तमान में 24 सहस्त्र श्लोकों वाली रामायण प्रथम और द्वितीय शताब्दी ई0 में निश्चित रूप से इस रूप में आ चुकी थी।

1.4 रामायण का आदिकाव्यत्व–

भारतीय साहित्यिक परम्परा में वाल्मीकिकृत रामायण आदिकाव्य और महर्षि वाल्मीकि आदिकवि माने जाते हैं। तमसा नदी के तट पर व्याघ्र द्वारा हत नर क्रौञ्च पक्षी को देखा और वाल्मीकि के मुख से प्रथम श्लोक निर्गत हुआ–

मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्च मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।। (वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड)

रघुवंश में कहा गया है– **श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः (14/70)**

यही उनके काव्य का प्रथम सूत्रपात था। महर्षि की करुणामयी वाणी को सुनकर स्वयं ब्रह्मा ने प्रकट होकर उनसे रामायण की रचना करने को कहा।

यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि, वाल्मीकि से पूर्व वैदिक रचनाएं पद्यात्मक और छान्दोमयी होने पर भी स्तुति, धर्म, यज्ञ, पूजा और आराधना के सन्देशों से ही आकण्ठ भरी हुईं थीं, किन्तु मानव चेतना से उनका सम्बन्ध उतना नहीं था। वाल्मीकि को चिन्ता हुई कि उनका काव्य किस प्रकार से जनसामान्य से संबद्ध हो?

नायक कौन हो? चतुर्वग की प्राप्ति का साधन, भाव, भाषा, अलंकार की दृष्टि से नवीनता लिए हो। लोक मनोरंजन के साथ ही लोक–परलोक दोनों का साधन हो।

नायक के रूप में नरश्रेष्ठ राम का चयन होते ही उनकी काव्यधारा बह चली। वैदिक गायत्री की पवित्रता प्रदान करने के लिये उनकी कविता एक–एक वर्ण पर एक–एक सहस्त्र श्लोकों को समर्पित करती हुई 'चतुर्विशति–साहस्त्री' संहिता बन गई।

जो आज भी त्रिपथगा के सदृश संसार में प्राणियों के पाप–सन्ताप को हरने वाली है। जो प्रतिदिन पुष्पित पल्लवित हो काव्यधारा को गति देती हुई बढ़ रही है। क्षेमेन्द्र ने 'रामायण मञ्जरी' में वाल्मीकि को प्रथम तथा सर्वोपजीव्य कवि कहते हुये अपने इन पद्यों में आदर दिया है–

"नमः सर्वोपजीव्यं तं कवीनां चक्रवर्तिनम्।
यस्येन्दुधवलैः श्लोकैर्भूषिता भुवनत्रयी।।
स वः पुनातु वाल्मीकेः सूक्तामृतमहोदधिः।
ओङ्कार इव वर्णानां कवीनां प्रथमो मुनिः।।"

भोज ने रामायणचम्पू में वाल्मीकि को मधुर काव्यशैली का प्रवर्तक कहा है–

"मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः" (1/8)

रामायण का सांस्कृतिक धार्मिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से जो भी महत्व हो इसका साहित्यिक मूल्य सर्वोपरि है। यह ग्रन्थ परवर्ती काव्य रचनाओं का उपजीव्य है। रामायण की कथा तथा शैली दोनों का प्रयोग परवर्ती रचनाओं में हुआ। रामायाण की कथा की अमरता के विषय में रामायण में ही संकेत दिया गया है–

"यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।। (वाल्मीकि रामायण 1/2/36)

रामायण का 'आदिकाव्यत्व' इसकी भाषा शैली के संस्कृत जगत् में व्यापक अनुकरण के कारण भी है।

1.5रामायण का सांस्कृतिक महत्व–

रामायण न केवल काव्य, महाकाव्य या वीर काव्य ही है, बल्कि यह आर्यों का आचार शास्त्र एवं धर्मशास्त्र है। यह मानव जीवन का सर्वांगीण आदर्श प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि ने एक ही श्लोक की पंक्ति में 'राम' और 'रामा' शब्द का प्रयोग किया है।

"बालेव रमते सीताबालचन्द्र निभानना।
रामारामे ह्यदीनात्मा विजनेऽपि वने सती।।"

यह ऐतिहासिक धार्मिक महाकाव्य भारतीय समाज का मेरुदण्ड है, जिसके कारण यह महाकाव्य तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था, धार्मिक स्थिति, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से समाज के समुचित एवं सर्वांगीण क्षेत्रों का ज्ञान कराती है। यह महाकाव्य आदर्श समाज के निर्माण हेतु प्रेरक का कार्य करता है।

रामायण सहस्त्रों वर्षों से भारतीय आर्यों के जीवन यापन का सजीव चित्रण करता रहा है। इसके अध्ययन से ज्ञात होता है कि, तत्कालीन समाज की स्थिति, सामाजिक वर्गीकरण, नगर निर्माण, शासन–व्यवस्था, युद्ध – संचालन, अस्त्र–शस्त्र, यातायात, उस समय के लोगों का आहार– विहार कैसा था। उनके विवाह और अन्य सम्बन्धों की यथास्थिति पारिवारिक जीवन कैसा था, यह ज्ञात होता है। गुरु–शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, लक्ष्य और आदर्श, स्त्रियों के प्रति व्यवहार, जीवन के प्रति लोगों का दृष्टिकोण क्या था इत्यादि पर प्रकाश पडता है। रामायण भारतीय सभ्यता से लेकर वर्णाश्रम – वयवस्था आदि विषयों पर प्रकाश डालने वाला प्रकाश स्तम्भ है, जिसके प्रकाश में प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का साक्षात् दर्शन होता है।

रामायाणकालीन संस्कृति में विवाह एवं परिवार का आदर्श रूप लक्षित होता है। रामायण की महत्ता कौटुम्बिक महाकाव्य दृष्ट्या भी लक्षित होती है, जिसमें पितृ–भक्ति, पुत्र–प्रेम, भातृ–स्नेह एवं जन–साधारण के सौहार्द का सुन्दर चित्रण है। सुख–दुःख, हानि–लाभ, लोभ–त्याग आदि में सहभागिता का सजीव चित्र प्रस्तुत है, जिससे रामायण की महत्ता धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्ट्या सर्वथा सिद्ध होती है।

1.5(I)रामायण की काव्य शैली–

'रामायण' आदिकवि वाल्मीकि द्वारा रचित आदिकाव्य है। वस्तुतः यह काव्य ग्रन्थों की श्रृंखला का प्रथम पुञ्ज है। इसकी विशेषताओं का वर्णन किया जाये तो इसमें ऐतिहासिक महाकाव्य, वीर काव्य के सभी गुण समाहित हैं। काव्यसौन्दर्य दृष्टि से 'वाल्मीकि रामायण' की महनीयता अपूर्व है। इस आद्य महाकाव्य में भावों का गाम्भीर्य, लालित्यमयी एवं ओजपूर्ण भाषा के साथ छन्दों का प्रयोग अलंकारों की अनुपूरक छटा तथा रसों एवं गुणों का अद्भुत प्रयोग है।

वाल्मीकि की सशक्त लेखनी से प्रादुर्भूत यह महाकाव्य ऐतिहासिक महाकाव्य, वीरकाव्य और आदर्श धर्मग्रन्थ बन गया। वाल्मीकि की शैली को वैदर्भी शैली भी कहा जा सकता है। इसमें भाषा का समन्वय, सरलता, सुबोधता आदि सभी गुणों का सन्निवेश मिलता है।

भाषा–

आदिकाव्य रामायण की भाषा अत्यन्त सरल, सुन्दर प्राञ्जल, परिमार्जित एवं परिष्कृत है। प्रसंगापेक्षित भावों के अनुरूप शब्दावली का चयन हुआ है। पूर्ववर्ती होने पर भी इस महाकाव्य की भाषा कालिदास आदि की भाषा के समान प्रौढ़ एवं परिष्कृत परिलक्षित होती है। उदाहरणार्थ किष्किन्धाकाण्ड में वर्णित सुमुखी नायिका के समान शरत्कालीन रात्रि की शोभा का वर्णन दृष्टव्य है –

"रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा, तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा।

ज्योत्सनांशुक प्रावरणा विभाति, नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी।"

रस–

रामायण में प्रायः सभी रस प्राप्त होते हैं। करुण, शृङ्गार और वीर रस इनमें प्रमुख हैं। करुण रस अंङ्गी है और अन्य रस अंङ्ग। शृङ्गार के दोनों पक्षों सम्भोग और विप्रलम्भ का वर्णन प्राप्त होता है। अनेक स्थलों पर युद्धकाण्ड में वीर रस की प्रमुखता है। रसपरिपाक के कारण वाल्मीकि को **रससिद्ध कवीश्वरः** (रससिद्धाः कवीश्वराः) कहा गया है।

छन्द–

वाल्मीकि का प्रिय छन्द अनुष्टुप् है। अधिकांश श्लोक अनुष्टुप् छन्द में ही हैं। परन्तु कुछ स्थानों पर उपजाति और इन्द्रवज्रा का प्रयोग भी किया गया है। पाश्चात्य विद्वानों ने रामायण की रचना को केवल अनुष्टुप् छन्द में ही माना है।

अलंकार–

वाल्मीकि ने उपमा रूपक उत्प्रेक्षा अर्थान्तर न्यास आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। ऋतु वर्णनों में अलंकारों की छटा विशेष रूप से दर्शनीय है, जैसे बादलों में चमकती हुई बिजली की रावण से और अपहृत छटपटाती हुई सीता से तुलना की गई है

नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी।।

वसन्त–वर्णन में वायु के फूलों से खेलने की बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षा एक गेंद के खिलाड़ी से की गई है, जिसकी गेंद कभी नीचे कभी ऊपर और कभी बीच में होती है–

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्र, क्रीडन्निव समन्ततः।। (रामा 0 4/1/13)

प्रकृति चित्रण–

वाल्मीकि ने केवल बाह्य प्रकृति के विशद चित्रण में असाधारण पटु हैं अपितु अन्तःप्रकृति के निरूपण में भी सिद्धहस्त हैं। रामायण में प्रकृति–चित्रण के अनेकानेक प्रसंङ्ग है। नगर, ग्राम, आश्रम, वन, उपवन, ऋतु वर्णन, पर्वत, नदी, चन्द्रोदय आदि के वर्णन अत्यन्त सजीव व रोचक हैं।

अयोध्याकाण्ड में चित्रकूट वर्णन, अरण्यकाण्ड में वन, आश्रम,शरद एंव हेमन्त ऋतु वर्णन, किष्किन्धाकाण्ड में पम्पासरोवर, सुन्दरकाण्ड में चन्द्रोदय वर्णन चन्द्रोदय का उपमा–अलंकार युक्त वर्णन इस प्रकार है–

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः, सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुंजरस्थश्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाऽम्बरस्थः।।(रामा0 5/5/4)

कवि को सरोवर में सोता हुआ हंस आकाश में विराजमान चन्द्र प्रतीत होता है।

सुप्तैकहंसकुमुदैरूपेतं महाह्रदस्थं सलिलं विभाति।
घनैर्विमुक्तं निशि पूर्णचन्द्रं, तारागणाकीर्णमिवान्तरिक्षम्।। (वा0रा0 4/30/48)

अर्थगौरव–

वाल्मीकि के अर्थान्तरन्यास और सुभाषित अत्यन्त भावप्रवण, सहृदय–संवेद्य एवं व्यंजना–प्रधान है। यथा–

सुलभाः पुरुषा राजन्, सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य,वक्ता श्रोता च दुर्लभाः।। (रामा0 3/37/2)

रसानुकूल अलङ्कारों के प्रयोग एवं प्रसङ्गानुकूल रसोत्पत्ति विषय को अत्यन्त सजीव बना दिया है, जो सहृदय श्रोता एवं पाठक के हृदय को आह्लादित करता है।

1.6 उपजीव्य काव्य के रुप में रामायण–

आदिकवि वाल्मीकि प्रणीत रामायण जैसे आद्य महाकाव्य का उल्लेखनीय वैशिष्ट्य यह है कि – रामायण और रामकथा ने भारतीय जनजीवन को अपने में रचा–बसा लिया है और आदर्श के उदाहरण में रामायण का उदाहरण लिया जाता है। वाल्मीकि की प्रौढ़ शैली एवं रामकथा का समन्वय मणिकांचन संयोग हो गया है। अतः परवर्ती कवियों, नाटककारों और चम्पूकारों ने रामायण को अपना उपजीव्य काव्य माना है तथा अपने दृष्टिकोण से सम्बद्ध अंशों का संकलन किया है।

वाल्मीकि रामायण भारत का सर्वोत्कृष्ट धार्मिक नैतिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थ है। जो कि समग्र परवर्ती साहित्य के लिये प्रेरणा स्रोत है। अनेक रामायण ग्रन्थ, महाकाव्य, काव्य, नाटक और चम्पू रामायण पर आश्रित हैं, ऐसा कहा गया है।

क) न ह्यन्योऽर्हति काव्यानां यशोभाग्राघवाहते (रामा0 उ0 का0 98–18)

रामायण पर आश्रित कतिपय रामायण ग्रन्थों की रचना हुई जिसमें प्रमुख हैं – आध्यात्म रामायण, अद्भुत रामायण, अगस्त्य रामायण, कम्बन रामायण आदि।

रामायण पर ही आधारित बौद्धों का ग्रन्थ 'दशरथ जातक' तथा जैन ग्रन्थ 'पउमचरिअ' है। 'पउमचरिअ' के रचयिता जैन कवि विमल सूरि हैं। रामायण पर आश्रित कालिदास का 'रघुवंश', प्रवरसेन कृत सेतुबन्ध, कुमार दास का जानकीहरण, भट्टिकृत भट्टिकाव्य (रावणवध) क्षेमेन्द्रकृत रामायण मंजरी, नाटकग्रन्थों में भासकृत अभिषेक और प्रतिभानाटक, भवभूतिकृत महावीर चरित और उत्तरराम चरित, मुरारिकृत अनर्घराघव, जयदेव

का प्रसन्नराघव इत्यादि ग्रन्थ सामने आते हैं। चम्पू काव्यों में भोजकृत रामायण चम्पू, वेंकटाध्वरि कृत उत्तर चम्पू इत्यादि है। इसके अतिरिक्त अनेकानेक अन्य साहित्यों पर भी रामायण का प्रभाव रहा है।

रामायण ने न केवल तत्कालीन साहित्य समाज को प्रभावित किया है, अपितु रामायण का महत्त्व और प्रभाव आज के परवर्ती साहित्य की विभिन्न विधाओं और सामाजिक जीवन पर व्याप्त है।

अभ्यास–

बहु विकल्पीय प्रश्न

1) रामायण कितने काण्डों में वर्णित है

(क) छहः (ख) सात (ग) आठ (घ) तेरह

उत्तर–(ख) सात

2) मा निषाद! प्रतिष्ठां........ किसकी उक्ति है?

(क) कालिदास (ख) भवभूति (ग) वेदव्यास(घ) वाल्मीकि

उत्तर–(घ) वाल्मीकि

3) रामायण को कहा गया है –

(क)काव्य(ख)खण्ड काव्य(ग)नाटक(घ)महाकाव्य

उत्तर–(घ) महाकाव्य

4) रामायण में किस छन्द की प्रमुखता है?

(क) उपजाति (ख) इन्द्रवज्रा (ग) अनुष्टुप (घ) मालिनी

उत्तर–(ग) अनुष्टुप

5) रामायण का अंगीरस क्या है ?

(क) करुण (ख) रौद्र (ग) हास्य (घ) वीर

उत्तर–(क) करुण

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

1) रामायण के रचनाकाल पर प्रकाश डालिये।

2) रामायण एक उपजीव्य काव्य है' का विवेचन कीजिये

3) रामायण के काव्य सौन्दर्य का निरूपण कीजिये।

4) रामायण के पात्रों का चरित्र – चित्रण कीजिये।

5) रामायण के महत्त्व की समीक्षा कीजिये।

इकाई –2

महाभारत

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 महाभारत का परिचय

2.2 महाभारत का विकास क्रम

2.3 महाभारत का रचनाकाल

2.4 महाभारत की शैली

2.5 महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व

2.6 महाभारत का वैशिष्ट्य

2.7 उपजीव्य काव्य के रूप में महाभारत

2.8 रामायण और महाभारत की सांस्कृतिक तुलना

2.0 इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के माध्यम से शिक्षार्थी महाभारत के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इससे शिक्षार्थी महाभारत का परिचय जान सकेंगे। महाभारत के विकासक्रम एवं उसके रचनाकाल से अवगत हो सकेंगे। महाभारत के सांस्कृतिक महत्त्व तथा उसके वैशिष्ट्य से परिचित हो सकेंगे। रामायण एवं महाभारत का तुलनात्मक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

2.1 महाभारत का परिचय

आर्षकाव्य के रूप में अभिहित रामायण और महाभारत भारतीय लौकिक साहित्य की दृष्टि से अनुपम साहित्यिक ग्रन्थ हैं, जिसमें तत्कालीन सभी सांस्कृतिक, साहित्यिक राजनीतिक, धार्मिक आदि विषयों का समन्वय है। हमारी सभ्यता का भव्यरूप इन्हीं ग्रन्थों में मिलता है, अन्यत्र कहीं नहीं। महाभारत को इतिहास मानते हैं परन्तु इसमें हिन्दू धर्म का पूर्ण एवं विस्तृत चित्रण है। हिन्दू इसे अपना धर्मग्रन्थ मानते हैं। इसके सभी पक्ष मनन एवं श्रवण की दृष्टि से लाभदायक है। भारतीय साहित्य का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ 'भगवतगीता' इसी महाभारत का एक अंश है, जिसका अनुसरण पूरा विश्व किसी न किसी रूप में करता है। गीता के अतिरिक्त 'विष्णुसहस्रनाम', 'अनुगीता,' 'गजेन्द्रमोक्ष' जैसे अनेक धार्मिक, भक्तिपूर्ण ग्रन्थ महाभारत के ही अंशरूप हमारे पास है। महाभारत को पंचरत्न, पंचमवेद नाम से भी जाना जाता है। महर्षि वाल्मीकि की तरह

ही महर्षि वेदव्यास भी संस्कृत कवियों के लिए उपजीव्य हैं और अनेकानेक ग्रन्थों, काव्य, चम्पू, कथा, गद्य आदि के सृष्टि का कारक है। महाभारत इतना विशाल है कि व्यास जी का निम्न कथन सर्वथा उचित प्रतीत होता है–

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत् क्वचित।।

(महाभारत, आदिपर्व.६२–५३)

2.2 महाभारत के विकास के तीन चरण

'शतसहस्त्री संहिता' कहे जाने वाले इस ग्रन्थ में एक लाख श्लोक मिलते हैं। विद्वानों के सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात होता है कि सम्पूर्ण महाभारत किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं रही है। प्रारम्भ में मूलकथा संक्षिप्त थीं। बाद में परिवर्तन होते रहे और कथा विस्तार प्राप्त करती रही। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार इसका विकास तीन चरणों में हुआ, ऐसा माना जाता है –

जय– महाभारत मूलरूप में 'जय' काव्य था, जिसमें 88,00 श्लोक थे।

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोक शतानि च।

अहं वेद्मि शुको वेत्ति संजयो वेत्ति वा न वा।

इस ग्रन्थ में नारायण नर सरस्वती देवी को नमस्कार कर जिस 'जय' नामक ग्रन्थ के पठन का विधान है। वह महाभारत का मूल प्रतीत होता है।

भारत–महाभारत के विकास के दूसरे चरण में इसे भारत कहा गया परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि, जय और भारत एक ही ग्रन्थ के दो नाम है जैसा कि महाभारत में संकेत प्राप्त होता है

जय नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।। (महाभारत, आदिपर्व)

पुनः इसका मंगलाचरण भी इसके 'जय' नाम को घोषित करता है–

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।

देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।।

इसके साथ ही इसको चौबीस हजार श्लोकों वाला भी माना गया है –

चतुर्विंशांति साहस्त्री चक्रे भारत संहिताम्।

उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः।

अर्थात् मूल महाभारत विना आख्यानों के मात्र चौबीस हजार श्लोकों वाला था। ऐसी मान्यता है कि, जय को भगवान् वेदव्यास ने वैशम्पायन आदि ऋषियों को प्रथम बार सुनाया। तदनन्तर वैशम्पायन ने महाराज परीक्षित और सौति आदि को सुनाया, जिससे यह 24,000 श्लोकों वाला हो गया और जब सौति ने शौनक आदि ऋषियों को नैमिषारण्य में सुनाया तो कथाओं एवं उपकथाओं के जुड़ते–जुड़ते यह लक्षश्लोकात्मक हो गया।

3) महाभारत–

अपने अन्तिम चरण में 'जय'नामक महाकाव्य महाभारत के रूप में परिणत हुआ, ऐसी विद्वानों की मान्यता है किन्तु महाभारत में स्वयं ही इस विषय में अन्तर्विरोध प्राप्त होता है। आदि पर्व में उल्लेख है कि भगवान् व्यास ने सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुक्र और वैशम्पायन इन सबको महाभारत नामक संहिता पढ़ाई।

वेदानध्यापयामास महाभारतपञ्चमान्।

सुमन्तुं जैमिनिं पैलं शुकं चैव स्वमात्मजम्।।

प्रभुर्वरिष्ठो वरदो वैशम्पायनमेव च।

संहितास्तैः पृथक्त्वेन भारतस्य प्रकाशिताः।। (महाभारत आदि पर्व 63/89–90)

यहाँ पर इसके विकासवादी मान्यता के विपरीत यह घोषित किया गया है कि भगवान् व्यास ने प्रारम्भ में ही महाभारत का उपदेश किया था, जिसे उनके पाँच शिष्यों ने स्वमतानुसार भारत संहिता के नाम से पृथक्–पृथक् प्रकाशित या सम्पादित किया। यह अपने बृहद् कलेवर के कारण ही आरम्भ में महाभारत नहीं कहा गया, अपितु भरतों के महान् वंश के वर्णन के कारण भी महान् कहा गया –

"भरतानां महज्जन्म महाभारतमुच्यते।" 39

आदि पर्व स्वयं उद्घोषित करता है कि भगवान् व्यास ने आख्यानों के साथ ही तीन वर्षो में महाभारत की रचना की–

त्रिभिर्वर्षै लब्धकामः कृष्णद्वैपायनो मुनिः।। 41

नित्योत्थितः शुचिः शक्तो महाभारतमादितः।।

तपोनियममास्थाय कृतमेतन्महर्षिणा।।42

त्रिभिर्वर्षैःसदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।

महाभारतमाख्यानं कृतवानिदमद्भुतम्।। 521

यहीं पर इसे भारत के नाम से भी कहा गया है–

यथा समुद्रो भगवान् यथा मेरूर्महागिरिः।
उभौ ख्यातौ रत्ननिधी तथा भारतमुच्यते।। 48

इस प्रकार यह स्वयमेव स्पष्ट है कि महाभारत के वर्तमान स्वरूप के सन्दर्भ में विकासवाद को मानना अनुचित है, और अपने प्रारम्भिक काल से ही महाभारत जैसा है वैसा ही रहा है, ऐसा मानना उचित प्रतीत होता है।

2.3 महाभारत का रचनाकाल

(1) वाल्मीकि रामायण के तुल्य महाभारत के भी काल–निर्णय में कुछ मौलिक कठिनाइयाँ है। पाश्चात्य विद्वानों का महाभारत के पात्रों को ऐतिहासिक न मानना, महाभारत में निर्माण सम्बन्धी किसी तिथि का स्पष्ट उल्लेख नहीं होना, कई सारे ऐसे तथ्यों का पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अलग–अलग बातों को मिश्रित करना, पुष्ट तथ्यों के अभाव में महाभारत के रचनाकाल के विषय में ज्ञान न होने के कारण अनुमान पर ही आश्रित होना पड़ रहा है।

(2) वैदिक साहित्य में महाभारत के पात्रों या घटनाओं का जो उल्लेख मिलता है, वह ऐतिहासिक महाभारत की मूल घटनाओं पर निर्भर है। जिसका समय कम से कम 1 हजार ई.पू.है। भारतीय परम्परा के अनुसार महाभारत युद्ध की घटना 3100 ई.पू. के लगभग मानी जाती है।

(1) आश्वलायन गृह्यसूत्र (3–4–4) में भारत और महाभारत दोनों का उल्लेख है। इसका समय कम से कम 400 ई0पू0 है।

(2) बौधायन धर्मसूत्र (2/2/26) के एक स्थान पर महाभारत में वर्णित ययाति उपाख्यान का एक श्लोक मिलता है (आदि पर्व 78/10) तथा बौधायन गृह्यसूत्र में 'विष्णुसहस्रनाम' का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं, प्रत्युत इसमें गीता का श्लोक उद्धृत है–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। (गीता/9/26)

बौधायन ईस्वी सन् से लगभग 400 वर्ष पहले हुए थे, ऐसा डॉ बूलर ने प्रमाणित किया है।

महाभारत में जहाँ विष्णु के अवतारों का वर्णन किया गया है वहाँ बुद्ध का नाम तक नहीं है।

नारायणीयोपाख्यान (शान्तिपर्व 339/100) में दशावतारों के भीतर हंस को प्रथम अवतार माना गया है। फलतः बुद्ध से अनभिज्ञ महाभारत निःसन्देह बुद्ध के पूर्व की रचना है।

पाणिनि (450 ई.पू.) ने महाभारत के पात्रों युधिष्ठिर भीम, विदुर आदि की व्युत्पत्ति दी है। साथ ही महाभारत शब्द की सिद्धि भी दी है। अतः महाभारत की सत्ता 500 ई.पू. से पूर्व सिद्ध होती है।

अपर सीमा– कुछ प्रमाणों से ज्ञात होता है कि एक लाख श्लोकों वाला महाभारत प्रथम शताब्दी ई. में विद्यमान था।

(1) अश्वघोष–(78 ई. के लगभग) ने व्रजसूचिकोपनिषद् में महाभारत और हरिवंशपर्व के श्लोक उद्घृत किए है।

(2) डायो क्रायसोस्टोम नाम का एक यूनानी लेखक 50 ई. में पाण्ड्य (दक्षिण देश) की यात्रा की थी। उसने अपने यात्रा–संस्मरण में यह लिखा कि भारत में एक लाख श्लोकों वाला 'इलियड' है। यह इलियड वस्तुतः महाभारत की ही ओर संकेत करता है। डॉ वेबर होल्त्समान, विशेल, रॉलिन्सन आदि ने इसे स्वीकार किया है।

गुप्तकाल के एक शिलालेख (442 ई.) में महाभारत को शतसाहस्रीसंहिता कहा है। दानपत्रों में भी (450 से 500 ई0) की ओर संकेत है। महाभारत को **'शतसाहस्त्र्यां संहितायां वेदव्यासेनोक्तम्'** कहा गया है।

(3) कम्बोडिया के 700 ई0 के एक शिलालेख में महाभारत का उल्लेख है। कुमारिल भटट ने (600 ई.) महाभारत को स्मृतिग्रन्थ माना है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि, महाभारत कम से कम 500 ई.पू. में लिखा जा चुका था किन्तु इसमें महाभारत में पांचवी–छठी शताब्दी तक परिवर्तन होते रहे हैं।

2.3 महाभारत की संक्षिप्त कथा – 18 पर्वों में संक्षेप में महाभारत का मुख्य कथानक इस प्रकार है–

1– आदिपर्व –चन्द्रवंश का इतिहास और कौरव पाण्डवों की उत्पत्ति।

2–सभा पर्व–द्यूतक्रीड़ा **(3) वन पर्व**–पाण्डवों का वनवास **(4) विराट पर्व**–पाण्डवों का अज्ञातवास **(5) उद्योग पर्व**– श्रीकृष्ण द्वारा सन्धि का प्रयत्न **(6) भीष्म पर्व**– अर्जुन को गीता का उपदेश, युद्ध का प्रारम्भ, भीष्म का आहत होकर शरशय्या पर पड़ना **(7) द्रोणपर्व**– अभिमन्यु और द्रोण का वध, **(8) कर्णपर्व**– कर्ण का युद्ध और वध **(9) शल्यपर्व**– शल्य का युद्ध और पर्व **(10) सौप्तिकपर्व**– सोते हुए पाण्डवों के पुत्रों का अश्वत्थामा द्वारा वध **(11) स्त्री पर्व**– शोकाकुल स्त्रियों का विलाप **(12) शान्ति पर्व**–युधिष्ठिर के राजधर्म और मोक्ष सम्बन्धी सैकड़ों प्रश्नों का भीष्म द्वारा उत्तर **(13) अनुशासनपर्व** –धर्म और नीति की कथाएं भीष्म का स्वर्गारोहण **(14) आश्वमेधिकपर्व** – युधिष्ठिर का अश्वमेघ अनुष्ठान **(15) आश्रमवासिकपर्व** – घृतराष्ट्र आदि का वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश **(16) मौसलपर्व** –यादवों का पारस्परिक संघर्ष से नाश **(17) महाप्रस्थानिकपर्व** – पाण्डवों की हिमालय यात्रा **(18) स्वर्गारोहणपर्व** – पाण्डवों का स्वर्गारोहण।

अठ्ठारह पर्वो के अतिरिक्त उन्नीसवें पर्व के रूप में हरिवंशपर्व या हरिवंश पुराण माना जाता है, जिसे खिलपर्व और पुराण भी कहा गया है।

"हरिवंशस्ततः पर्व पुराणखिल संज्ञितम्"

इसके भी तीन भाग माने गये हैं।

(1) हरिवंशपर्व (2) विष्णुपर्व (3) भविष्यपर्व

उपर्युक्त कथन से महाभारत की विषय वैविध्य स्पष्ट हो जाता है और विचारकों ने उचित ही कहा है," महाभारत का रचयिता अपने युग की समग्र साहित्यिक और सांस्कृतिक निधि को अपनी कला के माध्यम से एक सूत्र में उपनिबद्ध करने में सफल हुआ है।'

2.4 महाभारत की शैली –

महाभारत की भाषा शैली उच्च कोटि की है। इसमें पांचाली शैली का प्रयोग हुआ है।

"शब्दार्थयोः समो गुम्फः पांचाली रीतिरिष्यते (सा. दर्पण परि–9)

इसमें शब्दों और अर्थो का सुन्दर समन्वय है। भाषा में सरलता, सरसता, रोचकता, और प्रवाह है।

महाभारत एक प्रौढ़ आकर ग्रन्थ है। इसकी भाषा और शैली में रामायण सा परिष्कार भले ही न हो परन्तु इसमें उत्तुङ्ग तरंङ्ग तरंङ्गिनी के तुल्य वह प्रवाह प्रसाद और प्रवेग हैं, जो अपनी प्रबल धारा में बहाकर सभी को तृप्त करती हैं। अज्ञ को विज्ञ, अव्यवहार को पटुव्यवहार, अनीतिज्ञ को नीतिज्ञ बना देती है। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में शैली नाम की कोई साहित्य शास्त्रीय वस्तु नहीं होती है, वस्तुतः रीतियों को ही हिन्दी भाषा में शैली के रूप में व्यवहृत किया जाता है। इस दृष्टि से भी महाभारत को किसी रीति विशेष में बाँधना हमें अनुचित प्रतीत होता है, क्योंकि रीतियाँ और वृत्तियाँ काल के क्रमानुसार महाभारत की अपेक्षा अत्यधिक अर्वाचीन हैं, इसलिये रीतियों और वृत्तियों को रामायण अथवा महाभारत पर थोपना एक अनुचित कृत्य है। यद्यपि यह भी सम्भव है कि इनमें हमें गौडी, वैदर्भी आदि विभिन्न रीतियों के दर्शन हो सकते हैं, क्योंकि इनसे ही लौकिक संस्कृत काव्यधारा प्रस्फुटित होती है। इनके ही आख्यानों, उपाख्यानों को लेकर अनेकानेक महाकवियों द्वारा बहुत से महनीय महाकाव्य भी लिखे गये हैं। यह वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य दोनों को जोड़ने वाली कड़ी के रूप में हैं, इसी कारण इनमें हमें बहुत से मन्त्र अथवा मन्त्रपद भी प्राप्त होते हैं। उपयुक्त समस्त तथ्यों का प्रतिपादन आदिपर्व के 62 वे अध्याय के ये श्लोक करते हैं–

इह नैकाग्रथं जन्म राजर्षीणाम् महात्मनाम्।।42

इह मन्त्रपदं युक्तं धर्मं चानेकदर्शनम्।

इह युद्वानि चित्राणि राज्ञां वृद्विरिहैव च।।43

ऋषीणां च कथास्तात इह गन्धर्वरक्षसाम्।

इह तत् तत् समासाद्य विहितो वाक्यविस्तरः।।44

तीर्थानां नाम पुण्यानां देशानां चेह कीर्तनम्।
वनानां पर्वतानां च नदीनां सागरस्य च ।। 45
देशानां चैव पुण्यानां पुराणां चैव कीर्तनम्।
उपचारस्तथैवाग्रयो वीर्यमप्यतिमानुषम्।। 46
इह सत्कारयोगश्च भारते परमर्षिणा।
रथाश्ववारणेन्द्राणां कल्पनायुद्ध कौशलम्।। 47

आगे भी.....

"वाक्यजातिरनेका च सर्वस्मिन समर्पितम्"।।

(श्लोक संख्या 42 से 47)

यहाँ पर अनेक वाक्य जातियों का तात्पर्य सम्भवतः इन रीतियों और वृत्तियों से ही हो। अस्तु, वास्तविकता जो भी हो हमें सबका समाहार महाभारत में देखने को मिलता है।

रस–

महाभारत का अंगी रस शान्त है। यद्यपि इसमें हमें वीर रस का उत्कर्ष देखने को मिलता है, किन्तु अंत में उसकी भी परिणति शान्त में ही हो जाती है। महाभारत में विभिन्न प्रकार के चरित्रों को देखने का अवसर मिलता है। इनमें से कोई धीरललित है, तो कोई धीरोद्धत है, तो वहीं पर कोई धीरप्रशान्त नायक के रूप में चित्रित है। उनके प्रकरण के अनुसार महाभारत में रसों का उत्कर्ष भी देखने को मिलता है, यथा वनपर्व में नलदमयन्ती की कथा में हमें श‍ृङ्गार के उभय पक्ष के दर्शन होते हैं तो वहीं स्त्री पर्व में युद्ध की विभीषिका से विधवा हुई स्त्रियों का करुण विलाप किसी भी सहृदय का हृदय–विदारण करने में सक्षम है। सम्भवतः विश्वगुरु भारतवर्ष के विनाश से उत्पन्न हुए शोक के कारण ही भगवान् वेदव्यास ने भी भारत के नष्ट हुए गौरवपूर्ण वीरों, जनपदों, संस्कृतियों, धर्म दर्शन एवं विज्ञान को अमर और कालजयी बनाने के लिए ही महाभारत की रचना की हो और उनके लिए भी **'शोकः श्लोत्वमागतः'** की यह उक्ति चरितार्थ होती है। भगवान् वेदव्यास और महाभारत के सन्दर्भ में भी यह सत्य ही है। भगवान् व्यास पाण्डवों एवं कौरवों के कुलगुरु ही नहीं, अपितु कुलपिता भी थे। बन्धुविनाश के शोक से तो स्वयं भगवान् भी पीडित होते हैं फिर ऋषियों, महर्षियों के सन्त स्वभाव वाले कोमल हृदय की दशा के बारे में कुछ भी कहना व्यर्थ है।

महाभारत में युद्धादिक के वर्णन में जहाँ रौद्र रस उत्कर्ष को प्राप्त होता है, तो वहीं पर विभिन्न पात्रों के अतिमानुष और दैवीय कर्म अद्भुत रस को जन्म देते हैं, किन्तु यहाँ यह तथ्य ध्यातव्य है कि महाभारत की

रचना अन्य काव्यों की भाँति रसानुभूति कराने के लिए न होकर इतिहास के रूप में की गई है, इसलिए महाभारत में एक सामान्य काव्य की तरह रसों का अन्वेषण अनुचित है। यद्यपि रसिक हृदय को इसमें समस्त रसों की प्राप्ति होती है।

छन्द–

महाभारत में प्रमुखता से अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग हुआ है, किन्तु यत्र–तत्र इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्दों का भी प्रयोग हुआ है। वनपर्व के कुछ स्थलों पर गद्यांश के दर्शन होते हैं। वस्तुतः इस छन्द के कारण ही महाभारत का नाम पञ्चमवेद सार्थक होता है क्योंकि इसमें एक तरह उपदेश के लिए सर्वाधिक उपयुक्त अनुष्टुप का बाहुल्य है तो वहीं पर अन्य स्थलों पर गायन के योग्य अन्य गेयछन्द हैं, जिनकी तुलना वेदों के सामगान से की जा सकती है। कुछ स्थलों पर वैदिक मन्त्रों को ही यथारूप प्रस्तुत कर दिया गया है यथा–

"अङ्गादङ्गात् सम्भवसि हृदयादधि जायसे", (शाकुन्तलोपाख्यान)

"इदं पुंसवनं श्रेष्ठं इदं स्वस्त्ययनं महत् !! (आदि पर्व – 62–21)

इस प्रकार ऋक, साम और यजुष के गुणों से युक्त यह महाभारत अनेकानेक महनीय विषयों का प्रतिपादन करने के कारण वेदों से किसी प्रकार भी कम नहीं कहा जा सकता है।

अलंकार–

महाभारत जैसे विस्तृत काव्यग्रन्थ में अलङ्कारों का प्रयोग स्वाभाविक है। इसमें अलंकार के लिए अलंकारों का प्रयोग कहीं नहीं है। भाषा के प्रवाह में उपमा रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकारों के दर्शन होते हैं। अनुप्रास और यमक के अनेक प्रयोग हैं। अर्थान्तन्यास का तो यह भण्डार ही है।

अनुप्रास का उदाहरण यथा–

एवं निहन्यमानः स राक्षसेन बलीयसा।

रोषेण महताऽऽविष्टो भीमो भीम पराक्रमः ।

उपमा का प्रयोग –

पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्।

मालाकार इवारामे, न यथाऽङ्गारकारकः।। (उद्योगपर्व–34–18)

अर्थगौरव–

महाभारत में नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र राजनीति शास्त्र दर्शन आध्यात्म मनोविज्ञान और तत्वज्ञान के अर्थगौरव के अनेक स्थल प्राप्त होते हैं। कुछ महत्वपूर्ण उदाहरण इस प्रकार हैं।

"वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः।। (उद्योग पर्व 36–7)

सुलभाः पुरुषा राजन्, सततं प्रियवादिन :।

अप्रियस्य च पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभ :।। (उद्योग पर्व–37–15)

–अर्थशास्त्रीय सूक्तियाँ, यथा –

(1) धनमाहुः परं धर्मं, धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।

जीवन्ति धनिनो लोके, मृता ये त्वधना नराः ।।

(2) यः कृशार्थः कृशगवः कृशभृत्यः कृशातिथिः।

स वै राजन् कृशो नाम, न शरीरकृशः कृश :।। (शान्तिपर्व 8–24)

–राजनीति एवं कूटनीति विषयक सूक्तियाँ

अप्रियं यस्य कुर्वीत भृशं तस्य प्रियं चरेत्।

अचिरेण प्रियः स स्याद् योऽप्रिये प्रियमाचरेत् ।। (शान्तिपर्व –93/8)

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद् दुरारोहः।

अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत् कर्हिचित् ।। (उद्योग पर्व 30/21)

2.5 महाभारत का सांस्कृतिक महत्व :–

सांस्कृतिक दृष्टि से रामायाण के बाद यदि किसी ग्रन्थ का नाम महत्त्वपूर्ण है तो वह है–महाभारत। जो सबसे अधिक (सर्वाधिक) महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

वास्तव में यदि सांस्कृतिक दृष्टि से देखा जाए तो महाभारत रामायण की अपेक्षा अधिक सम्पन्न है। सांस्कृतिक दृष्टि से संस्कृति और सभ्यता का महाभारत में जितना विशुद्ध चित्रण प्राप्त होता है उतना किसी भी अन्य ग्रन्थ में मिलना दुर्लभ है। महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व भगवद्गीता के कारण है। महाभारत एक नहीं अनेकानेक कारणों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें विभिन्न संस्कृतियों का सम्मिश्रिण है। राष्ट्रीय

भावना का उदय, आसुरी प्रवृत्तियों के दमन का प्रयास, जीवनदर्शन की व्यावहारिक दृष्टि से व्याख्या, राजनीति, अर्थव्यवस्था, कूटनीति, दण्डनीति और अनीति का व्यावहारिक प्रदर्शन, राजधर्म का सर्वांगीण निरूपण, आख्यान साहित्य का अक्षय कोष नीतिशास्त्र की बहुमूल्य निधि एवं चतुर्वग की सभी समस्याओं का समाधान भी है।

इसमें एक ओर राजधर्म का उपदेश है, तो दूसरी ओर मोक्ष धर्म का, एक ओर अशान्ति है तो दूसरी ओर शान्ति की चर्चा, एक ओर कर्ममार्ग है तो दूसरी ओर ज्ञान मार्ग। एक ओर दुर्योधन जैसा शत्रु तो दूसरी ओर युधिष्ठिर जैसा धर्मज्ञ, एक ओर भीष्म पितामह जैसा ब्रहमचारी तो दूसरी ओर शिखण्डी जैसा कुटिल। ऐसे अनेकानेक पात्र–चरित्र है। जो एक दूसरे से विरोधीगुणों के हैं। इसमें विरूपता में एक रूपता, अनेकता में एकता, विशृंङ्खलता में समन्वय, व्यवहार में आदर्श, प्रेम में श्रेय और धर्मार्थ में मोक्ष का समन्वय है।

2.6 महाभारत का वैशिष्टय–

संस्कृत–साहित्य में रामायण के अनन्तर महाभारत अपने वैशिष्ट्य के कारण अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। संस्कृति और सभ्यता की दृष्टि से अतुलनीय वर्णन है। भगवतगीता के कारण महाभारत का महत्त्व अधिक बढ़ जाता है। गीता करोड़ों हिन्दुओं के लिए न केवल आचार संहिता है, अपितु वेद के समकक्ष एक धर्मग्रन्थ है।

महर्षि वेदव्यास ने भारतीय अर्थनीति, राजनीति तथा आध्यात्म शास्त्र के सिद्धान्तों का सारांश बड़ी ही सुन्दरता से इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया है। वास्तव में यह भारत के धर्म तथा तत्त्वज्ञान का विश्वकोश है। धर्म ही भारतीय संस्कृति का प्राण है। व्यास जी की स्पष्ट उक्ति है कि धर्म का परित्याग किसी भी दशा में भय से, लोभ से , कभी नहीं करना चाहिए। धर्म शाश्वत और चिरस्थायी है –

न जातु कामान्न भयान्न लोभाद धर्म त्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः।
धर्मो नित्यः सुख–दुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।।

यह भारतभूमि कर्मभूमि है। फल भोगने का स्थान तो स्वर्ग है, जो इस भूमि को छोड़ने के अनन्तर प्राप्त होता है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में मनुष्य ही सबसे श्रेष्ठ सृष्टि है, जिसके कल्याण के लिए पदार्थों की सृष्टि होती है तथा समाज की व्यवस्था की जाती है। मानवता का उन्नायक तत्त्व पुरुषार्थ ही है।

"अहो सिद्धार्थता तेषां येषां सन्तीह पाणयः।

अतीव स्पृहये तेषां येषां सन्तीह पाणयः।।

पाणिम दृश्यः स्पृहास्माकं यथा तव धनस्य वै।

न पाणिलाभादधिको लाभः कश्चन विद्यते।। (शान्ति 0 980/11,12)

व्यास के शब्दों में यह सिद्धांत 'पाणिवाद' के नाम से विख्यात है। जगत् में जिन लोगों के पास 'हाथ' है–जो कर्म में दक्ष तथा उत्साही हैं, उनके सब अर्थ सिद्ध होते हैं। संसार में पाणि–लाभ से बढ़कर कोई दूसरा नहीं है। मानवजीवन की कृतकार्यता हाथ रखने तथा हस्त संचालन में ही तो है। हाथ रहते हुए हाथ पर हाथ धरे रखकर जीवन बिताना पशुत्व का व्यंञ्जक चिन्ह है।

राष्ट्र भावना–

राजमूलो महाप्राज्ञः! धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
प्रजा राजभयादेव न खादन्ति परस्परम्।
मज्जेद् वेदत्रयी यदि राजा न पालयेत (शान्ति–अ–68)

भारतीय धर्म ही राजमूलक होता है, अर्थात धर्म की व्यवस्था तथा संचालन का उत्तरदायित्व राजा के ही ऊपर एकमात्र रहता है। यदि राजा प्रजा का पालन नहीं करे, तो प्रजा ही एक दूसरे को न खा डालेगी, प्रत्युत वेदत्रयी का भी अस्तित्व लुप्त हो जायेगा और विश्व को धारण करने वाला धर्म ही रसातल में डूब जायेगा"।

व्यास जी ने राष्ट्रभावना को धर्म से स्थापित कर बड़ी ही ओजस्विता के साथ प्रस्तुत किया है। राजा राष्ट्रका केन्द्र होता है। प्रजा का सर्वभावेन हित चिन्तक तथा मंगलसाधक ही उत्कृष्ट राजा है।

आध्यात्म तत्व–

महाभारत में आध्यात्म शास्त्र की सूक्ष्म बारीकियों में न पड़कर हमें सुखद तथा नियमित जीवन बिताने की शिक्षा देने पर आग्रह करते हैं।

मनुष्य इन्द्रियों का दास बनकर पशुभाव को प्राप्त होता है। इन्द्रियों का स्वामी बनकर अपने जीवन को सफल बनाने में समर्थ होता है वेद का रहस्य बताते हुए बड़ी ही सारगर्भित उक्ति का उल्लेख मिलता है।

वेदोस्योपनिषद् सत्यं सत्यस्योपनिषद् दमः।
दमस्योपनिषद् मोक्ष एतत सर्वानुशासनम्।।

"करनी बड़ी है कथनी से"– व्यास जी की यही मान्य शिक्षा है।

मानव जीवन का श्रेयस्कर मार्ग है। धर्म का आश्रम लेकर आत्म विजय करना।

व्यास जी ने आत्म साक्षात्कार के लिए बड़ी सुन्दर उपमा दी है। जिस प्रकार मूंजे से सींक को अलग किया जाता है, उसी प्रकार पंचकोशों में अन्तर्निहित चैतन्य रूप आत्मा को भी साधक पृथक कर साक्षात्कार करता

है। 'आनन्दवर्धन' की तो यह स्पष्ट सम्मति है कि 'महाभारत का मुख्य रस शान्तरस है' नाना विकट प्रपंचों में न लिप्त होकर मानव आत्मस्वरूप का परिचय पाकर मोक्ष का सम्पादन करे । महाभारत की यही अमूल्य शिक्षा है।

2.7 उपजीव्य काव्य के रूप में महाभारत –

साहित्यिक दृष्टि से महाभारत एक आकार ग्रन्थ है। इसका परकालीन साहित्य पर बहुत प्रभाव रहा है। महाभारत की रोचकता, नीति, धर्म और सांस्कृतिक महत्व सरसता और विद्रूता ने साहित्यकारों को इतना प्रभावित किया कि, उन्होंने महाभारत को अपना प्रमुख उपजीव्य काव्य माना। किसी ने महाभारत का आख्यान लिया तो किसी ने धार्मिक तत्व तो किसी ने पात्रों का चरित्र चित्रण। इस पर आधारित अनेकानेक काव्यों की रचना हुईं। इस प्रकार यह सबसे प्रमुख उपजीव्य काव्य बन गया। स्वयं महाभारत में इसकी उपजीव्यता पर अनेक प्रकार के उल्लेख है।

(क) सर्वेषां कविमुख्यानामुपजीव्यो भविष्यिति।
पर्जन्य इव भूतानामक्षयो भारतद्रमुः।। (महा0 आदिपर्व 1–108)

(ख) इदं कविवरैः सर्वैराख्यानमुपजीव्यते।
उदयप्रेप्सुभिर्भत्यैरभिजात इवेश्वरः।। (महा0 आदिपर्व 2–390)

महाभारत पर आश्रित अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। जो इस प्रकार हैं– भारवि कृत –किरातार्जुनीयम, माघकृत–शिशुपाल वध, क्षेमेन्द्र कृत–भारत मंजरी, श्री हर्षकृत– नैषधीय चरितम, वामनभट्ट बाणभट्ट कृत नभाम्युदय जैसे काव्यग्रन्थों की रचना हुईं। भास कृत दूतघटोत्कच, कर्णभार, मध्यम व्यायोग, पांचरात्र, कालिदास कृत अभिज्ञान शाकुन्तलम, भट्ट नारायण कृत वेणीसंहार, राजशेखर कृत बाल भारत नामक नाटकों की रचना महाभारत पर आश्रित हैं।

चम्पूकाव्य – त्रिविक्रम भट्ट की कृति – नल चम्पू, अन्नतभट्ट –भारत चम्पू, नारायण भट्ट कृत पांचाली स्वयंवर चम्पू इत्यादि अनके काव्य ग्रन्थ, नाटकों का उपजीव्य ग्रन्थ महाभारत है।

2.8 रामायण और महाभारत की सांस्कृतिक तुलना

रामायण और महाभारत दोनों के वर्णन से काफी समानताएँ है। दोनों का प्रारम्भ राजसभा से होता है उसके बाद लगभग समान काल के लिए वनवास का वर्णन, युद्ध का वर्णन। दोनों ही महाकाव्य दुःखान्त है। दोनों का उद्देश्य भी एक ही है। 'अधर्म थोड़े समय के लिए ही सफल हो सकता है किन्तु अन्तिम विजय धर्म की ही होती है'। रामायण और महाभारत में बहुत सारी बातों में समानता और विषमता है। दोनों ही भारतीय संस्कृति के प्रकाश स्तम्भ है। रामायण और महाभारत दोनों ग्रन्थों ने सैकड़ों वर्षो से भारतीय जनजीवन को

प्रभावित किया है और आज भी उसका प्रभाव अक्षुण्ण है। एक में आदर्श का चरर्मोत्कर्ष है चाहे वो धर्म का हो, मातृप्रेम का हो, सदाचार, या त्याग है। दूसरे में राजनीति, कूटनीति, मनुष्यत्व, अनैतिकता इत्यादि का चरमोत्कर्ष। दोनों ग्रन्थों की समानताएं एवं विषमताएं संक्षेप में इस प्रकार है।

रामायण	**महाभारत**
(1) रामायण धार्मिक ग्रन्थ है	(1) धार्मिक ग्रन्थ है
(2) ऐतिहासिक महा काव्य है	(2) ऐतिहासिक महाकाव्य है
(3) आचार संहिता है	(3) आचार संहिता है।
(4) चतुवर्ग का वर्णन है	(4) चतुवर्ग का वर्णन है।
(5) राजसभा से ग्रन्थ का प्रारम्भ	(5) राजसभा से ग्रन्थ का प्रारम्भ
(6) सीता स्वयंवर	(6) द्रौपदी स्वयंवर
(7) स्वंयवर में धनुर्विद्या–परीक्षा	(7) स्वंयवर में धनुर्विद्या–परीक्षा
(8) राम को चौदह वर्ष का वनवास	(8) पाण्डवों को 13 वर्ष का वनवास
(9) सीता हरण प्रमुख घटना	(9) द्रौपदी वस्त्रहरण प्रमुख घटना
(10) सीता के कारण महायुद्व	(10) द्रौपदी के कारण महायुद्व
(11) युद्ध में दिव्यास्त्रों का प्रयोग	(11) युद्ध में माया एवं दिव्यास्त्रों का प्रयोग
(12) सत्य की विजय	(12) सत्य की विजय
(13) राम का राज्याभिषेक	(13) युधिष्ठिर का राज्याभिषेक
(14) अनुष्टुप छन्द का प्रयोग	(14) अनुष्टुप छन्द की प्रमुखता
(15) वंशावलियां एवं अनेकानेक आख्यान	(15) वंशालियों के आख्यान
(16) उपजीवा काव्य	(16) उपजीवा काव्य

विषमताएँ

रामायण	महाभारत
करूणा, दया, सरलता और संयम	दर्प औद्वत्य उगता और तेजस्वित
धर्म प्रधान	कर्म प्रधान
स्त्रियाँ सरल निष्कपट	शैली अपरिष्कृत ऊबड़ खाबड
नायक नायिका आदर्शवादी	पात्र प्रतिक्रियावादी
राजनीतिक स्थिति राजतंत्र	गणतंत्रों का प्रादुर्भाव
मातृ प्रेम का आदर्श	भातृदोष का चरमोत्कर्ष
अग्रज शक्ति और अनुशासन	अनुशासनहीनता।
युद्ध में धर्म का अनुशासन	छलकपट
सतयुग की झाँकी मिलती है	कलियुग की झाँकी मिलती है
संकुचित और आदर्शवादी दृष्टिकोण	व्यापक और व्यवाहारिक दृष्टिकोण

अभ्यास

बहुविकल्पीय प्रश्न

(1) महाभारत में प्रयुक्त छन्द है–

(क) स्रग्धरा, **(ख)** अनुष्टुप, **(ग)** वंशस्य, **(घ)** मालिनी

उत्तर– (ख) अनुष्टुप

(2) महाभारत के रचनाकार थे

(क) वेदव्यास, **(ख)** बाल्मीकि **(ग)** कालिदास **(घ)** बाण

उत्तर– (क) वेदव्यास

(3) महाभारत में श्लोकों की सख्या है–

(क) शत **(ख)** सहस्त्र **(ग)** द्विसहस्त्र **(घ)** शतसहस्त्र

उत्तर– (घ) अनुष्टुप शतसहस्त्र

(4) महाभारत में पर्वो की संख्या है–

(क) आठ **(ख)** दस**(ग)** अठारह **(घ)** पांच

उत्तर– (ग) अठारह

लघुउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न– महाभारत के पर्वों का नामोल्लेख कीजिये।

प्रश्न–महाभारत के विकास क्रम को संक्षेप में लिखिये।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1– महाभारत में धर्म के महत्व को प्रतिपादित कीजिये।

प्रश्न 2– महाभारत के रचनाकाल पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 3– महाभारत के कथानक को लिखिये।

इकाई– 3

महाकाव्य एवं महाकवियों के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

इकाई की रूपरेखा

3.1 इकाई परिचय

3.2 उद्देश्य

3.3 महाकाव्यों का उद्भव एवं विकास

3.4 महाकाव्य का शैलीगत विकास

3.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) कार्यक्रम के अन्तर्गत ' लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक प्रश्न पत्र तृतीय सेमेस्टर (MAST –113 N) में निर्धारित किया गया है। इस प्रश्न पत्र में कुल तेरह इकाईयाँ हैं, जिसकी तीसरी इकाई महाकाव्य एवं महाकवियों के व्यक्तित्व–कर्तृत्व का अध्ययन किया जायेगा।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है कि, शिक्षार्थी संस्कृत साहित्य के मनोरम स्वरूप के सभी पक्षों से परिचित हो सकेंगे। शिक्षार्थी महाकाव्यों के लक्षण से अवगत हो सकेंगे। महाकवि कालिदास के जीवन–परिचय को जान सकेंगे। महाकाव्यों में चित्रित समाज, संस्कृति जीवनमूल्यों का छात्र साक्षात्कार कर सकेंगे। उनकी कृतियों के विषय में शिक्षार्थियों को जानकारी प्राप्त हो सकेगी। महाकवि कालिदास के काव्यों की विशेषताओं के बारे में बोध हो सकेगा। इन्हीं उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुये महाकाव्यों पर विचार को प्रस्तुत किया गया है। इकाई 3 व 4 में वर्णित विषय निश्चय ही छात्रों को संस्कृत साहित्य से परिचित कराने में उपयोगी सिद्ध होगा।

साहित्य दर्पण में महाकाव्य का सर्वांगीण और व्यापक लक्षण प्राप्त होता है। भामह ये (600 ई०) ने भामहालंकार (1/18/23) में दण्डी ने काव्यादर्श में अग्नि पुराण (अध्याय 337) में महाकाव्य के लक्षणों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है।

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।

सद्वंशः क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः।

एकवंश भवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा।।

शृङ्गारवीरशान्र्ता नामेकोऽङ्ग्रीरस इष्यते।
अङ्गानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसन्धयः।।
इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद् वा सज्जनाश्रयम्।
चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।।
आदौ नमस्क्रियाऽड़शीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा।
क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।।
एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।
नातिस्वल्पा नातिदीर्घाः सर्गा अष्टाधिक इह।।
कवेर्वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा।
नामास्य सर्गोपादेयकथया सर्गनाम तु।।
(साहित्य दर्पण, परिच्छेद 6,कण्टिका 315–325)

आरम्भ में देवतादि को नमस्कार, आर्शीर्वाद या वस्तु निर्देश होता है। कहीं दुर्जन–निन्दा और सज्जन–प्रशंसा भी होती है। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द वाले पद्य रहते हैं, किन्त अन्त में छन्द परिवर्तित हो जाता है। इसमें आठ से अधिक सर्ग होते हैं, जो न अधिक बड़े न बहुत छोटे होते हैं। कहीं–कहीं विभिन्न छन्दों वाले सर्ग होते हैं। सर्ग के अन्त में भावी कथा का संकेत होता है। इसमें निम्न विषयों का वर्णन होता है। सन्ध्या, सूर्य, चन्द्र, रात्रि, गोधूलि, मृगया, ऋतु, वन, पर्वत, सागरयुद्व, विवाह, मन्त्र पुत्र, उदय राजनीति के अंग इत्यादि। ग्रन्थ का नाम कवि, कथानक नायक या प्रतिनायक के नाम पर रखना चाहिए। सर्गों का नाम वर्णित कथा के आधार पर रखना चाहिए। आर्ष महाकाव्यों में सर्गों का नाम आख्यान पर निर्भर होता है। उदाहरण के तौर पर ये सभी लक्षण रामायण महाभारत में प्राप्त होते हैं। रामायण महाभारत और रघुवंश में अनेक नायक वर्णित है। रामायण आदि का कथानक ऐतिहासिक है।

रघुवंश, कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपाल वध और नैषधीय चरित आदि में महाकाव्य के सभी लक्षणों का सुन्दर समन्वय है। इनमें वीर या शृङ्गार मुख्य रस है। एक सर्ग में एक ही छन्द है और अन्त में छन्द परिवर्तित हो जाता है। इसमें अष्टाधिक सर्ग है, साथ ही सूर्योदय, चन्द्रोदय, ऋतु, वन, पर्वत, विवाह आदि का वर्णन है। रामायण, रघुवंश कुमार संभव, नैषधनायक के नाम पर हैं। किरातार्जुनीयम, शिशुपाल वध आदि कथानक के नाम पर, भटिकाव्य कवि के नाम पर है। इनमें सर्गों के नाम वर्णितकथा के आधार पर हैं, जैसे

“इति श्रीरघुवंशमहाकाव्ये रघुराज्याभिषेको नाम तृतीयः सर्गः”।।

3.2 महाकाव्यों का उद्‌भव एवं विकास

महाकाव्यों का उद्‌भव ऋग्वेद के आख्यान सूक्तों इन्द्र, वरूण, विष्णु और ऊषा आदि के स्तुति मंत्रों तथा नाराशंसी गाथाओं से हुआ है। ब्राह्मण आदि ग्रन्थों में इन आख्यानों आदि का बृहद् रूप मिलता है। यही स्वरूप आगे चलकर महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया है। रामायण और महाभारत आगे चलकर परवर्ती काव्यों और महाकाव्यों के लिए उपजीव्य ग्रन्थ हो गए। संस्कृत–साहित्य भारतीय संस्कृति का साहित्य है। उसने भारतीय संस्कृति के विशुद्ध मूल स्वरूप को अपनी नाना विद्याओं के द्वारा प्रस्तुत किया है।

रामायण और महाभारत के बाद कालिदास की उत्पत्ति तक जो महाकाव्य लिखे गए थे। वे केवल नाममात्र ही शेष हैं। कालिदास की अलौकिक प्रतिभा और व्युत्पत्ति ने सभी पूर्ववर्ती काव्यों और महाकाव्यों को निष्प्रभ कर दिया। उस काल के कुछ ग्रन्थ इस प्रकार है।

(1) पाणिनि (450 ई.पू.) कृत 'जाम्बवती–जय' या पातालविजय इसमें 18 सर्गों में श्रीकृष्ण का पाताल में जाकर जाम्बवती के विजय और परिणय की कथा वर्णित की गयी है–

नमः पाणिनये तस्मै यस्मादाविरभूदिह।

आदौ व्याकरणं काव्यमनु जाम्बवतीजयम्।। (राजशेखर)

(2) वररुचि ने (350 ई.पू.) ने 'स्वर्गारोहण' नामक काव्य की रचना की थी। समुद्रगुप्त के ' कृष्ण चरित' काव्य में इसका उल्लेख मिलता है –

यः स्वर्गारोहणं कृत्वा स्वर्गमानीतवान् भुवि।

काव्येन रुचिरेणैव ख्यातो वररुचिः कविः।।

(3) महाभाष्यकार पतंञ्जलि (150ई.पू.) ने भी इसी शृङ्खला में 'महानन्दकाव्य' लिखा है। पतंञ्जलि ने योगशास्त्र की व्याख्या के लिए इस महाकाव्य की रचना की थी–

पतञ्जलिर्मुनिवरो नमस्यो विदुषांसदा।।

महानन्दमयं काव्यं योगदर्शनमद्‌भुतम्।।

(युधिष्ठरभीमांस्कृत 'संस्कृतव्याकरण का इतिहास' भाग –1)

इसके बाद महाकावि कालिदास का साहित्य जगत में उदय हुआ।

महाकाव्यों का विकास –

वैदिक काल से लेकर परवर्ती जितने भी महाकाव्य समुपलब्ध होते हैं, उनका अध्ययन करने पर उनके विकास के दो रूप सामने आते हैं – महाकाव्यों का रूपगत विकास एवं महाकाव्यों का शैलीगत विकास।

रूपगत विकास के तीन स्तर बताये गये हैं –

(1) वैदिक काल

(2) वीर महाकाव्य

(3) लौकिक महाकाव्य काल

वैदिक काल में देवस्तुतिगान, इन्द्रवरूण अग्नि आदि देवताओं का वर्णन है। वीर महाकाव्य में रामायण–महाभारत आता है, जिसमें भाव, रस, आख्यान आदि समाहित है और लौकिक महाकाव्यों में कालिदास एवं उनके परवर्ती कथाकार है। इनके काव्यों में भाव पक्ष की तुलना में कलापक्ष का आधिक्य रहा है।

3.4 महाकाव्य का शैलीगत विकास

शैलीगत विकास के तीन स्तर

(1) प्रसादात्मक शैली।

(2) अलंकारात्मक शैली।

(3) श्लेषात्मक शैली।

शैलीगत विकास के अन्तर्गत प्रसादात्मक शैली के ग्रन्थ रामायण महाभारत कालिदास अश्वघोष आदि में प्राप्त होते हैं। इसमें शैली में सरलता, अर्थ गाम्भीर्य, सरसता आदि पर अधिक बल दिया गया।

अलंकारात्मक शैली – यह काव्य शैली मुख्यतया भारवि, माघ, श्री हर्ष आदि के काव्यों में पायी जाती है।

श्लेषात्मक शैली– यह शैली उन काव्यों में पायी जाती है जिसमें द्वयर्थक, त्र्यर्थक हो। इस शैली के काव्य है– धनञ्ज्य कृत–द्विसन्धान काव्य, कविराज सूरिकृत–राघव पाण्डवीय, हरिदत्तसूरि कृत राघव नैषधीय, विद्यमाधव कृत पार्वती रक्मिणी। ये त्र्यर्थक काव्य हैं। राजचूडामणि–दीक्षित कृत राघवयादव पाण्डीय एवं चिदम्बरसुमति कृत 'राघवपाण्डव' यादवीयम् इत्यादि ये त्र्यर्थक काव्य के अन्तर्गत आते है।

कालिदास

इकाई की रूपरेखा

3.1 महाकवि का परिचय

3.2 महाकवि कालिदास का स्थिति काल

3.3 महाकवि कालिदास की रचनाएं

3.4 महाकवि कालिदास का कृतित्व

3.5 महाकवि कालिदास की शैली

3.6 महाकवि कालिदास की रचनाओं की संक्षिप्त कथा

3.7 उपमा कालिदासस्य

3.1 महाकवि का परिचय

महाकवि कालिदास के जीवन चरित के विषय में कुछ भी निश्चित और प्रामाणिक सामग्री प्राप्त नहीं है। कालिदास ने स्वयं या उनके समकालिक किसी भी लेखक ने उनके विषय में कुछ नहीं लिखा है। अतः उनके विषय में जो कुछ भी कहा गया है या माना जाता है, वह अधिकांश रूप में आनुमानिक ही है। उनके समय के विषय में केवल एक तथ्य अकाट्य माना जाता रहा है वह है कालिदास का विक्रमादित्य के नवरत्नों में होना।एक ओर अधिकांश भारतीय विद्वान् शकारि एवं विक्रमीय संवत् के संस्थापक उज्जयिनी के राजा विक्रमादित्य नामक सम्राट् 57 ई0पू0 में विद्यमान को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं, दूसरी ओर पाश्चात्य एवं कतिपय भारतीय विद्वान् विक्रमादित्य उपाधिधारी चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–413 ई0) को कालिदास का आश्रयदाता मानते हैं। ये ही दो प्रमुख है।
इसके अतिरिक्त प्रो0 फर्गुसन ने कालिदास का समय छठीं शताब्दी ई0 निर्धारित किया हैं। उनका तर्क था – रघुवंश में हूणों का उल्लेख है। 500 ई0 में हूणों ने भारत पर आक्रमण किया था। कुछ किंवदन्तियों के अनुसार वह राजा भोज (1005–1054 ई0) के आश्रित कवि माने जाते हैं। वस्तुतः धारा के राजा भोज के आश्रितकवि परिमल थे । इनका दूसरा नामपदम्गुप्त था उनकी सुन्दर शैली कालिदास से मिलती जुलती थी अतः उसे कालिदास या परिमल कालिदास की उपाधि दी गई थी। भ्रमवश परिमल को कालिदास मान लिया गया।

कालिदास के जन्मस्थान के विषय में भी पर्याप्त मतभेद है। वे जन्मना ब्राह्मण थे और शिवभक्त थे। अन्य देवों के प्रति भी उनका आदर भाव था । रघुवंश और मेघदूत के वर्णनों से ज्ञात होता है कि, उन्होंने भारत की विस्तृत यात्रा की थी। अतएव उनके भौगोलिक वर्णन सत्य, स्वाभाविक और मनोरम हुए है। उनका जीवन नैतिक दृष्टि से सुखमय था। उन्हें आर्थिक कष्ट नहीं था। अतएव उन्होंने धनहीनता, दारिद्र्य आदि के कष्टों का वर्णन नहीं किया है। उनका राजपरिवारों से सम्बन्ध था, अतः उन्हें राजकाज, राजद्वारों एवं राजनीति आदि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त था। उन्हें अपने जीवन काल में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त हुई। उन्होंने स्त्री–सौन्दर्य का सुन्दरतम ढंग से वर्णन, प्रकृति के सौन्दर्य के साथ तालमेल करते हुए किया, परन्तु वे कामुकता और वासनात्मक जीवन को श्रेयस्कर नहीं मानते थे अपितु हार्दिक और तपोमूलक प्रेम को ही प्रेम मानते थे। उनके ग्रन्थों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने वेदों, दर्शनों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों, आयुर्वेद, धनुर्वेद, संगीतशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, काव्यशास्त्र आदि ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था। काव्य–जगत् में उनकी प्रसिद्धि के कारण बाद में उनका नाम एक उपाधि के रूप में हो गया। जिस प्रकार आजकल शंकराचार्य नाम उपाधि के रूप में चारों मठों के अध्यक्ष शंकराचार्य कहे जाते हैं। उसी प्रकार बाद में, जो प्रसिद्ध एवं सुयोग्य कवि हुए, उन्हें राजा के द्वारा कालिदास की उपाधि दी जाने लगी या उपनाम भी रखने लगे। इस प्रकार कई कालिदास हो गये ऐसे तीन कालिदासों का उल्लेख राजशेखर ने किया है –

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्।
शृङ्गारे ललितोद्गारे, कालिदासत्रयी किमु।।

3.2 महाकवि कालिदास का स्थिति काल

कविवर कालिदास के स्थिति–काल के विषय में पूर्वी तथा पश्चिमी विद्वानों में बड़ा मतभेद है। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने आन्तरिक प्रमाणों के आधार पर कालिदास की स्थिति भिन्न–भिन्न शताब्दियों में निश्चित की है। कालिदास का समय ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी से लेकर छठीं शताब्दी तक सात सौ वर्षों के दीर्घकाल में दोलायमान सा रहा है। भारतीय जनश्रुति के आधार पर कालिदास राजा विक्रमादित्य के नवरत्नों के मुखिया थे। विश्वविख्यात 'शकुन्तला' का अभिनय सम्भवतः विक्रम की **'अभिरूपभूयिष्ठा परिषद'** में ही हुआ था। विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा के नायक होने पर भी विक्रम का नामोल्लेख तथा **'अनुत्सेकः विक्रमालङ्कारः'** आदि वाक्य इस सिद्धान्त की पुष्टि कर रहे हैं कि, कालिदास का विक्रम से सम्बन्ध अवश्य था। अभिनन्दनकृत रामचरित महाकाव्य के **'ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीता शकारातिना'** आदि पद्यों से भी इस सम्बन्ध की पुष्टि हो रही है। अतएव यह मानना अनुचित नहीं होगा कि,कालिदास राजा विक्रम की सभा के रत्न थे।

कालिदास ने शुंगवशीय राजा 'अग्निमित्र' को अपने 'मालविकाग्निमित्र' नाटक का नायक बनाया है। अतः वे विक्रम पूर्व द्वितीय शतक के अनन्तर होंगे। इधर सप्तम शताब्दी में हर्षवर्द्धन के सभा कवि बाणभट्ट ने हर्षचरित में कालिदास की कविता की प्रशंसा की है। अतः कवि का समय विक्रम –पूर्व द्वितीय –शतक से

लेकर विक्रम के सप्तम शतक के बीच में कहीं होना चाहिये। कालिदास के समय के विषय में प्रधानतया तीन मत हैं–

प्रथम मत – कालिदास को षष्ठ शतक का बतलाता है।

द्वितीय मत– विक्रम संवत के आरम्भ में कालिदास का समय बतलाता है।

तृतीय मत– गुप्तकाल में कालिदास की स्थिति मानता है।

इन्हीं तीनों प्रधान मतों का उल्लेख यहां किया जायेगा।

प्रथम मत – फग्युर्सन, डा0 हार्नली आदि विद्वानों के मतानुसार कालिदास मालवराज यशोवर्द्धन के समकालीन थे जिसने छठीं शताब्दी में हूणों पर विजय प्राप्त की थी तथा हूणों पर प्राप्त विजय की स्मृति में 600 वर्ष पहले की तिथि देकर मालव संवत् का आरम्भ किया था, जो बाद में विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। ये लोग अपने मत के पक्ष में रघुवंश के चतुर्थ सर्ग से रघुदिग्विजय में हूणों का वर्णन उपस्थित करते हैं। किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि, यद्यपि चौथी शती में हूण भारत में नहीं आये थे, तथापि उत्तर पश्चिमी सीमा में आ चुका थे और कालिदास ने उनका वर्णन नहीं किया है। इस प्रकार कालिदास को छठीं शताब्दी ईसवी में मानने की धारणा अब खण्डित हो चुकी है।

द्वितीय मत–यह मत कालिदास को ई0पू0 प्रथम शताब्दी में मानने का है। इन लोगों के मतानुसार कालिदास मालवराज विक्रमदित्य के नवरत्नों में से एक था।

धन्वन्तरि–क्षपणकामरसिंह–शङ्कु–वेतालभट्ट–घटकर्पर–कालिदासः।

ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वररुचिर्नव विक्रमस्य।।

पर पूर्वोदाह्यत प्रसिद्ध पद्य के नवरत्नों में कुछ नाम अनैतिहासिक हैं तथा कुछ इतिहास की दृष्टि से चौथी या पांचवी शताब्दी ईसवी मे सिद्ध होते हैं। इस मत के पक्ष में जो प्रमाण दिये जाते हैं, उनमें मुख्य प्रमाण ये हैं–

(1) कालिदास ने रघुवंश के षष्ठ सर्ग में अवन्तिनाथ का वर्णन करते समय उनके 'विक्रमादित्य' विरूद्ध का संकेत किया है तथा उस वर्णन से अवन्तिराज के प्रति कवि की विशेष श्रद्धा व्यक्त होती है।

(2) रघुवंश के उसी सर्ग में पाण्डय देश के राजाओं का वर्णन मिलता है। यदि कालिदास का समय चौथी शती माना जाय तो उस समय पाण्डयों का राज्य समाप्त हो चुका था जबकि ई0पू0 प्रथम शती में पाण्डय् विद्यमान थे। किन्तु कालिदास ने मगध के राजा का भी उतना ही प्रतापी व्यक्तित्व चित्रित किया है, जिसके कारण पृथ्वी राजवन्ती कहलाती है तथा जो राजाओं की नक्षत्रपंक्ति में चन्द्रमा के समान द्योतित होता है। पाण्डयों के राजा का वर्णन कालिदास में कुछ काल्पनिक भी माना जा सकता है। यदि इस तरह के सभी वर्णनों को सत्य माना जाने लगेगा, तो श्री हर्ष में नैषध के स्वयंबर वर्णन के राजाओं का भी अस्तित्व मानने का प्रसंग उपस्थित होगा।

तृतीय मत–तीसरा मत कालिदास को गुप्तकाल में मानता है। इसमें दो मत है। कुछ लोग इन्हें कुमारगुप्त का राजकवि मानते हैं कुछ चन्द्रगुप्त द्वितीय का। इस मत की पुष्टि में विद्वानों में निम्न प्रमाण उपन्यस्त किये जाते हैं।

(क) कालिदास में कुछ ऐसे ज्योतिष शास्त्रीय पारिभषिक शब्दों– यथा 'अमित्र' यक्ष आदि का प्रयोग किया मिलता है, जो भारतीय ज्योतिष की यवनों की देन है।

(ख) कालिदास का रघुदिग्विजय समुद्रगुप्त के दिग्विजय का संकेत करता है।

(ग) कालिदास के नाटक **'विक्रमौंवंशीय'** का नामकरण सम्भवतः चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का संकेत करता है तथा **'कुमारसंम्भव**' की रचना कुमारगुप्त के जन्म पर की गई होगी।

(घ) 'मालविकाग्निमित्र' का अश्वमेघ यज्ञ समुद्रगुप्त के अश्वमेघ यज्ञ का व्यजक हो सकता है।

(ड.) शैली की दृष्टि से कालिदास की रचना निश्चित रूप से अश्वघोष से परवर्ती है।

(च) कालिदास स्वयं अपने मालविकाग्निमित्र' में भास, सौमिल्ल तथा कविपुत्र आदि का संकेत करते हैं। भाससौमिल्लपुत्रदीनां प्रबन्ध .... किं। 'कुतोऽर्य बहुमानः (माल0 पृ 2) वैसे इन कवियों की निश्चित तिथि का पता नहीं, पर भास का समय उनके नाटकों की प्राकृत के आधार पर ईसा की दूसरी याताब्दी माना जा सकता है।

(छ) वातास भट्टि के मंदसौर के शिलालेख की शैली से पता चलता है, कि वह कालिदास का ऋणी है। मन्दसौर का शिलालेख 473–74 ई0 का है। इससे यह अनुमान हो सकता है कि कालिदास इतने पुराने हों।

(ज) ऐहोल के शिलालेख में कालिदास तथा भारवि का नाम मिलता है जो 634 ई0 का है।

स विजयर्ता रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः।

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि, रघुवंश आदि सात काव्यों (तीन नाटकों व चार काव्यों) के रचयिता 'दीपशिखा' कालिदास चौथी शताब्दी के आस–पास रहे होंगे। बाद के साहित्य से हमें पता चता है कि, बाण के समय तक कालिदास अत्यधिक प्रसिद्ध हो चुके थे। बाण ने स्वयं हर्षचरित में कालिदास की कविता की प्रशंसा की है। उसके बाद वाक्यपतिराज राजशेखर आदि कवियों ने भी कालिदास की प्रशंसा की है। बाद में जाकर कालिदास का नाम इतना प्रसिद्ध हो गया था, कि यह एक उपाधि बन गया।

3.3 महाकवि कालिदास की रचनाएं

कालिदासके नाम से 41 रचनाएँ प्रचलित हैं, परंतु इनमें से सात रचनाएं प्रसिद्ध है–

(क) नाट्य–ग्रन्थ **(1)**. अभिज्ञानशाकुन्तलम् **(2)** विक्रमोर्वशीय **(3)**मालविकाग्निमित्रम्

(ख) काव्य–ग्रन्थ **(4)** रघुवंशम् **(5)** कुमारसंभवम्

(ग) गीतिकाव्य **(6)** मेघदूतम् **(7)** ऋतुसंहार।

कालिदास के नाम से कुछ और रचनाएं प्रचलित थी जिनमें है– **(1)** कालीस्त्रोत **(2)** गंङ्गाष्टक **(3)** ज्योतिर्विदाभरण **(4)** राक्षसकाव्य **(5)** श्रुतबोध।

3.4 महाकवि कालिदास का कर्तृत्व

कालिदास की प्रामाणिक रचनाओं का निर्णय करना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि, कालिदास की काव्यजगत् में ख्याति होने पर अवान्तरकालीन बहुत से कवियों ने 'कालिदास' का प्रसिद्ध अभिधान धारण कर अपने व्यक्तित्व को छिपा लिया। कम से कम राजशेखर ने तीन कालिदासों की सत्ता का पूर्ण संकेत किया है। एक तो परम्परा की अविच्छिन्नता और दूसरे कलिदासों की सत्ता –दोनों ने मिलकर इस समस्या को जटिल तथा अमीमांस्य बना रखा है।

ऋतुसंहार –

'ऋतुसंहार' कालिदास की प्रथम काव्यकृति है। विद्वानों की दृष्टि में बालकवि कालिदास ने काव्यकला का आरम्भ इसी ऋतु–वर्णन–परक लघुकाव्य से किया। छह सर्गों में विभक्त यह काव्य ग्रीष्म से आरम्भ कर वसन्त तक छह ऋतुओं का बड़ा ही स्वाभाविक, अकृत्रिम तथा सरल वर्णन प्रस्तुत करता है, परन्तु इससे न तो कालिदास की कमनीय शैली या वाग्वैदग्ध्यता का परिचय मिलता है, न ही इसमें बाल–रचना की पुष्टि में ही कोई प्रमाण मिलता है। भारतीय दृष्टि से ऋतुओं का वर्णन रूढिगत तथा सर्वथा सामन्जस्यपूर्ण है। अलंकार ग्रन्थों में उद्धरण का अभाव भी उक्त सन्देह की पुष्टि करता प्रतीत होता है।

कुमारसम्भव –

यह कालिदास की सच्ची निःसन्दिग्ध प्रमाणिक रचना है। इसमें कवि ने कुमार कार्तिकेय के जन्म के वर्णन का संकल्प किया था, परन्तु यह महाकाव्य अधूरा ही है। इसके वर्तमान 17 सर्गों में से आदि के सात सर्ग तो कालिदास की लेखनी के चमत्कार हैं ही, अष्टम सर्ग भी निःसन्देह उनका ही निर्माण है। आलंकारिकों तथा सूक्तिसंग्रहों ने इन्हीं सर्गों में से पद्यों को उद्धृत किया है। कालिदासीय कविता के पारखी मल्लिनाथ ने इतने ही सर्गों में अपनी 'संजीवनी' टीका लिखी। इन अष्ट सर्गों में विषय की दृष्टि से पूर्ण ऐक्य है। कविता का चमत्कार सहृदयों के लिये नितान्त हृदयावर्जक है। 'जगत्–पितरौ', शिव–पार्वती जैसे दिव्य दाम्पत्य के रूप में तथा स्नेह का वर्णन सर्वथा औचित्यपूर्ण तथा ओजस्वी है। केवल अष्टम सर्ग का रतिवर्णन आलंकारिकों के तीव्र कटाक्ष का पात्र बना है। पंचम सर्ग में पार्वती की कठोर तपश्चर्या का वर्णन जितना ओजपूर्ण, उदात्त तथा संश्लिष्ट है उतना ही तृतीय सर्ग पर्यन्त में शिवजी की समाधि का वर्णन है। 9 से लेकर 17 सर्ग पर्यन्त किसी साधारण कवि द्वारा लिखित प्रक्षेपमात्र है।

मेघदूत –

यह कालिदास की अनुपम प्रतिभा का विलास है। वियोगविधुरा कान्ता के पास यक्ष का मेघ द्वारा प्रणय–सन्देश भेजना मौलिक कल्पना ही है। सम्भव है यह हनुमान को दूत बनाकर भेजने की रामायणीय कथा अथवा हंसदूत की महाभारतीय कथा के द्वारा संकेतित किया गया है। परन्तु इसका विषयोपन्यास कवि की मौलिक सूझ–बूझ का परिणाम है। इसकी लोकप्रियता तथा व्यापकता का निर्दशनविपुल टीका –सम्पत्ति (लगभग 50 टीकाओं) से तो लगता ही है, साथ ही साथ तिब्बती तथा सिंघली भाषा में इसके अनुवाद से

यह विशेषता पुष्ट होती है। 'मेघदूत' को आदर्श मानकर संस्कृत में निबद्ध एक विपुल काव्यमाला है, जो **'सन्देश–काव्य'** के नाम से विख्यात है। पूर्वमेघ में कवि ने रामगिरी से अलका तक मार्ग के वर्णनावसर पर समस्त भारतवर्ष की प्राकृतिक सुषमा का अभिराम उपन्यास किया है। यह वाह्यप्रकृति के सौन्दर्य तथा कमनीयता का उज्जवल प्रदर्शन है तो उत्तरमेघ में मानव हृदय के सौन्दर्य तथा अभिरामता का विमल चित्रण है। यक्ष का प्रेम–सन्देश, उसके कोमल हृदय के स्वाभाविक स्नेह का तथा नैसर्गिक सहानुभूति का एक मनोरम प्रतीक है और इस उदात्त प्रेम का अभिव्यञ्जक, काव्यसुषमा तथा भावसौष्ठव से मण्डित यह ग्रन्थ–रस का अक्षय स्रोत है, जिसकी भावधारा सूखने की अपेक्षा दिन–प्रतिदिन आन्नदातिरेक से वृद्धिगृही होती जा रही है।

रघुवंश –

भारतीय आलोचक रघुवंश को कालिदास का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ मानते हैं और इसीलिये कालिदास के लिये ही 'रघुकार'(रघुवंश का रचयिता) अभिधान का प्रयोग किया गया है। ग्रन्थ की लोकप्रियता तथा व्यापकता का परिचय विभिन्न काल में निर्मित 40 टीकाओं के अस्तित्व से भी भली–भाँति मिल सकता है। रघु के जन्म की पूर्व पीठिका से ही इस काव्य का आरम्भ होता है। दिलीप के गोचारण से रघु का जन्म होता है (द्वितीय तथा तृतीय सर्ग), जो अपने अदम्य साहस से पूरे भारतवर्ष के ऊपर दिग्विजय करते हैं (चतुर्थ सर्ग) और अपनी अद्भुत दानशीलता दिखलाकर लोगों को चकित कर देते हैं (पंचम सर्ग)। इसके अनन्तर तीन सर्गों में इन्दुमती का स्वयंवर, अन्य समवेत राजाओं को परास्त कर रघुपुत्र अज का इन्दुमती से विवाह तथा कोमल माला के गिरने से इन्दुमती का मरण तथा अज का करुण विलाप क्रमशः वर्णित है। दसवें सर्ग से लेकर 15वें सर्ग तक रामचरित का विस्तृत वर्णन है। यहाँ कालिदास ने बड़े ही मनोयोग से रामचन्द्र के चरित का वैशिष्ट्य प्रदर्शित किया है। त्रयोदश सर्ग में पुष्पकारूढ़ राम के द्वारा भारतवर्ष के स्थलों का रुचिर वर्णन कालिदास की प्रतिभा का विलास है। चतुर्दश सर्ग में सीता के चरित की सुषमा से आलोकित है। राम के द्वारा परित्यक्ता गर्भ–भरालसा जनक–नन्दिनी के प्रणय–सन्देह में जो आत्मगौरव, जो स्नेह भरा हुआ है, वह पतिव्रता के चरित का उत्कर्ष है। अनन्तिम कतिपय सर्गों में कालिदास नाना राजाओं के चरित को सरसरी तौर से निरखते चले गये हैं, परन्तु अन्तिम 19वें सर्ग में कामुक अग्निवर्ण का चित्रण बड़ी ही मार्मिकता के साथ कवि ने किया है। देखने में रघुवंश अधूरा सा दिखता है, परन्तु कालिदास ने यहां प्रभु शक्ति की कल्पना में अपने विचारों को पूर्णरूपेण अभिव्यक्त कर दिया है। प्रकृतिरंजन के कारण राज्य की समृद्धि होती है तथा प्रकृतिहिंसन के कारण राज्य का सर्वनाश होता है– यह उपदेश बड़े ही अच्छे ढंग से रघुवंश के अनुशीलन से प्रकट हो रहा है।

3.5 महाकवि कालिदास की शैली

कविता–कामिनी–कान्त कालिदास न केवल संस्कृत वाङ्मय, के अपितु विश्व–वाङ्मय के मुकुटालंकार हैं। उनकी सूक्ष्मदृष्टि बाह्य जगत् और अन्तर्जगत् की तात्विक विधाओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम

पदावली में उनको अनुस्यूत करती है। उनकी कलात्मक तूलिका नीरसता में सरसता, कर्कश में कोमलता, कठोर में सुकुमारता, सामान्य में विलक्षणता, प्रसाद में माधुर्य का संचार करती है।

उनकी कलात्मकता की छाप उनके साहित्य में पग–पग पर देखने को मिलती है। उनकी काव्यात्मशैली अद्‌भुत है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार काव्य को ध्वन्यात्मक बना देता है। इनकी भाषा रूपी कालिन्दी और भावरूपी भागीरथी के मध्य सालंकृत पदावली–रूपी सरस्वती; संगम का महनीय वैभव उपस्थित करती है। उनकी शैली में भाषा–सौष्ठव, मनोरम भावाभिव्यक्ति अलंकारों का सहज सरल विचार, अन्तः और बाह्य प्रकृति का मनोहारी चित्रण, रसों का सुन्दर परिपाक, जीवन दर्शन की रुचिर स्थापना, विविध विद्या और मनोभावों की मार्मिक अनुभूति का मनोज्ञ मणिकांचन संयोग उपस्थित करती है।

प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति उनके काव्यगौरव को अधिक समुन्नत करती है। उनकी उपमाओं का तो पूरा विश्व उपमा देता है– **"उपमा कालिदास"**कहकर।

कुछ विद्वानों का मत है कि, कालिदास ने उपमाओं का इतना उत्तम उपयोग नहीं किया है, जितना अर्थान्तरन्यास का उनकी शैली में उत्प्रेक्षाओं की ऊँची उड़ान तो कहीं प्रांजल पदावली का सौकुमार्य, कहीं प्रसाद है, तो कहीं माधुर्य कहीं कला प्रधान है तो कहीं कल्पना।

3.6 भाषा–सौष्ठव–

कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उनकी भाषा रसानुकूल होती है। भावों की संक्षिप्त और मार्मिक व्यञ्जना करना कालिदास की मुख्य विशेषता है। पद–माधुर्य के कारण उनके काव्यों में संगीतात्मकता और लयात्मकता .का दर्शन होता है। वाल्मीकि के आश्रम में परित्यक्त जानकी के करुण क्रन्दन का मार्मिक चित्रण कालिदास ने प्रस्तुत किया है। जानकी के शोक पर संवेदना प्रकट करते हुए मोरों ने नाचना, भ्रमरों ने कुसुम रसास्वाद, मृगियों ने कुशचर्वण छोड़ दिया था। इस प्रकार वन में करुण का दृश्य उपस्थित हो गया था –

नृत्यं मयूराः कुसुमानि भृंङ्गा
दर्भानुपात्तान् विजहुर्हरिण्यः।
तस्याः प्रपन्ने समदुःखभाव।
मत्यन्तमासीद् रुदितं वनेऽपि।।

शृङ्गार का भी भाषा मूलक सौन्दर्य निम्न स्थान पर देखा जा सकता है। मधुयामिनी का रसास्वाद करते हुए दम्पत्ती शिव–पार्वती को कैलाश पर्वत पर शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर क्या ही उनके भाव विलास को समीरित कर रहा था ?

स्वर्वाहिनीवारि विहारचारी
रतान्तनारी श्रमशान्तिकारी।
तौ पारिजातप्रसवप्रसङ्गो
मरुत् सिषेवे गिरिजा गिरीशौ।।

इसमें अनुप्रास के व्यञ्जक वर्णों व, र श, स के प्रयोग से भाषा–सौष्ठव क्या ही सुन्दर और सुखद बन पड़ा है। महाकवि की कृतियों में भाषा सौष्ठव के उदाहरण पग–पग पर प्राप्त होते हैं।

भावाभिव्यक्ति –

कालिदास की काव्य कला में कल्पना की ऊँची उड़ान है। भावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भावसौन्दर्य पग–पग पर परिलक्षित होता है। पार्वती के वर चयन पर क्या ही सुन्दर संकोच और शालीनता का भाव प्रस्तुत किया गया है–

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।(कु0सं0 6–84)

नारद ने जब वररूप शंकर का उल्लेख किया तो पिता के समीप बैठी हुई पार्वती शील एवं संकोच के कारण मुख नीचे किये हुए लीला–कमलों के पत्तों को गिनती रहीं। इसी तरह जीवन मरण का दर्शन भी महाकवि ने बड़े ही सरल एवं भावातिश्योक्ति पूर्ण शब्दों में प्रकट किया है। मृत्यु प्राणी का स्वभाव है इसका विकार ही जीवन है।

मरणं प्रकृतिः शरीरिणां, विकृति र्जीवित मुच्यते बुधैः।
क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ।। (रघु0 8–81)

रस–परिपाक –

शृङ्गार को रसराज कहा जाता है और महाकवि तो शृङ्गार–शिरोमणि हैं। महाकवि संयोग और विप्रलम्भ दोनों ही प्रकार के शृङ्गार के वर्णन में सिद्धहस्त हैं। करुण रस के भी अत्यन्त मार्मिक चित्रण किये गये हैं। कवि ने शिव–पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की अविभाज्यता और अनुकरणीयता की कल्पनापूर्ण तुलना भागीरथी और समुद्र के प्रेम से की है। यही एक–दूसरे के लिये सर्वस्व होने की स्थिति, रसात्मक अनुराग की थी।

तं यथात्मसदृशं वरं वधू
रन्वरज्यत वरस्तथैव वताम्।
सागरादनपगा हि जाह्नवी
सोऽपि तन्मुखरसैकवृत्तिभाक्।। (कुमार 8–16)

रघुवंश में विप्रलम्भ का अत्यन्त मनोज्ञवर्णन राम परित्यक्ता सीता की भाव विह्वलता में प्राप्त होता है। करुण आदि रसों का भी अपने ग्रन्थों में सुन्दरता के साथ प्रस्तुतीकरण किया है।

अलंकार निरूपण :–

महाकवि कालिदास ने अपनी कविता कामिनी को सुन्दर अलंकारों से विभूषित किया है। उपमा के प्रयोग में तो महाकवि सिद्धहस्त कवि है। यथास्थान उन्होंने अनुप्रास, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि को सरस और स्वाभाविक ढंग से प्रयोग कर अपने काव्य को रोचक बनाया है।

3.7 महाकवि कालिदास की रचनाओं की संक्षिप्त कथा

रघुवंश

महाकवि कालिदासकृत रघुवंश महाकाव्य संस्कृत साहित्य में लघुत्रयी के नाम से प्रसिद्ध तीन महाकाव्यों में से एक है– **'रघुवंश'**। लघुत्रयी में रघुवंश को सर्वोपरि माना गया है। महाकाव्य की दृष्टि से रघुवंश का साहित्य जगत् में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस ग्रन्थ का इतिवृत्त वाल्मीकीय रामायण से ग्रहण किया गया है। ग्रन्थ में कुल 19 सर्ग हैं जिसमें महाराज दिलीप से लेकर अग्निवर्ण पर्यन्त 31 राजाओं के काव्यात्मक जीवनवृत्त वर्णित हैं। इनमें दिलीप, रघु, अज, दशरथ और राम के जीवन का विशद वर्णन है।

प्रथम सर्ग– राजा दिलीप की सन्तानहीनता और सन्तान प्राप्त्यर्थ कुलगुरू वशिष्ठ के आदेशानुसार कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा का व्रत लेना। **2.** नन्दिनी की सेवा प्रसन्न नन्दिनी द्वारा सन्तान लाभ का वरदान। **3.** रघु का जन्म, विद्याध्ययन, इन्द्र से युद्ध में विजय प्राप्ति तथा रघु का राज्याभिषेक **4.** रघु के दिग्विजय का वर्णन **5.** ब्रह्मचारी कौत्स द्वारा गुरुदक्षिणार्थ 14 सुवर्णमुद्राओं की याचना, रघु का कुबेर पर आक्रमण, धनवृष्टि प्रसन्न कौत्स का रघु को पुत्र लाभ का आर्शीवाद, अज का जन्म इन्दुमती–स्वयंवर के लिए अज का प्रस्थान 6. इन्दुमती स्वयंवर का वर्णन **7.** अज–इन्दुमती का परिणय, अन्य राजाओं से युद्ध और अज की विजय **8.** अज का राज्याभिषेक, दशरथ जन्म, इन्दुमती–वियोग और अज का विलाप **9.**दशरथ का मृगया वर्णन, श्रवण–वध, दशरथ को शाप–प्राप्ति **10.** पुत्रेष्टि यज्ञ, राम आदि 4 पुत्रों का जन्म **11.** सीतास्वयंवर और राम आदि का विवाह **12.** राम–वनवास, सीता हरण, युद्ध, रावण वध **13.** राम का पुष्पक विमान से अयोध्या प्रत्यागमन तथा मार्गस्थ स्थलों का विशद वर्णन **14.** राम–राज्याभिषेक, सीता–परित्याग **15**. लवकुश का जन्म, राम का स्वर्गारोहण **16.** कुश का राज्याभिषेक कुश का कुमुद्वती से विवाह **17.** कुश का स्वर्गवास, कुश–पुत्र अतिथि का राज्याभिषेक **18**. अतिथि तथा उसके वंशज **21**.राजाओं का संक्षिप्त वर्णन **19.** अग्निवर्ण का राज्याभिषेक, उसकी अत्यधिक विषयासक्ति, राज यक्ष्मा से पीड़ित होकर स्वर्गवास, उनकी रानी का राज्याभिषेक, गर्भस्थ बालक के उत्तराधिकारी होने का अमात्यों द्वारा निर्णय। इस प्रकार त्यागपूर्ण जीवन से प्रारम्भ करके विलासी पूर्ण जीवन का वर्णन करते हुए इतिवृत्तात्मक तथा उपदेशात्मक शैली से कवि ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार दिखाया है। काव्य के विभिन्न अंगों पर दृष्टिपात करने पर इस काव्य का वैभव और महत्ता प्रतीत होती है।

काव्यगत विशेषताएं–

रघुवंश श्रेष्ठ काव्य है। इसमें कालिदास की काव्य शैली, अलंकार–योजना, रस आदि सभी दृष्टियों से काव्य का वैभव चरम पर है। अलंकारों का वर्णन अतीव चमत्कारी है। कवि की उपमा तो विश्वप्रसिद्ध है। इसके इतर अर्थान्तरन्यास, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के साथ शब्दालंकारों में यमक, अनुप्रास का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

रस–

इस परिपाक की दृष्टि से रघुवंश में सभी रसों का पूर्णरूपेण परिपाक हुआ है। उदाहरणस्वरूप आश्रमों के वर्णन में शान्त रस, रघु, अज राम आदि के वर्णन में वीर तथा अज–विप्लव में करुण रस, शृङ्गार, वीभत्स

आदि रसों का भी उल्लेख है। रस परिपाक की इसी अनुपम दृष्टि को ध्यान में रखकर कवि सोढ्ढल ने इन्हें रससिद्ध कवीश्वर की उपाधि दी है।

रघुवंश के नवम सर्ग में कविवर ने वसन्त का बड़ी ही मनोरञ्जक वर्णन किया है–

"श्रुतिसुखभ्रमरस्वनगीतयः कुसुमकोमलदन्तरुचो बभुः।
उपवनान्तलताः पवनाहतैः किसलयैः सलयैरिव पाणिभिः।। (रघु–9–35)

उपवन में लतायेंनाच रही हैं। सुनने में रमणीय भ्रमर का गुञ्जन गान की तरह सुनाई पड़ रही है। कोमल कान्ति वाले विकसित फूल गाते समय नर्तकी के दांत सदृश दिखाई पड़ते हैं। पत्ते वायु से हिल रहे हैं, मानो वे लय से युक्त हाथों से भाव बता रही है। लता तथा नर्तकी का सुन्दर साम्य दर्शाया गया है।

भाषा–

कवि की शब्द योजना और भाव–भंगिमा काव्य का महाप्राण है। महाकवि कालिदास की भाषा सरस, सरल एवं प्रसादगुण युक्त है। भाव को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। निःसन्तान दशरथ, श्रवण कुमार के अंधे माता–पिता के शाप को अपना वरदान मानते हुए कहते हैं– हे! मुनिश्रेष्ठ, आपका यह शाप पुत्रहीन अभागे के लिए वरदान है। इस प्रकार कालिदास के कवित्व में जनमंगल की भावना विद्यमान है। महाकवि का प्रकृति के प्रति अनन्य अनुराग पग–पग पर दिखाई देता है। वे प्रकृति को सजीव व मानवीय भावनाओं से युक्त मानते हैं। मानव की भाँति प्रकृति भी सुख और दुःख का अनुभव करती है। निःसन्देह कालिदास प्रकृति के अन्तः स्थल के सूक्ष्म पारखी महाकवि हैं, जिनकी दृष्टि प्रकृति के सौम्य रूप, माधुर्यमय प्रवृत्ति तथा स्निग्ध सौन्दर्य के ऊपर रीझती है तथा उग्रता और भीषणता से सदा पराङ्मुख रहती हैं।

कुमारसम्भव की संक्षिप्त कक्षा –

यह महाकाव्य महाकवि कालिदास की रचना है। यह महाकाव्य आठ सर्गों तक ही कालिदासकृत माना जाता है। इस महाकाव्य में हिमालय पुत्री पार्वती द्वारा शिव की प्राप्ति के लिये की गयी घोर तपस्या एवं शिव–पार्वती के दाम्पत्य प्रेम की कथा वर्णित है। शिव तथा पार्वती की प्रणय गाथा पर लिखने का साहस कालिदास की लेखनी द्वारा ही सम्भव है। कविता चमत्कार सहृदयों के लिए नितान्त हृदयावर्जक है। शिव–पार्वती जैसे दिव्य दम्पत्ती के रूप तथा स्नेह का वर्णन दैवी रूप में न करके मानवीय रूप में किया है। प्रथम सर्ग में हिमालय का सजीव वर्णन तथा पार्वती की उत्पत्ति, तारकासुर से पीड़ित देवों का ब्रह्मा के पास जाना और शिव पार्वती के पुत्र स्कन्द द्वारा तारकासुर के वध का उपाय ब्रह्मा के द्वारा बताया जाना, कामदेव द्वारा शिव की तपस्या को भंग किया जाना, कामदेव को शिव द्वारा भस्मासात् करना, रति विलाप, देवी पार्वती की घोर तपस्या का वर्णन और ब्रह्मचारी वेशधारी शिव से पार्वती का संलाप और समागम, विवाह के लिए शिव का सप्तऋषियों को हिमालय के पास भेजना, शिव की वरयात्रा, पार्वती–परिणय, शिव पार्वती का दाम्पत्य जीवन के लिए विहार वर्णन (कुछ विद्वानों द्वारा आठ सर्गों तक ही कालिदास की रचना मानी जाती है) सर्ग 9 से 17– दाम्पत्य सुखानुभव करते हुए कार्तिकेय का गर्भ में आना, कुमार–जन्म और उनका बाल्यकाल, कुमार का सेनापतित्व, कुमार का सैन्य संचालन, देवसेना का आक्रमण, देवासुर सैन्य संघर्ष,

युद्ध–वर्णन और तारकासुर का वध कुमार कार्तिकेय द्वारा किया जाना। कुमार सम्भव की कृति पूर्णतः रसवादी जान पड़ती है। यौवन की सरस क्रीड़ा का वर्णन ही कवि का प्रमुख प्रतिपाद्य जान पड़ता है, जिसे कालिदास ने पौराणिक इतिवृत्त को लेकर व्यक्त किया है। किंवदन्ती है कि, अष्टम सर्ग के शिव–पार्वती संभोग वर्णन के कारण कालिदास को कुष्ठ रोग हो गया था तथा काव्य अधूरा ही रह गया। परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि कालिदास ने कथावस्तु का अन्त यहीं करना ठीक समझा हो। शेष अन्य सर्गों के विषय में सन्देह है।

काव्यगत विशेषताएं –

कालिदास की प्रतिभा का सुन्दर निदर्शन इसमें भाव और कला दोनों पक्षों का सुन्दर समन्वय है। अपने काव्य में उन्होंने सुन्दरता का अद्वितीय वर्णन किया है, इसलिये उन्हें सौन्दर्य का प्रेमी भी कहा गया है। पार्वती की सुन्दरता का वर्णन करते हुये लिखा है –

" दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चाद्रमसीव लेखा।
पुपोष लावण्यमयान्विशेषान् ज्योत्स्नान्तराणीव कलान्तराणि"।।

अर्थात चन्द्रमा की कला के समान पार्वती भी धीरे–धीरे बढ़ने लगीं। जिस प्रकार चाँदनी बढ़ती है उसी प्राकर पार्वती के साथ–साथ उनके सुन्दर अंग भी बढ़ने लगे। महाकवि ने केवल बाह्य सौन्दर्य की नहीं, अपितु चरित्र और अन्तः सौन्दर्य का भी सुन्दर वर्णन किया है। कालिदास ने पार्वती द्वारा शिव के वरण के प्रसंग में मार्मिक व्यञ्जना प्रस्तुत की है। एक ओर शिव का अकिंचनता, दुर्वेष, असौन्दर्य और अप्रभावोत्पादकता, तो दूसरी और पार्वती का अलौकिक सौन्दर्य सुकुमारता दिव्य आकर्षण है। सुन्दर हास्य मिश्रित व्यंग्य प्रकट किया गया है। वटुरूप धारी शिव का कथन है कि, शिव से प्रेम करके चन्द्रकला और तुम दोनों ने अपना दुर्भाग्य बुलाया है। कोमल भाव के साथ ललित पदावली का समन्वय दर्शनीय है–

"द्वयं गतं साप्रति शोचनीयतां
समागमप्रार्थनया कपालिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावत
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी।।" (कुमार सं0 5/71)

कालिदास के वर्णन नितान्त सूक्ष्म, सुन्दर तथा संश्लिष्ट रूप में होते हैं। अलंकारों की सुन्दर छँटा, वर्णनों में सजीवता, व्यापकता और स्वाभाविकता, भाषा का परिष्कार, रसों का सुन्दर परिपाक, रसराज शृङ्गार का सर्वांगीण वर्णन, तपोमूलक परिष्कृत प्रेम का महत्त्व प्रतिपादन में सिद्धहस्तता कुमारसम्भव की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

3.8 उपमा कालिदासस्य

कालिदास उपमाओं के लिए सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उनकी उपमायें बहुत मनोरम होती हैं। उपमा कालिदास का अत्यन्त प्रिय अलंकार है। वे उपमाओं में लिंग, साम्य, औचित्य आदि का ध्यान रखते हैं। उनकी उपमाएं एकांगी न होकर सर्वांगीण और व्यापक है। कहीं काव्यशास्त्रीय, दार्शनिक, व्याकरण से सम्बद्ध और वेद विषयक हैं, तो कहीं प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों में निबद्ध हैं। कालिदास की उपमाएं एक से बढ़कर एक है।

कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा की उपमा से **'दीपशिखा कालिदास'** हो गए। उन्होंने इन्दुमती स्वयंवर में इन्दुमती की उपमा दीपशिखा से दी है –

"सञ्चारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिवरा सा।
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः।।"

इन्दुमती स्वयंवर में जिस–जिस राजा को छोड़कर आगे निकलती जाती थी, वे उसी प्रकार विवर्ण एवं विषादाकुल हो जाता था, जैसे–संचारिणी दीपशिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राजप्रासाद अंधकारावृत्त हो जाता है। यहां राजाओं की विषण्णता तथा उदासी की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दरता के साथ उपमा द्वारा की गयी है।

कालिदास अपनी उपमा के द्वारा देवता तथा मानव दोनों के गौरव को प्रतिष्ठित करते हैं। समाधि में निरत भगवान् शंकर की उपमा द्वारा जिस अपूर्व स्तब्धता का परिचय दिया है उसका सौन्दर्य देखते ही बनता है–

अवृष्टि संरम्भमिवाम्बुवाहम् अपामिवाधारमनुत्तरङ्गम्।
अन्तश्चराणां मरूतां निरोधाद् निवापनिष्कम्पमिव प्रदीपम्।।

योगेश्वर महादेव शरीरस्थ समस्त वायुओं को निरूद्ध कर पर्यङ्कबन्ध के स्थिर अचंचल भाव से बैठे हैं। जैसे वृष्टि के संरम्भ से हीन अम्बुवाह मेघ हो, तरंग से हीन समुद्र हो तथा निवात–निष्कम्प प्रदीप है। वहां तीनों प्राकृतिक उपमाओं के द्वारा कालिदास योगिराज भगवान शिव की अचंचल स्थिरता की अभिव्यंञ्जना कर उनके गौरव की एक रेखा खींचते दिखाई दे रहे हैं।

एक और बहुत सुन्दर कल्पनामूलक उपमा का उदाहरण है। दिन और रात्रि के मध्य सुशोभित सन्ध्या के तुल्य राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के मध्य कामधेनु पुत्री नन्दिनी की स्थिति। उपमा की उपयुक्तता दर्शनीय है –

पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन
प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या।
तदन्तरे सा विरराज धेनु–
र्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।। (रघु– 2–20)

कामदेव के विनाश से दुखी रति की अवस्था वायु से बुझाये हुए दीपक की धूमावृत वर्तिका के तुल्य अन्धकारावृत (विषादमय) थी। वह कालिदास की सर्वश्रेष्ठ उपमाओं में से एक है –

गत एव न ते निवर्तते
स सखा दीप इवानिलाहतः।
अहमस्य दशेव पश्य मा
मविषह्यव्यसनेन धूमिताम्।।

कालिदास की उपमाओं की रसात्मिकता तथा रसपेशलता नितान्त मर्मस्पर्शी है। किसी भी विषय को सुसज्जित कर उसे प्रस्तुत कर हतप्रभ करने की कला उनमें अपूर्व है। तपस्या के लिए आभूषणों को छोड़कर केवल वल्कल धारण करने वाली पार्वती चन्द्र तथा ताराओं से मंडित होने वाली अरूणोदय से युक्त रजनी के समान बतलायी गयी है। ऐसे ही एक और उपमा के माध्यम से पार्वती जी की सुन्दरता का चित्रण किया है –

पर्याप्त–पुष्पस्तबकावनम्रा संचारिणी पल्लविनी लतेव।।

स्तनों के भार से किञ्चित झुकी हुई आतपसन्निभ लालवस्त्र को धारण करने वाली पार्वती फूलों के गुच्छों से झुकी हुई नवीन लाल पल्लवों से मण्डित संचारिणी लता के समान प्रतीत होती है।

कालिदास ने अनेक स्थलों पर गूढ़ दार्शनिक विचारों को स्पष्ट तथा वर्णित किया है। एक दार्शनिक उपमा में बताया है कि, जिस प्रकार सांख्यदर्शन में बुद्धि (महत्तव) का कारण अव्यक्त (मूल प्रकृति) को बताया गया है। उसी प्रकार सरयू नदी का उदगम् स्थान मान सरोवर है।

"ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो।
बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति।।(रघु 013–60)

कालिदास की उपमाओं से उनके ग्रन्थ भरे पड़े हैं। सुधी पिपासुओं को अपनी जिज्ञासा रूपी व्यास को बुझाने के लिए पर्याप्त है। जिस प्रकार कालिदास की उपमाओं में जो भावभिव्यक्ति और रस सौन्दर्य मिलता है उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञान धारा भी बहती है। कालिदास वस्तुत संस्कृत साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनमें असाधरण कवित्व शक्ति का नवनवोन्मेष विद्यमान हैं। उनकी कविता साक्षात् त्रिवेणी है। जिसमें कवित्व की निर्मल पवित्र मन्दाकिनी की धारा है। भावों और कल्पनाओं की तीव्र धारा मनोज्ञ यमुना की धारा है, विविध कला, ज्ञान की प्रतिभा सरस्वती की शुभ्रधारा है। उनके काव्य में स्वर्गीय आनन्द है, सम्मोहन है।

कवि विषयक प्रशस्तियां

कालिदास का भाव सौष्ठव उसकी उपमाएं और अर्थांतरन्यास, उनकी कोमल कांत पदावली, कल्पना माधुर्य, सहृदय–हृद्यता एवम अर्थगांभीर्य गुण सभी कवियों के द्वारा अभिनंदनीय रहे हैं। कुछ सूक्ति मुक्ताएं ये है,–

1– निर्गतासु न वा कस्य कलिदासस्य सुक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसांद्रासु मञ्जरीष्विव जायतेः । (बाण, हर्ष,वा16)

2– साकूतमधुरकोमलविलासिनीकंठकूजितप्राये।
शिक्षासमयेअपि मुदे रतलीला –कालीदासोक्ति।।(गोविर्धनाचार्य, आर्या सप्तशती, भू.36)
3–कविकुलगुरूः कालीदासो विलासः। (जयदेव, प्रसन्न.1वा22)
4–लिप्ता मधुद्रवेणासन् यस्य निर्विषया गिरः।
तेनेद वर्त्म वैदर्भ कालिदासेन शोधितम।।
(दंडी, अवंतिसुंदरी, भूमिका 15)

अभ्यास :–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) रघुवंश महाकाव्य में कुल कितने सर्ग है।

(क) 19 (ख) 20 (ग) 21 (घ) 22

उत्तर (ख) 19

(2) रघुवंश में कौन सा रस प्रमुख है।

(क) शान्त (ख) करुण (ग) शृङ्गार (घ) वीर

उत्तर (ग) शृङ्गार

(3) कालिदास की रचना नहीं है।

(क) मेघदूत (ख) रघुवंश (ग) मृच्छकटिक (घ) कुमारसम्भव

उत्तर (ग) मृच्छकटिक

(4)''नववैधव्यमसह्यवेदनम्'' किस रचना की सूक्ति है।

(क) वेणीसंहार (ख) रघुवंश (ग) मालती माधव (घ) कुमार संभव

उत्तर (घ) कुमार संभव

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1–रघुवंश महाकाव्य की कथा संक्षेप में लिखते हुये काव्यगत विशेषताओं का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 2–''उपमा कालिदासस्य''की समीक्षा कीजिये।

प्रश्न 3–कालिदास की कृतियों का उल्लेख करते हुये उनकी काव्य शैली का वर्णन कीजिये।

इकाई – 4

महाकवि अश्वघोष–तथा महाकवि भारवि

इकाई की रूपरेखा

4.1 इकाई परिचय

4.2 उद्देश्य

4.3 महाकवि अश्वघोष का समय

4.4 महाकवि अश्वघोष का व्यक्तित्व

4.5 महाकवि अश्वघोष का कृतित्व

4.6 महाकवि अश्वघोष की काव्यशैली

4.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के अन्तर्गत प्रश्न–पत्र 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' (MAST-13) निर्धारित है। इस प्रशन–पत्र में कुल 13 इकाईयाँ हैं,जिनमें चतुर्थ महाकवि भारवि से सम्बन्धित है। इसमें अश्वघोष एवं भारवि के व्यक्तित्व कर्तृत्व का विस्तृत अध्ययन किया जायेगा।

4.1 उद्देश्य

संस्कृत साहित्य के प्राचीनतम कवियों में अश्वघोष गिने चुने व्यक्तियों में से हैं। जिनके रचनाकाल के विषय में अधिक मतभेद नहीं है। बौद्धग्रन्थों से अश्वघोष के बारे में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। बौद्ध आचार्यों में अश्वघोष का स्थान बहुत ही ऊँचा है।

कुछ मतावलम्बियों के अनुसार अश्वघोष ही महायान सम्प्रदाय तथा माध्यमिक शून्यवाद के मूल प्रवर्तक थे परन्तु इस विषय में विद्वानों के दो मत हैं। माध्यमिक शून्यवाद के प्रवर्तक नागार्जुन थे। यह महायान शाखा का दर्शन है। इसलिए कुछ लोगों ने अश्वघोष को महायान सम्प्रदाय का प्रवर्तक मानकर उन्हें माध्यमिक शून्यवाद से भी सम्बद्ध कर दिया है। कुछ विद्वान् अश्वघोष को महायान सम्प्रदाय का अनुयायी मानने को भी तैयार नहीं हैं तथा इनके मतानुसार महायान सम्प्रदाय का उदय अश्वघोष के समय तक नहीं हुआ था तथा यह अश्वघोष के लगभग 100 वर्ष बाद का है। इस मत को मानने वाले विद्वान् प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक ग्रन्थ महायान –श्रद्धोत्पाद–संग्रह को अश्वघोष की कृति मानने के लिए तैयार नहीं हैं। इस मत के प्रबल पोषकों में विंटरनित्स तथा तकाकुसू हैं। जबकि, इस ग्रन्थ के चीनी अनुवाद के आधार पर आंग्ल अनुवाद के

उपस्थापक प्रो0 टी0 सुजुकी के मतानुसार इस ग्रन्थ के रचयिता अश्वघोष ही थे। इस प्रकार अश्वघोष का महायान सम्प्रदाय के विकास में महवपूर्ण योगदान रहा है। यह मत गलत नहीं होगा तथा इसकी पुष्टि अश्वघोष के काव्यों से भी हो जाती है।

4.3 महाकवि अश्वघोष का काल व्यक्तित्व और कर्तृत्व

अश्वघोष को अधिकांश समीक्षक कालिदास का परवर्ती कवि मानते हैं। इनका समय ईसा की प्रथम शताब्दी बतलाते हैं। अश्वघोष अयोध्या के निवासी थे और उनकी माता का नाम सुर्वणाक्षी था– आर्यसुवर्णाक्षी पुत्रस्य साकेतकस्य भिक्षोराचार्यस्य भदन्ताश्वघोषश्य महाकवेर्महावादिनःकृतिरियम। वे ब्राह्मण जाति के थे, बाद में वे बौद्ध हो गये थे। चीनी परम्पराएं उन्हें कनिष्क (78 ई0) का समकालीन मानती हैं, उन्हें कनिष्क का सभा पण्डित, गुरु व आत्मीय कहा जाता है। सम्राट् कनिष्क के द्वारा आयोजित चतुर्थ बौद्ध संगीति (100 ई0) के आचार्य भी कहे जाते हैं।

4.4 महाकवि अश्वघोष का व्यक्तित्व

महाकवि अश्वघोष केवल बौद्ध धर्म के ही नहीं, परन्तु कई अनेक विषयों के मर्मज्ञ महाकवि भी थे। वह दार्शनिक संगीतज्ञ एवं विचारक के साथ–साथ उत्कृष्ट नाटककार भी थे। इसीलिये, इनकी कृतियों में वैदिक धर्म ब्राह्मण धर्म व बौद्ध धर्म में अनेक सामञ्जस्य पूर्ण बातें देखने को मिलती हैं, परन्तु प्रधानतया बौद्ध धर्म और दर्शन के क्षेत्र में उनकी प्रतिभा बेजोड़ रहीं हैं। वे बड़े ही तार्किक विद्वान थे, कहा जा सकता है कि वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। ब्राह्मण कुल में उत्पन्न कुशल पण्डित थे। विशेषतया वाल्मीकीय रामायण के मर्मज्ञ थे। साकेतवासी होने के कारण उनकी विशेष रुचि रामायण में थी।

4.5 महाकवि अश्वघोष की कृतियॉ –

अश्वघोष कारयित्री एवं भार्वायत्री प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अनके ग्रन्थों का प्रणयन किया। इनकी सात कृतियां प्रामाणिक मानी जाती हैं।

महाकाव्य : बुद्धचरितम्, सौन्दरनन्द

व्यंग्यात्मक ग्रन्थ : वज्रसूची

नाट्यग्रन्थ : शारिपुत्रप्रकरण

कथासंग्रह : सूत्रालंकार

दार्शनिकग्रन्थ : महायानश्रद्धोत्पाद

स्त्रोत्रकाव्य : गण्डीस्तोत्रगाथा

अश्वघोष द्वारा प्रणीत ग्रन्थों में कीर्तिस्तम्भ है, बुद्धचरितम्। यह एक महाकाव्य है। परन्तु दुर्भाग्यवश मूल रूप में यह आधा ही प्राप्त है, इसके अन्य भाषाओं चीनी तथा तिब्बती अनुवाद में यह 28 सर्गो में है परन्तु संस्कृत में **दूसरे सर्ग** से 14 सर्ग तक ही ग्रन्थ उपलब्ध है। तिब्बती भाषा में इसका अनुवाद 800 ई0 के लगभग हुआ था।

चीनी यात्री इत्सिंग ने इसको विशाल महाकाव्य बताया है। प्रो0 कॉबेल (E.B.cowell)ने 1883 ई0 में इंग्लैण्ड से इसका संस्करण प्रकाशित किया था।

4.6 'बुद्धचरितम' की संक्षिप्त कथा

इस ग्रन्थ में बुद्ध के जन्म से लेकर महानिर्वाण तक की कथा का वर्णन किया गया है। सर्गबद्ध संक्षिप्त कथा इस प्रकार है– 1–**सर्ग** बुद्ध का जन्म, **सर्ग–2,** अन्तःपुर में विहार, **सर्ग 3**–रोगी एवं वृद्धजनों को देखकर मन में संवेग की उत्पत्ति, **सर्ग 4**– रमणियों द्वारा बुद्ध को अपने जाल में फंसाने की चेष्टा और बुद्ध द्वारा उनका तिरस्कार, **सर्ग–**5 बुद्ध का घर से अभिनिष्क्रमण। **सर्ग 6**–बुद्ध को छोड़कर घुडसवार छन्दक का नगर में लौटना, **सर्ग 7**–गौतम का तपोवन में प्रवेश, **सर्ग 8**– अन्तःपुर की नारियों का विलाप, **सर्ग 9**–कुमार का अन्वेषण, **सर्ग–10** विम्बसार का आगमन, **सर्ग 11** – काम की निन्दा, **सर्ग 12**– बुद्ध का अराड ऋषि के आश्रम में गमन और अराड द्वारा धर्मोपदेश, **सर्ग 13**–मार (कामदेव) का बुद्ध की तपस्या में विघ्न डालना, **सर्ग 14**–बुद्धत्व की प्राप्ति, **सर्ग 15**–धर्मचक्र प्रवर्तन, **सर्ग 16**– अनेक शिष्यों का दीक्षित होना, **सर्ग–17** महाशिष्यों की प्रव्रज्या, सर्ग 18 –अनाथ पिण्डद की दीक्षा सर्ग 19 –पिता पुत्र समागम, **सर्ग 20**–जेतवन स्वीकार **सर्ग 21**– प्रव्रज्या–स्रोत वर्णन, **सर्ग 22**–गौतम का आम्रपाली के उपवन में गमन, **सर्ग 23**–आयु पर अधिकार करने का प्रकार का वर्णन **सर्ग 24**–गौतम की लिच्छिवियों पर अनुकम्पा, **सर्ग 25**– गौतम का निर्वाण पथ पर अभियान, **सर्ग 26–** महापरिनिर्वाण **सर्ग 27**– निर्वाण की प्रशंसा, **सर्ग 28**– धातुविभाजन।

इस प्रकार अश्वघोष ने भगवान बुद्ध के संघर्षमय जीवन की नाना घटनाओं का बड़ा जीता–जागता अद्भुत और रुचिकर चित्र अंकित किया है।

सौन्दरनन्द– यह अश्वघोष का दूसरा महाकाव्य है, जो 18 सर्गों में निबद्ध है। सौन्दरनन्द यौवनसुलभ उद्दाम काम तथा धर्म के प्रति जागरित प्रेम के विषम संघर्ष को भव्य भाषा में चित्रित करने वाला एक अद्भुत काव्य है।

महामहोपाध्याय श्री हर प्रसाद शास्त्री ने नेपाल महाराज के पुस्तकालय से जीर्ण–शीर्ण रूप में प्राप्त दो हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर संपादन करके 1910 ई0 में इसे प्रकाशित कराया। डॉ जान्स्टन (Johnston) ने 1928 ई0 में इसका एक सुन्दर संस्करण अंग्रेजी अनुवाद के साथ प्रकाशित किया था।

प्रकृत महाकाव्य में सुन्दरी एवं नन्द की प्रणय कथा प्रधान है। सुन्दरी नन्द की पत्नी थी एवं नन्द महात्मा बुद्ध का भाई। नन्द सुन्दरी के प्रेम में अत्यन्त आसक्त था, किन्तु बुद्ध ने अनिच्छुक नन्द को उसकी आशक्ति से मोहभङ्ग कराकर अपने धर्म में दीक्षित किया।

भोग की माधुरी में लीन नन्द जीवन के सुखों को कदापि छोडना नहीं चाहते थे, परन्तु बड़े ही यत्नपूर्वक उन्हें प्रव्रज्यामार्ग पर अन्ततोगत्वा आने पर बाध्य होना पड़ा।

इन्द्रिय विषय के लिए आवश्यक कर्तव्य, मानसिक शुद्धि की विधि, चार आर्य सत्यों की व्याख्या के द्वारा नन्द को बुद्धि द्वारा ज्ञान प्राप्त कराया गया। उसी सुन्दर भावना की भोग विलास के विपुल संघर्ष की अत्यन्त सरल अभिव्यक्ति सौन्दरनन्द में मिलती है। नन्द और सुन्दरी की मूक वेदना के चित्रण में अश्वघोष को जितनी सफलता प्राप्त हुई है उतनी ही बौद्धधर्म के उपदेशों को सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने में हुई है।

अश्वघोष में अपने इस महाकाव्य में काव्यकला का सर्वोत्कृष्ट प्रदर्शन किया है।

शारिपुत्रप्रकरण–शारिपुत्रप्रकरण 8 अंकों में रचित एक प्रकरण है।

जिसमें शारिपुत्रप्रकरण की बौद्धधर्म में दीक्षा का प्रसंग नाटकबद्ध किया गया था।

इस प्रकरण में मध्यम वर्ग के जीवन के साथ चोर,शराबी वेश्याओं आदि का चित्रण प्राप्त होता है।

शारिपुत्रप्रकरण में मौद्गल्यायन तथा शारिपुत्र के बुद्ध द्वारा शिष्य बनाये जाने की कथा है।

4.5 महाकवि अश्वघोष की काव्यशैली –

अश्वघोष की विद्वता महान कवि दार्शनिक, वैयाकरण होने का परिचय उनके दोनों महाकाव्य दे रहे हैं। अश्वघोष वैदर्भी रीति के कवि थे। उनकी इस शैली में अलंकार की अपेक्षा अर्थ पर अधिक ध्यान दिया गया है। अश्वघोष रामायण, महाभारत, महाकवि कालिदास से अधिक प्रभावित थे इसलिए उनकी शैली में प्रासाद और माधुर्य का बाहुल्य है, उनका दर्शन और व्याकरण पर भी विशेष अधिकार रहा है। अतः वह दर्शनों के सूक्ष्म तत्त्वों को अत्यन्त सरल और सुबोध भाषा में प्रस्तुत करने में समर्थ थे। व्याकरण से सम्बद्ध शास्त्रीय उपमाओं तथा विलक्षण पदों के प्रयोग में अश्वघोष कभी नहीं चूके। उनके वर्णनों में सजीवता और यथार्थता झलकती है। अनुप्रास और यमक के अतिरिक्त उपमा और अर्थान्तरन्यास अलंकारों का बहुत सुन्दरतम ढंग से प्रयोग किया है। महाकवि अश्वघोष का लक्ष्य था कि वे अपनी शैली की सुन्दरता, स्पष्टता और सजीवता के माध्यम से सभी लोगों के मन को आकृष्ट पायें और ऐसा ही हुआ। जिनको शुष्क नीरस कथन प्रभावित नहीं कर सकते थे। उनकी सरल सुगभ शैली ने उन्हें सरल और गूढ दर्शन को भी समझने में सहायता की। अश्वघोष की रचनाओं में रोचकता की अधिकता है। कुछ सीमा तक कालिदास की तुलना में अश्वघोष की शैली सरस और सरल है, भाषा और भाव सौष्ठव प्रचुर मात्रा में है।

जिस तरह अश्वघोष रामायण के मर्मज्ञ कहे जाते है, रामायण से प्रेरित हो कुछ–कुछ वैसे ही वर्णन उनकी रचनाओं में भी देखने को मिलता है जैसे अपने पुत्र के अंतिम निश्चय को सुनकर शुद्धोधन, शोकाभिभूत होकर वैसे ही गिर पडते है जैसे उत्सव के समाप्त होने पर इन्द्रध्वज झुका दिया जाता है–

"शचीपतेर्वृत इवोत्सवे ध्वजः"।

राम के बिना सुमन्त के अयोध्या और सिद्धार्थ के बिना छन्दक के कपिलवस्तु में लौटने के प्रसंग की स्पष्ट समानता तथा अरण्य में होने वाले अपने पति राम के कष्टों से शोकाकुल सीता के समान सिद्धार्थ के कष्टमय जीवन के लिए विलाप करने वाली यशोधरा।

अश्वघोष ने कहीं कहीं अत्यन्त मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति की है यशोधरा की चिंता पति के लिए बडे ही भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत की है –

"शुचौ शयित्वा शयने हिरण्मये।
प्रबोध्यमानो निशि तूर्यनिस्वनैः।
"कथं बत स्वप्स्यति सोऽद्य,में व्रती।
पटैकदेशान्तरिते महीतले"।। (बुद्धचरितम् 8/58)

सोने की शैय्या पर सोने वाले मधुर वाद्यमंत्रों की ध्वनि से जागने वाले मेरे प्रियतम मेरे स्वामी इस कठोर भूमि पर कैसे सो पायेंगे।

इसी तरह सौन्दरनन्द के एक प्रंसग में बहुत ही सुन्दर दंग से शृङ्गार रस के दोनों पक्षों का वर्णन किया है। नन्द और सुन्दरी दोनों एक दूसरे पर किन्नर–किन्नरी की तरह एक दूसरे पर आसक्त थे और वे रूप सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर विषय–वासनाओं के भोग में लिप्त रहते थे।

"भावानुरक्तौ गिरिनिर्झरस्थौ

तौ किंनरी किं पुरूषाविवोभौ

चिक्रीडतुश्चाभिविरेजतुश्च

रूपश्रियाऽन्योन्यमिवाक्षिपन्तौ (सौ. 4/10)

अश्वघोष के काव्यों में अलंकारों की अनुपम छटा देखने को मिलती है। अनुप्रास,यमक रूपक, उपमा अर्थान्तन्यास वक्रोक्ति आदि प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। ऐसा ही एक उदाहरण – जिसमें 'मालोपमा एवं विरोधाभास दोनों अलङ्कारों के प्रयोग से राजा शुद्धोधन के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है –

मधुमास इव प्राप्तश्चन्द्रो नव इवोदितः।

अंङ्गावानिंव चानङ्ग : स बभौ कान्तया श्रिया।।

बुद्ध के प्रति भक्ति और प्रिया के प्रति अनुरक्ति, इन दोनों के बीच फँसा हुआ नन्द को ये दोनों व्याकुल किए हुए है वह कोई निर्णय लेने में असमर्थ है, जैसे– तरंगों में तैरता हुआ हंस कभी उठता है कभी नीचे गिरता है।

तं गौरवं बुद्धगतं चकर्ष

भार्यानुरागः पुनरास्चकर्ष।

सोऽनिश्चयन्नपि ययौ न तस्थौ।

तरंस्तरङ्गेष्विव राजहसः।।

अश्वघोष की रचनाओं में आश्रम नदी,सरोवर वृक्षादि प्राकृतिक दृश्यों श्रृंगार रस करूण, वीर आदि रसो का समायोजन अंलकारों का सुन्दर प्रस्तुतीकरण निर्वाण आदि का मार्मिक एवं प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया गया है। अश्वघोष के बुद्धचरित में सभी प्रमुख साधर्म्यमूलक अंलकारों का प्रयोग मिलता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, अप्रस्तुतप्रशंसा आदि तथा अनुप्रास और यमक जैसे शव्दालंकारों का प्रयोग देखने को मिलता है एक उदाहरण –

"शरणे सभुजङ्गमे स्वप्न प्रति बुद्धेन नरेण बोधितः"।

जिस प्रकार साँप वाले घर में सोया हुआ व्यक्ति पहले जगे हुए किसी मनुष्य के जगाये जाने पर भी नहीं जागता बल्कि इसके विपरीत भ्रान्ति में पड़कर उस भयंकर साँप को स्वयं पकड़ने की इच्छा करता है, उसी प्रकार संतो के मधुर उपदेश को सुनकर भी जो मनुष्य चेतता नहीं है बल्कि सर्परूपी विषय को स्वंय पकडना चाहता है, उसकी दशा उसी प्रकार भयानक तथा शोचनीय होती है। इस उदाहरण के माध्यम से अश्वघोष ने बडी सुगमता से संसार की भयंकरता तथा वैराग्य की उपकारिता को प्रतिपादित कर दिया है।

बुद्धचरित और सौन्दरनन्द के अधिकांश सर्गों में उपजाति छन्द का प्रयोग हुआ है। अश्वघोष के प्रिय छन्द अनुष्टुप और उपजाति हैं। अनेकानेक श्लोकों में वंशस्थ, शिखरिणी, शार्दुल और मंदाक्रान्ता आदि का भी प्रयोग हुआ है।

एकावली की एक हारावली क्या ही सुन्दर बन पडी है, शुद्धोदन के राज्य में किसी ने भी रति के लिए काम के लिए अर्थ और अर्थ के लिए हिंसा का आश्रम नहीं लिया –

"कश्चित् सिषेवे रतये न कामं कामार्थमर्थं न जुगोप कश्चित्।

कश्चित् धनार्थं न चचार धर्मं, धर्माय कश्चिन्न चकार हिंसाम्।।" (बुद्धचरितम – 2–15)

सौन्दरनन्द का अष्टम सर्ग अर्थान्तरन्यास अलंकार का रूपक है। 62 श्लोकों में से प्रायः सभी में कोई न कोई अर्थान्तरन्यास या सुभाषित है। अन्यत्र भी बहुधा अर्थान्तरन्यास ही देखने को मिलता है।

अश्वघोष के प्रिय छन्द अनुष्टुप और उपजाति है। बुद्धचरित और सौन्दरनन्द में अधिकांश सर्गों में उपजाति का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त शार्दूल, विक्रीडित मन्दाक्रान्ता वंशस्थ आदि छन्दों का प्रयोग भी देखा जाता है।

अश्वघोष ने प्रकृति वर्णन से लेकर सौन्दर्य, शृङ्गार, युद्ध, बुद्ध, करूण, वीर आदि रसों एवं स्वर्ग, निर्वाण आदि विषयों का प्रभावोत्पादक ढंग से मार्मिक वर्णन किया है। सुन्दरी का सौन्दर्य तो देखते ही बनता है, जो नन्द का अतृप्ति का कारण है –

छातोदरीं पीनपयोथरोरूं

स सुन्दरीं रुक्मदरीमिवार्द्रः।

काक्षेण पश्यन्न ततर्प नन्दः

पिबन्निवैकेन जलं करेण ।। (सौ –4/41)

अश्वघोष के विशाल अध्ययन तथा विद्वता का स्पष्ट परिचय उनके महाकाव्य दे रहे है। अश्वघोष की कविता में स्वाभाविकता का साम्राज्य है। भावों के नैसर्गिक प्रवाह के कारण कवि के आध्यात्मिक जीवन से नितान्त सम्बद्ध है। तथागत के लोक सुन्दर चरित्र के प्रति कवि की अगाध श्रद्धा है।

घटनाओं के वर्णन में कवि का कौशल जितना जीवन्त है, उतनी ही श्लाघनीय है। धर्म का प्रचांरक धर्म का प्रचारक शास्त्री की शिक्षाओं को जन साधारण के हृदय तक सरलता से पहॅुचाने के लिए सामान्य जीवन की घटनाओं वस्तुओं तथा पात्रों का प्रयोग तुलना के निमित्त करता है और अश्वघोष ने भी वही किया है। इसी लिए इनकी उपमा दृष्टान्त तथा रूपक अधिक प्रभावशाली रही।

अश्वघोष का प्रभावशाली लेखन, तर्क, दर्शन आदि को कविता के माध्यम से जिस प्रकार लिखा गया उससे धर्म परिवर्तन का अदम्य उत्साह जागरूक करता है।

अपने सन्देश की गरिमा में उनकी इतनी निष्ठा तथा आस्था है कि, वे धर्म तथा दर्शन के विभिन्न मतों के पंचडों में न पड़कर आष्टांङ्गिक मार्ग के अनुशीलन से मानव जीवन की सफलता पर आग्रह रखते है इसी लिए इनकी कविता निःसन्देह कलात्मक है। उनकी कविता में जीवनी शक्ति है तथा हृदयावर्जन की अद्भुत क्षमता है।

अभ्यास :–

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) निम्नलिखित ग्रन्थों में से कौनसी रचना अश्वघोष की नहीं है–

(क) बुद्धचरितम् (ख). शारिपुत्रप्रकरणम्

(ग) हर्षचरितम् (घ) सौदरनन्दम्

उत्तर– (ग) हर्षचरितम्

(2.) बुद्धचरितम् में सर्गो की संख्या है–

(क) अठारह (ख) बीस

(ग) अट्ठाइस (घ) ग्यारह

उत्तर– (ग) अठ्ठाइस

(3) 'बुद्धचरित' का रचना काल है–

(क) 78 ई. (ख). 9वी शदी

(ग.) 600 (घ) 540 ई0पू0

उत्तर (क) 78 ई0

(4) 'शारिपुत्रप्रकरण' नाटक कितने अंको में है–

(क) छह (ख) नौ

(ग) आठ (घ) पांच

उत्तर (ख) नौ

लघुउत्तरीय प्रश्न –

(01) बुद्धचरितम् की कथावस्तु अपने शब्दों में लिखिये।

(02) सौदारनन्द की कथा वस्तु अपने शब्दों में लिखिये।

(03) महाकवि अश्वघोष के अलङ्कारिक विधान पर सोदाहरण प्रकाश डालिये

(04) महाकवि अश्वघोष के छन्दो विधान को सोदाहरण स्पष्ट कीजिये।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न –

(01) महाकाव्यों के उद्भव और विकास का वर्णन कीजिए।

(02) अश्वघोष की रचनाओं एवं उनके जीवनवृत्त का वर्णन कीजिए।

(03) अश्वघोष की रचनाशैली का वर्णन कीजिए।

महाकवि भारवि

इकाई की रूपरेखा

4.1 इकाई का परिचय

4.2 उद्देश्य

4.7 महाकवि का जीवन परिचय

4.8 महाकवि भारवि का कर्तृत्व

4.9 महाकवि भारवि का समय

4.10 किरातार्जुनीयम् का कथानक

4.11 भारवेर्रथ गौरवम्

4.12 कवि विषयक प्रशस्तियां

4.13 बोध प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी –
1– भारवि के स्थिति काल के विषय में जान सकेंगे।
2– महाकवि भारवि के कर्तृत्व से परिचित हो सकेंगे।
3– महाकाव्य लेखन की अलङ्कृत शैली से अवगत हो सकेंगे।
4– 'किरातार्जुनीयम्' के माध्यम से कवि की काव्यगत विशेषताओं का बोध कर सकेंगे।

संस्कृत साहित्य के नभोमंडल में उदित होकर अपनी प्रकाशमान कवि प्रतिभा की उज्ज्वल आभा से भारतीय साहित्य धरा को भासित करने वाले कवि नक्षत्रों में महाकवि भारवि एक अनुपम् ज्योतिष्मान् नक्षत्र है। उनकी पाण्डित्य पूर्ण काव्य–प्रतिभा के सौरभ को सर्वत्र प्रसारित करने वाली उनकी एक मात्र कृति ''किरातार्जुनीयम्'' है जो विश्व प्रसिद्ध महाकाव्य बृहत्त्रयी की प्रारम्भिक कड़ी के रुप में विद्वत्समाज में समादृत है। इस अकेली रचना के अद्वितीय गुणों के कारण महाकवि भारवि ने संस्कृत कवियों में अत्यन्त महनीय स्थान प्राप्त किया है। इस कृति का नामकरण भगवान् शंकर और अर्जुन के द्वन्द्व युद्ध की प्रमुख घटना को लेकर किया गया है। परिपक्व एव ं कृत्रिम चमत्कारी शैली से अलंकृत करने की पद्धति का प्रारम्भ किरात से ही हुआ है। भारवि ने एक ऐसी शैली को जन्म दिया है जिसमें अलंकारों का बाहुल्य दृष्टिगत होता है। अलंकारों की प्रधानता होने के कारण ही इसे 'अलंकृत या कृत्रिम शैली' नाम दिया गया है। महकवि माघ तथा श्रीहर्ष जैसे दिग्गज कवि भारवि द्वारा उद्घाटित इस शैली से प्रभावित हैं, अतएव बृहत्त्रयी में 'किरात' का स्थान सर्वोपरि है। अर्थगौरव की दृष्टि से भी यह कृति समूचे संस्कृत–साहित्य में

अन्यतम है। अल्पतम शब्दों द्वारा विस्तृत अर्थों का प्रकटीकरण ही अर्थ गौरव कहलाता है। इसी शैली का आश्रय लेते हुए कवि ने व्याकरण, राजनीति आदि अतिसूक्ष्म, नीरस एवं गम्भीर विषयों को सरस एवं सुन्दर शब्दों द्वारा बोध गम्य बनाया है। भारवि के अर्थगौरवरुप वैशिष्ट्य को निम्नरुपेण प्रस्तुत किया जा रहा है।

4.7 महाकवि का जीवन–परिचय

भारवि के जीवनवृत्त के विषय में भी कोई प्रामाणिक जानकारी नहीं प्राप्त होती है, उनका एक मात्र ग्रन्थ 'किरातार्जुनीयम्' है जिसको वृहत्त्रयी में स्थान प्राप्त है, लेकिन उनके इस ग्रन्थ से उनके बारे में कोई जानकारी नहीं प्राप्त होती है।

दक्षिण के 'एहोल' शिलालेख में इनका नामोल्लेख पाया जाता है। यह शिलालेख दक्षिण में बीजापुर जिले के एहोल ग्राम में एक जैन मंदिर में मिला है उसका लेखक चालुक्य राजा पुलकेशिन द्वितीय का आश्रित जैन कवि रविकीर्ति है। इस शिलालेख में अपने आपको कालिदास और भारवि का समकक्ष बताया है (634ई0)। इससे अनुमान लगाया जाता है कि भारवि 634ई0 के आस–पास के ही थे। इसी से यह भी अनुमान लगाया जाता है कि वे दक्षिण भारत के रहने वाले थे। भारवि के जन्मस्थान, मातापिता के नाम आदि के विषय में भी किंवदन्तियां है।एक के अनुसार यह धारानगरी के निवासी थे। उनकी माता का नाम सुशीला और पिता का नाम श्री धर था। उनकी पत्नी का नाम रसिकवती या रसिका था। "अवन्तिसुन्दरीकथा" के अनुसार उनके पिता का नाम नारायण स्वामी था। उनका वास्तविक नाम दामोदर तथा 'भारवि' उनका उपनाम या उपाधि थी। प्रायः सभी विद्वान उन्हें दक्षिणात्य मानते है।

अवन्तिसुन्दरी कथासार के अनुसार भारवि का जन्म कुष्कि गोत्र में हुआ था। चालुक्यवंशी राजा विष्णु वर्धन से उनकी मित्रता हो गयी थी। भारवि उनके सभा पंडित थे। भारवि शैव मतानुयायी थे।

किरातार्जुनीयम् में उन्होंने शिवस्तुति बड़े भावुक रूप में की है। भारवि का उपनाम ''आतपत्र भारवि'' था। राजा परिवारों के सहवास से जान पडता है ये राजनीति के बड़े भारी जानकार हो गये थे।

"श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा,
इह कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः।
हरिश्चन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम्।।"

राजशेखर ने लिखा है कि, कालिदास तथा भर्तृमेण्ठ की भॉति भारवि की भी उज्जयिनी में परीक्षा ली गयी थी जिसमें उत्तीर्ण होने पर उनकी ख्याति बढी।

उत्फुल्लस्थलनलिनी वनादमुष्मा
दुद्धूतः सरसिजसंभवः परागः।
वात्याभिर्वियति विवर्तितः समन्तादाधन्ते
कनकमयातपत्रलक्ष्मीम्।।(किरात–5/39)

अर्थात स्थल कमलों के वन में कमल खिले हैं। उनसे पीत पराग झर रहे हैं। हवा झोंके से बह रही है, वह पराग को उड़ा कर आकाश में फैला रही है। इस प्रकार कमल का पराग सोने के बने छाते की शोभा धारण कर रहा है आकाश में फैला हुआ पराग सोने के बड़े पीले छाते की तरह जान पडता है। श्लोक का भाव बहुत ही अनूठा है। इस श्लोक के भाव से प्रभावित होकर संस्कृत–साहित्य के समीक्षकों ने इन्हें 'आतपत्र भारवि' के नाम से कहना प्रारम्भ कर दिया।

4.8 महाकवि भारवि का कर्तृत्व –

महाकवि भारवि का एकमात्र ग्रन्थ 'किरातार्जुनीयम्' नामक महाकाव्य ही प्राप्त होता है और वह ही अमरकाव्य बन गया है। उनके उदात्त गुणों के कारण ही इसकी गणना वृहत्त्रयी में होती है। तीन ग्रन्थ वृहत्त्रयी में माने गये हैं, जिनमें (1) भारविकृत किरातार्जुनीयम् (2) माघरचित शिशुपालवध और (3) तीसरा ग्रन्थ श्रीहर्षरचित 'नैषधीयचरितम्' है।

किरातार्जुनीयम् – महाभारत के एक सुप्रसिद्ध आरव्यान पर आश्रित है (वनपर्व के कैरात पर्व स0 38–41) द्यूतक्रीडा में हार अर्जुन द्वैतवन में रहते थे। दुर्योधन की शासन की शासन प्रणाली देखने के लिए उन्होंने वनेचर को भेजा।

4.9 महाकवि भारवि का समय–

महाकवि भारवि ने अपने विषय में कुछ भी संकेत नहीं किया है। महाकवि कालिदास की ही भांति भारवि के जीवन वृत्त एवं समय के बारे में कोई निश्चित जानकारी उपलब्ध नहीं है। कुछ किंवदन्तियों के आधार पर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वे किस कवि के समकालीन थे। अतः अंतरंग प्रमाणों का अभाव है। कुछ बहिरङ्ग प्रमाण प्राप्त होते हैं, जो निम्नलिखित है–

1– ऐहोल शिलालेख –यह शिलालेख दक्षिण में बीजापुर जिले के ऐहोल ग्राम में एक जैन मंदिर में मिलता है इसका लेखक चालुक्य राजा पुलकेशी द्वितीय का आश्रित रविकीर्ति नामक जैन कवि है। इस शिलालेख का समय 556 शकाब्द अर्थात 634 ई0 है।

2 – पुलकेशी द्वितीय के अनुज विष्णुवर्धन ने 615 ई0 में पूर्वी चालुक्य वंश की स्थापना की थी। भारवि की विष्णुवर्धन से मित्रता थी। उसने भारवि को अपना सभा पंडित बनाया था। इस प्रकार भारवि का रचनाकाल 615 ई0 के लगभग मानना उचित है।

3– भारवि और सिंहविष्णु – अवन्तिसुन्दरी कथा में उल्लेख है कि भारवि सिंहविष्णु के आश्रित कवि थे। सिंहविष्णु के शासनकाल 568 से 600 ई0 के मध्य है। सिंहविष्णु से मिलने के समय भारवि की आयु 20 वर्ष बताई गयी है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि भारवि का जन्म–समय 560 ई0 के आसपास का होगा।

4– गंग नरेश दुर्विनीत; कोंकण के नरेश अविनीत का पुत्र था। उसका समय 580 ई0 माना जाता है। दुर्विनीत ने 'किरानार्जुनीयम्' के 15वें सर्ग की टीका लिखी है। वह भारवि का आश्रयदाता माना जाता है। इससे भी भारवि का समय 560 ई0 के लगभग होता है।

उपर्युक्त विवरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारवि का जन्म लगभग 560 ई0 के आसपास का है और उनकी रचना 'किरातार्जुनीयम्' का समय 580 ई0 के बाद रहा होगा। ऐहोल (638ई0) के शिलालेख से ज्ञात होता है कि भारवि की कीर्ति उस समय फैल चुकी थी। कविताश्रित कालिदास भारवि कीर्ति से ध्वनित होता है कि,उस समय तक भारवि का स्वर्गवास हो चुका था।

4.10 किरातार्जुनीयम् का कथानक –

ग्रन्थ का प्रारम्भ ''श्री'' शब्द से होता है तथा प्रत्येक सर्ग के अन्त में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग किया गया है। कथानक का आधार महाभारत –वनपर्व है। इसमें पाशुपतास्त्र–प्राप्ति के लिए तपस्या करने वाले अर्जुन और किराताधिपति के रूप में भगवान् शंकर का परस्पर युद्ध होता है। इन दोनों के इस युद्ध की प्रधानता के कारण (प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति) ही इस ग्रन्थ का नाम 'किरातार्जुनीयम्' पड़ा है। इन्द्र तथा शिव को प्रसन्न करने के लिए की गई अर्जुन की तपस्या को आधार बनाकर कवि ने 18 सर्ग के महाकाव्य का वितान पल्लवित किया है। इतिवृत्त का **आरम्भ** द्यूत–क्रीडा में हारे हुए पाण्डवों के द्वैतवनवास से होता है। युधिष्ठिर यहाँ रहकर भी दुर्योधन की ओर से निश्चित नहीं है। वे एक वनेचर को दुर्योधन की प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिए 'चर' (गुप्तचर) बनाकर भेजते हैं। ब्रह्मचारी बना हुआ वनेचर लौट कर आता है और उसके युधिष्ठिर के पास पहुँचने से काव्य का इतिवृत्त प्रारम्भ होता है। वनेचर दुर्योधन के शासन की पूरी जानकारी देता है और इस बात का संकेत देता है कि, जुए के बहाने जीती हुई पृथ्वी को वह नीति से भी जीत लेने की चेष्टा में लगा है। सारी बातें बताकर वनेचर लौट जाता है और द्रौपदी आकर युधिष्ठिर को युद्ध के लिए उत्तेजित करती है। वे कटु शब्दों का प्रयोग करती हुई युधिष्ठिर की तपस्वी–जनोचित शान्ति दूसरे शब्दों में कायरपन की भर्त्सना करती है।

दूसरे सर्ग के आरम्भ में भीम द्रोपदी की सलाह की पुष्टि करते हैं और युधिष्ठिर को इस बात का विश्वास दिलाते हैं कि उनके चारों भाइयों के आगे युद्ध में कोई नहीं ठहर सकता। धर्मराज ने प्रतिज्ञा तोड़ समर की बात कथमपि स्वीकार नहीं की। इसके इसी सर्ग में भगवान् वेदव्यास आते है। **तीसरे सर्ग** में अर्जुन को पाशुपतास्त्र पाने के लिए इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करने हेतु भेजा गया है। व्रतभंग करने के लिए दिव्याङ्गनायें भी आयी, परन्तु व्रती अर्जुन व्रत से तनिक भी नहीं डिगे। भगवान् इन्द्र स्वयं अर्जुन के आश्रम में आये और मनोरथ–सिद्धि के लिए शिवजी की उपासना करने का उपदेश दे गये। अर्जुन ने और भी दत्तचित्त होकर शिव की आराधना की। मुनिगणों के कहने पर शिव ने अर्जुन के तपोबल की परीक्षा करने के लिए किरात का रूप धारण किया। **तेरहवें सर्ग** में एक शूकर को अर्जुन की ओर भेजा गया। अर्जुन ने शूकर पर अपने बाण छोड़े साथ –ही –साथ किरात ने भी अपने बाणों को छोड़ा। अर्जुन का बाण शूकर को मारकर पृथ्वी में घुस जाता है। बाद में बचे हुए बाण के लिए किरात और अर्जुन में वाद–विवाद चलता है,

जो पञ्चदश सर्ग में युद्ध का रूप धारण कर लेता है। कभी धनञ्जय की विजय होती है, तो कभी किरात का पक्ष प्रबल होता। अन्ततोगत्वा दोनों बाहुयुद्ध पर तुल गये। गाण्डीव के बल से प्रसन्न होकर भगवान् शंकर ने स्वयं अपना दर्शन दिया और अमोघ पाशुपतास्त्र देकर अर्जुन की अभिलाषा पूरी की।

4.11 भारवेरर्थ गौरवम्

महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य के देदीप्यमान रत्नों में से एक हैं। उनका महाकाव्य वृहत्त्रयी का प्रथम रत्न है। भारवि का काव्य अपने अर्थगौरव के लिए प्रख्यात है। विपुल अर्थ का सन्निवेश करना ही अर्थ गौरव है और भारवि के 'किरातार्जुनीयम्' में प्रायः देखा जा सकता है।

भारवि की भाषा में लालित्य, माधुर्य और प्रौढता का सुन्दर समन्वय है। साथ ही साथ कवि ने अर्थगौरव, कल्पना और सूक्ष्म विचारों का मधुर सम्मिश्रण किया है। भारवि ने भीम के भाषण की प्रशंसा युधिष्ठिर के द्वारा जिन शब्दों में कराई है, वे ही शब्द इनकी कविता के यथार्थ निदर्शन है–

स्फुटता न पदैरपाकृता न च न स्वीकृतमर्थगौरवम्।
रचिता पृथगर्थता गिरां न च सामर्थ्यमपोहितं क्वचित्।।

भारवि की दृष्टि में सत्काव्य के लिए इन प्रमुख बातों की आवश्यकता होती है। पदों की स्फुटता, अर्थगौरव की स्वीकार्यता, शब्दों की पृथकता (भिन्न–भिन्न अर्थों को बतलाना) तथा सामर्थ्यसम्पत्ति (पदों के द्वारा अभीष्ट अर्थ की द्योतना)। ये शोभन गुण उनके काव्य में विशेष रूप से पाये जाते हैं। वे कविता में नैतिक सिद्धान्त का प्रकाशन आवश्यक मानते है। इस विषय में उनका व्यावहारिक तथा शास्त्रीय अनुभव इतना प्रौढ़ और परिपक्व है कि उनके वाक्य उपदेशमय होने से पण्डितजनों की जिह्वा पर आज भी नाचा करते है। उनके सैकड़ों सुभाषितों में वेद, दर्शन, राजनीति, पुराण, ज्योतिष, कामशास्त्र, कृषि, अलंकार शास्त्र आदि का अगाध पाण्डित्य मिलता है। भारवि का नीतिशास्त्रीय ज्ञान व्यापक था, जैसे–

"असाधुयोगा हि जयान्तरायाः प्रमाथिनीनां विपदां पदानि"।

असज्जनों की संगति पराभव और विपत्ति का कारण है।

"तेजो विहीनं विजहाति दर्पः शान्तार्चिषं दीपमिव प्रकाशः।।" (16–17)

निस्तेज व्यक्ति में स्वाभिमान उसी प्रकार नहीं रहता है जैसे बुझे हुए दीपक में प्रकाश।

"हितं मनोहारि च दुर्लभः वचः"। (1–4)

सब किसी को मनोहर लगने वाली वाणी भी दुर्लभ है।

सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः

अर्थगौरव की कमनीयता का उदय श्लेषालंकार के प्रयोग द्वारा अनेक स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। श्लेषानुप्राणित उपमा का प्रदर्शनकारी यह प्रख्यात पद्य अर्थ गौरव का चमत्कारी दृष्टान्त प्रस्तुत करता है–

प्रसंगेन जनैरूदाहृतादनुस्मृता खण्डल सुनूविक्रमः।
तवाभिधानाद् व्यथते नताननः सुदुः सहान्मन्त्रपदादिवोरगः।।

जिस प्रकार सर्प विषवैध के द्वारा उच्चरित गरूड और वासुकी के नामों से युक्त मन्त्र को गरूड के पराक्रम का स्मरण कर नतमस्तक हो जाता है उसी प्रकार जन समूह में चर्चा के अवसर पर दुर्योधन युधिष्ठिर का नाम सुनकर तथा इन्द्रपुत्र अर्जुन के पराक्रम का स्मरण कर अपना सिर (लज्जा या सन्ताप के कारण)झुका लेता है।

इस पद्य के कतिपय श्लिष्ट पद अर्थ गौरव की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

1) तवाभिधानात्– तुम्हारे नाम से त (ताक्ष्र्य–गरूण पक्षिराज) तथा व वासुकि –नागराज के नाम से युक्त।

एकदेश के ग्रहण से पूरे नाम का ग्रहण होता है इस न्याय से ''तवं' शब्द ताक्ष्य तथा वासुकि का वाचक माना जाता है।

2) आखण्डलसूनुविक्रम– इन्द्र के सुनु (पुत्रअर्जुन) के विक्रम (पराक्रम) का स्मरण करने वाला। इन्द्र के सूनु अर्जुन–विष्णु के (पक्षी–गरूण) के क्रम पादविक्षेप का स्मरण करने वाला संभग श्लेष की महिमा से सम्पन्न होने के कारण कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक अर्थों का समावेश इस पद्य को सौष्ठव प्रदान कर रहा है।

किरातार्जुनीयम काव्य का मूल आधार महाभारत के वनपर्व (अध्याय 38–41) तथा शिवपुराण (ज्ञान संहिता 63–66) की एक प्रख्यात घटना पाशुपत अस्त्र की अर्जुन के द्वारा प्राप्ति है परन्तु इतनी छोटी सी घटना को नवीन कोमल उपादानो से सुशोभित कर सुचिर और सरस बना पाना भारवि की कला का वैशिष्ट्य है।

इन्द्रनील पर्वत पर अर्जुन की घोर तपस्या पर्वतवासी गुह्य को इतना भय भीत बना देती है कि, वे इन्द्र के पास उपचार के लिए पहुंचते है। जो गान्धर्वो तथा अप्सराओं को अर्जुन की तपस्या को भंग करने के लिए भेजते हैं। ये देव योनि के गण अपने कार्य की सिद्धि के लिए प्रस्थान करते है, परन्तु रास्ते में प्रकृति की सुषमा से मुग्ध होकर जंगलों में पुष्पचयन में आसक्त हो जाते है तथा जल क्रीडा में कालयापन करते है।**(अष्टम सर्ग)**

चित्रालंकार – भारवि ने चित्रकाव्य लिखने में अपने चातुरी दिखलाने के लिए एक समग्र सग पंचदश ही लिख डाला है। भारवि ने एक अक्षर वाला भी एक श्लोक लिखा है जिसमें न के सिवाय अन्य वर्ण हैं ही नही। यह भारवि के असाधारण कौषल का ज्वलन्त निदर्शन है।

"न नोननुन्नो नुन्नोनो नाना नानानना ननु।
नुन्नेऽनुन्नो ननुन्नेनो नानेना न नुन्न नुन्न ननु।।(किरात–15/14)

(नानानना:) हे! नाना प्रकार के मुख वाले शिव सैनिकों (उन्नुन्नः नान) निकृष्ट के द्वारा घायल किया गया व्यक्ति वीर पुरूष नहीं है।

(नुन्नोनः ना अनाननु) निकृष्ट को घायल करने वाला व्यक्ति भी वस्तुतः वीर पुरूष नहीं है। (ननुन्नेनः नन्न अनुन्नः) जिसका स्वामी अक्षत हैऐसा क्षत व्यक्ति भी वस्तुतःअक्षत ही है।(नुन्नुनुन्ननुत् न अनेनाः) अत्यधिक घायल को क्षति पहुॅचाने वाला व्यक्ति भी निर्दोष नहीं होता ।

अतः कहीं–कहीं इनका काव्य कठिन सा हो गया है। इसलिए मल्लिनाथ ने इनके काव्य को नारिकेलपाक (नारिकेल फल) के समान बतलाया है। **नारिकेल फल सन्निभ वचो भारवेः**

इतना होने पर भी उनकी कविता में एक विचित्र चमत्कार है। मनोरम गाम्भीर्य है। जो सुधी पाठ्कों के हद्य को अपनी ओर खींचता है और सुख देने वाला होता है।

भारवि की लेखनी किसी विषय से अछूती नहीं रही है। राजनीति के गम्भीर विषयों पर भी भारवि ने चर्चा की है।

4.12 कविविषयक प्रशस्तियां

किरातार्जुनीयम् में राजनीति विषयक कुछ सुभाषित है ये–

(1) व्रजनि ते मूढधिपः पराभवं भवन्ति मायाविषु में न मायिनः (1 –30)

दुष्ट के साथ दुष्टता ही उचित है।

(2) सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेश्वमात्येषु च सर्वसम्पदः (1–15)

राजा और मंत्री के अनुकूल होने पर ही सब सिद्धियॉ प्राप्त होती हैं।

(3) प्रकर्षतन्त्राः हि रणे जयश्रीः (3–16)

युद्ध में पराक्रम पर विजय निर्भर है।

(4) व्रजन्ति शत्रूनवधूय निःस्पृहाः शमेन सिद्धिं मुनयो न भूभृतः(1/42)

शत्रुओं की उपे़क्षा करके मुनि ही शान्ति लाभ कर सकते है, राजा नहीं।

4.8 सुभाषितसूक्तियां–

- हिंत मनोहारि च दुर्लभं वचः।
- अहो दुरन्ता बलवदविरोधिता (1.23) बलवान से विरोध दुःखदायी है।
- गुरूता नयन्ति हि गुणा न संहतिः (12–90)
- मित्र लाभमनु लाभ सम्पदः :(13–53) सबसे बडा लाभ मित्र लाभ है।
- सहसा विद्धीत न क्रियाम् विवेकः परमापंद पदम्।

भारवि ने अपने काव्य को अलंकारों से विभूषित करने का खूब प्रयत्न किया है। ऋतु, जलक्रीडा, प्रकृति चित्रण, चन्द्रोदय का वर्णन बडी सुन्दर भाषा में किया है। चतुर्थ संर्ग में शरद ऋतु का वर्णन इतना नैसर्गिक और हृद्यग्राही हुआ है। अन्य प्राकृतिक दृश्योंका भी खूब अनूठा वर्णन हुआ है।

बसन्त वर्णन में क्या ही सुन्दर रसों का सामञ्जस्य बैठाया है। रूपक और उत्पेक्षा अलंकारों का सुन्दर समन्वय किया है।

"विकसित कुसुमाधरं हसन्ती

कुरबकराजिवधू विलोकयन्तम्

ददृशुरिव सुराङ्गना निषण्णं

सशरमनङ्ग मशोक पल्लवेषु।।"

अप्सरायें मानो यह दृश्य देख रही है कि, अशोक के पत्तों पर कामदेव अपना बाण लिए बैठा है और वह विकसित पुष्परूपी अधरों से हंसती हुई कुरबकपुष्प राशिरूपी वधू को देख रहा है। एक ओर काम की कामुकता है तो दूसरी ओर वधुओं पर काम –बाणनिक्षेप।

भारवि ने बहुत से छन्दों में कविता की है। परन्तु सबसे अधिक सुन्दरता से वंशस्थ का प्रयोग किया है। छन्द प्रयोग में भारवि कालिदास से आगे हैं। क्षेमेन्द्र ने भारवि की प्रशंसा में कहा है कि, उसने वंशस्थ छन्द के द्वारा वंशस्थ गोल छाते के तुल्य अपनी प्रतिभा का अधिक विस्तार किया है।–

वृत्रछत्रस्य सा काऽपि वंश स्थस्य विचित्रता।
प्रतिभा भारवेर्येन सच्छायेनाधिकीकृता।।

भारवि संस्कृत साहित्य में रीति काव्य परम्परा के जन्मदाता है। अतः ऐसे काव्यों में प्रतिभा प्रदर्शन अलंकारों की बहुलता श्रमसाध्य चित्रालंकारों का प्रयोग, पद–पद पर व्याकरण दर्शन आदि का पाण्डित्य प्रदर्शन विशेषतः महत्वपूर्ण रहा है।

भारवि का वनेचर कहने मात्र को वनेचर था वह प्रौढ विद्वान वर्णिलिंगी और व्युत्पन्न व्यक्ति था। भारवि भारतीय विद्वत परंपरा के लिए रूचिकर एवं ग्राह्य हैं। विश्व के सभी कवियों में कतिपय भावों, विचारों, शब्दों और पदावली के प्रति विशेष अभिरूचि दृष्टिगोचर होती है।

भारवि की प्रमुखता वर्णनात्मक तथा तार्किक प्रसंगों में विशेष है। लय समन्वित, गीति, काव्योचित माधुर्य का उनमें अभाव है। वे हिमालय के वर्णन में तथा राजनीतिक समस्याओं के तार्किक समाधानों में जितने समर्थ है, उतने किसी कोमल भावों की अभिव्यंजनो में नही। अलंकृत पदावली का विन्यास भारवि का निजी क्षेत्र है। असंशय और चमत्कारी वैशिष्टय।

बोध प्रश्न

1) 'किरातार्जुनीयम्' का कथानक कहाँ से लिया गया है।

(क) गीता से (ख) पुराणों से (ग) महाभारत से (घ) रामायण से

उत्तर– (महाभारत से)

2) ''न नोनन्नुनो नुन्नो नो नाना नाना नना ननु'' श्लोक से युक्त रचना है।

(क) बुद्धचरित (ख) नैषधीयचरित (ग) शिशुपालबध (घ) किरातार्जुनीयम्

उत्तर– (किरातार्जुनीयम्)

3) 'भारवेर्रर्थगौरवम्' किसके लिये कहा गया है।

(क) भारवि (ख) माघ (ग) दण्डी (घ) बाण

उत्तर– (भारवि)

4) 'किरातार्जुनीयम्' के सर्गान्त में कौन सा शब्द प्रयुक्त हुआ है।

(क) किरात (ख) लक्ष्मी (ग) शिव (घ) पार्वती

उत्तर – (लक्ष्मी)

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1– भारवि के जीवन वृत्त एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 2– भारवि की भाषा शैली की समीक्षा कीजिये।

प्रश्न 3– 'भारवेर्रर्थगौरवम्' की विस्तृत विवेचना कीजिये।

खण्ड – ख

इकाई – 5 महाकवि माघ

इकाई की रुपरेखा

5.1 इकाई परिचय

5.2 उद्देश्य

5.3 महाकवि माघ का समय

5.4 महकवि माघ का कर्तृत्व

5.5 शिशुपाल बध का प्रतिपाद्य विषय

5.6 माघे सान्ति: त्रयो गुणाः

5.7 माघ की काव्यशैली

5.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के तृतीय सेमेस्टर में 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (MAST-113 N)नामक प्रश्न–पत्र निर्धारित है। इसमें कुल 04 खण्ड एवं 13 इकाईयाँ हैं। जिसमें पाँचवी इकाई महाकवि माघ से सम्बन्धित है। इस इकाई में महाकवि माघ के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

5.2 उद्देश्य

काव्यशास्त्रिय आचार्यों ने रसोद्बोध की दृष्टि से संस्कृत काव्य को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया है– दृश्य काव्य तथा श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य के अन्तगर्त नाट्य साहित्य आता है। संस्कृत साहित्य के समृद्ध करने वाली विधाओं में नाट्य साहित्य का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आचार्यों ने संस्कृत–नाट्य को 10 भेदो में विभक्त किया है–

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमक्कारडियाः।
ईहा मृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

अर्थात नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार ,डिम, इहामृग, अङ्क, वीथी तथा प्रहसान, ये रूपक अर्थात नाट्य के दश भेद हैं। प्रकृत खण्ड में नाट्य साहित्य के अनतगर्त प्रमुख नाट्यकारों एवं उनकी नाट्य कृतियों के विषय में अध्ययन किया जायेगा।

5.3 महाकवि माघ का समय

महाकवि माघ अलङ्कृत शैली महाकाव्य–लेखन के शिरोमणि कवियों में से एक हैं, जिन्होंने बीस सर्गात्मक काव्य 'शिशुपालवध' लिखकर संस्कृत साहित्य गगन में टिमटिमाते हुये नक्षत्र की तरह देदीप्यमान हैं। आप द्वारा प्रणीत महाकाव्य संस्कृत–साहित्य के समालोचकों द्वारा बृहत्त्रयी में परिगणित किया गया है।

माघ के जीवन की संक्षिप्त जानकारी उनकी रचना ''शिशुपाल वध'' के अन्त में दिये गये 'कवि वंश' वर्णन के श्लोकों से मिलती है। इनके अनुसार माघ के पितामह सुप्रभदेव; राजा वर्मलात के सर्वाधिकारी थे–

सर्वाधिकारी सुकृताधिकारः श्रीवर्मलाख्यस्य बभूव राज्ञः।

असक्तदृष्टिर्विरजाः सदैव देवोऽपरः सुप्रभदेवनामा।।

कतिपय विद्वानों ने 'सर्वाधिकारी' शब्द का अर्थ प्रधानमंत्री लिया है, जबकि अन्य टीकाकारों ने इसको महासेनापति माना है। सुप्रभदेव के पुत्र का नाम दत्तक था और महाकवि माघदत्तक के पुत्र थे – इनको सभी का आश्रयदाता होने के कारण 'सर्वाश्रय' भी कहा जाता है।

तस्याभवद्दत्तक इत्युदात्तः क्षमी मृदुर्धर्मपरस्तनूजः।

यं वीक्ष्य वैयासमजातशत्रोर्वचो गुणग्राहि जनैः प्रतीये।।

श्रीशब्दरम्यकृतसर्गसमाप्तिलक्ष्म लक्ष्मीपतेश्चरितकीर्तनमात्रचारु।

तस्यात्मजः सुकविकीर्ति दुराशयादः काव्यं व्यधत्त शिशुपालवधमभिधानम्।।

भोज प्रबन्ध में राजा भोज (1010 से 1050–ई0) के समय में महाकवि माघ की सत्ता बतायी गई है और सर्वस्वदानी होने के कारण धनहीन माघ का भोज से सम्पर्क बताकर धारा नगरी में ही उनके देहावसान का वर्णन मिलता है। परन्तु इसके आधार पर कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है।

शिशुपाल वध की कुछ प्रतियों में यह उल्लेख मिलता है– **इति श्री भिन्नमालवास्त्यदत्तकसूनोर्महावैयाकरणस्य माघस्य कृतौ शिशुपालवधे महाकाव्ये......'।** इससे तीन बातों के बारे में जानकारी मिलती है–

प्रथम – माघ के पिता का नाम दत्तक था।

दूसरा – वे महावैयाकरण थे।

तीसरा – इनके पूर्वज **श्री भिन्नमाल** के रहने वाले थे।

श्री भिन्नमाल का ही दूसरा नाम **''श्रीमाल''** ज्ञात होता है।

इसके आधार पर वहां के निवासी ब्राह्मण श्री माली ब्राह्मण कहलाते हैं, जो गुजरात और राजस्थान में फैले हुये हैं। इस आधार पर माघ भी श्रीमाली ब्राह्मण थे ऐसा ज्ञात होता है।

वंश परम्परा के आधार पर यही कहा जा सकता है कि वे एक सुप्रतिष्ठित, सम्पन्न और विद्वत् परिवार के व्यक्ति थे। शिशुपाल वध के अध्ययन से ज्ञात होता है कि माघ ने व्याकरण, दर्शन, काव्यशास्त्र, ज्योतिष, आयुर्वेद, राजनीति पुराण, इतिहास आदि का गहन अध्ययन किया था।

5.4 महाकवि माघ का कर्तृत्व

माघ की कीर्तिलता केवल एक ही महाकाव्य 'शिशुपाल वध' रूपी वटवृक्ष पर अवलम्बित है। यह एक ही कृति उन्हें अमर रखने के लिये पर्याप्त है। श्रीकृष्ण के द्वारा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चेदिनरेश शिशुपाल के वध का साङ्गोपाङ्ग वर्णन है। यही, शिशुपाल वध महाकाव्य का वर्ण्य विषय है। इसका प्रेरणास्रोत मुख्यतया श्रीमद्भागवत एवं गौण रूप से महाभारत है। फलतः उसी के आधार पर कथा का विन्यास है। इसमें सर्गों की संख्या 20 और श्लोकों की संख्या 1650 है।

5.5 शिशुपाल वध का प्रतिपाद्य विषय

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में कृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध किये जाने की कथा काव्य में वर्णित है। कथा में शिशुपाल को हिरण्यकशिपु तथा रावण का अवतरण माना है और इसको कंस से भी बढ़कर नृशंस राजा के रूप में चित्रित किया गया है। शिशुपालवध में कवि ने द्वारका से युद्धिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में इन्द्रप्रस्थ में सम्मिलित होने के लिये कृष्ण के आगमन, शिशुपाल द्वारा उनका अपमान तथा बाद में युद्ध के फलस्वरूप शिशुपाल के मारे जाने की कथा को चित्रित किया है।

पहले सर्ग का आरम्भ देवर्षि नारद के आगमन से होता है, जो आकाश मार्ग से नये बादलों के नीचे–नीचे उतरते आ रहे हैं। उनकी पीली जटायें हिमालय पर्वत पर उगी पीली लताओं सी नजर आ रही है। कृष्ण उनसे आने का कारण पूछते हैं। नारद बतातें हैं कि, शिशुपाल के अत्याचार से डरकर इन्द्र ने उन्हें भेजा है। कृष्ण उसका वध करें और इन्द्र के हृदय को भयरहित बनाकर, उसे आमोद–प्रमोद से उल्लासित बनावें। **द्वितीय सर्ग** में कृष्ण, बलराम और उद्धव मन्त्रणागृह के तीन सिंहासनों पर बैठ उसी तरह प्रविष्ट होते हैं जैसे त्रिकूट पर्वत की तीनों चोटियों पर तीन शेर बैठे हों। शिशुपाल का वध करना आवश्यक है, किन्तु इसी समय युद्धिष्ठर के राजसूय यज्ञ का निमंत्रण भी मिला है। इन दोनों कार्यों में कृष्ण राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने को ठीक बताते हैं। **तीसरे सर्ग** में कृष्ण की सेना इन्द्रप्रस्थ के लिये रवाना होती है। **चतुर्थ सर्ग** में वह रैवतक पर्वत पर पहुंचती है। यहां पर्वत का अलंकृत वर्णन है। **पांचवें सर्ग** में सेना के रैवतक पर्वत पर पड़ाव डालने का वर्णन है। **छठें सर्ग** में कृष्ण की सेना के लिये सभी ऋतुएं रैवतक पर्वत पर अवतीर्ण होती हैं। **सांतवें सर्ग** में यदुदम्पत्तियों का विलासपूर्ण वनविहार वर्णित हैं। **अष्टम सर्ग** में जल–क्रीड़ा चित्रित **है। नवें सर्ग** का आरम्भ सूर्यास्त से होता है जहाँ दूतीकर्म और प्रणयी नायक

–नायिकाओं के केलि–नाटक का पूर्वरङ्ग के रूप में आहार्य–प्रसाधन की शोभा का वर्णन है। **दसवें सर्ग** में सुरा तथा सुन्दरी के सेवन का अत्यन्त विलासपूर्ण वर्णन है। **ग्यारहवें सर्ग** में प्रातःकाल का वर्णन है। **एकादश सर्ग** माघ के बेजोड़ सर्गों में से एक है, जिसके समान वर्णन संस्कृत साहित्य के अन्य काव्यों में इसी पैमाने पर मिलना दुर्लभ है। **बारहवें सर्ग** में पुनः वही पांचवें सर्ग की तरह सेना प्रयाण का वर्णन है। इसी सर्ग में यमुना का पार करने का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। **तेरहवें सर्ग** में कृष्ण को देखने के लिये इन्द्रप्रस्थ की पुरनारियों का सरस वर्णन है। **चौदहवें सर्ग** में यज्ञ का वर्णन है, इसी सर्ग में कृष्ण की पूजा की जाती हैं। **पन्द्रहवें सर्ग** में कृष्ण की पूजा से रुष्ट होकर शिशुपाल कृष्ण, भीष्म तथा युद्धिष्ठर को खरी–खोटी सुनाता है। **सोलहवें सर्ग** में शिशुपाल का दूत आकर कृष्ण को द्वयर्थक (श्लिष्ट) संदेश सुनाता है, जिसका आशय यह है कि, या तो कृष्ण शिशुपाल की अधीनता मान लें, या लड़ने के लिये तैयार हो जायें। दूत की उक्ति का उत्तर सात्यकि देता है। **सत्रहवें और अठाहरवें सर्ग** में सेना की तैयारी का एवं योद्धाओं के सन्नद्ध होने का वर्णन है। उन्नीसवें एवं बीसवें सर्ग में युद्ध का वर्णन है।

5.7 माघे सन्ति त्रयो गुणाः

माघ केवल सरस कवि ही नहीं थे, प्रत्युत एक प्रकाण्ड सर्वशास्त्र तत्वज्ञ विद्वान् भी थे। माघ का वैदुष्य एकांगी न होकर सर्वांगीण है। उनमें कालिदास के जैसा सुन्दर उपमा प्रयोग ही नहीं है, अपितु भारवि के तुल्य अर्थगौरव और दण्डी के तुल्य पद–लालित्य भी है। माघ का यह दृष्टिकोण रहा है कि उनकी कविता में उनके समय में प्रचलित सभी गुण आ जाये, जिससे किसी भी दृष्टि से देखने पर उनका काव्य एकांगी या न्यून प्रतीत न हो। इसलिये उन्होंने एक ओर अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है, तो दूसरी ओर भाव सौष्ठव का। एक ओर उपमा का सौंन्दर्य, तो दूसरी ओर अर्थान्तरन्यासों की छटा, एक ओर भाषा सौष्ठव है, तो दूसरी तरफ भाव गाम्भीर्य। इसी से भावसमन्वयात्मकता से मुग्ध होकर संस्कृत साहित्य समीक्षकों ने **"माघे सन्ति त्रयो गुणाः"** कहा है। इस उक्ति का अभिप्राय यह है कि, माघ के काव्य में उपमा, अर्थगौरव और पदलालित्य तीनों गुण समष्टि रूप में विद्यमान है।

उपमा – माघ का भाषा पर असाधारण अधिकार है। नवीन चमत्कारी उपमा का विन्यास माघ की विशिष्टता है। माघ के पात्रों में सजीवता दिखाई पड़ती है। एक उदाहरण के रूप में "आकाश से उतरने वाले काले–काले मेघों के नीचे कर्पूरपाण्डुर महर्षि नारद के रूप चित्रण में कवि जितना सफल है उतना ही सन्देश कथन में भी। माघ के वर्णनों में उनकी कला, प्रतिभा कल्पना, सजीवता, सरसता आदि का उच्चकोटि का समन्वय है।

प्रातःकालीन दिवाकर का बालक के रूप में चित्रण कवि के सरस हृदय का परिचायक है। (11/40) तो प्राची में सूर्योदय का यह रंगीन दृश्य एक चिरस्मरणीय वस्तु है (शिशुपाल वध11/44)

अरुणजलजराजीमुग्धहसताग्रपादा
बहुलमधुपमालाकज्जलेन्दीवराक्षी।
अनुपतति विरावैः पत्रिणां व्याहरन्ती
रजनिमचिरजाता पूर्वसन्ध्या सतेव।। (शिशुपालवध 11/40)
"विततपृथुवरत्रातुल्यरूपैर्मयूखैः
कलश इव गरीयान् दिग्भिराकृष्यमाणः।
कृतचपलविहङ्गालापकोलाहला
भिर्जलनिधिजलमध्यादेष उत्तार्यतेऽर्कः।। (शिशुपालवध 11/44)

चारों तरफ फैली हुई मोटी रस्सियों के समान किरणों के द्वारा खींचा जाता हुआ बड़े भारी कलश के समान यह सूर्य दिशारूपी नदियों के द्वारा समुद्र के जल से निकाला जा रहा है। जिस प्रकार कलश रस्सों की सहायता से बाहर निकाला जाता है, उसी प्रकार पूर्व समुद्र में डूबे हुये सूर्य को दिशायें किरणरूपी रस्सियों से खींचकर निकाल रही हैं। जिस प्रकार जल में डूबे घड़े को जल से निकालने के समय बड़ा कोलाहल मचता है, उसी तरह प्रातःकाल की चहचहाती चिड़िया शोर मचा रही हैं। प्रातःकाल के समय पक्षीगण का मनोहर कोलाहल कर्णपुर को सुख देते हैं। चारों ओर किरणें फैलाने वाले बाल सूर्य का यह सुन्दर वर्णन है।

रैवतक पर्वत से बहने वाली नदियों का कितना सुन्दर वर्णन कवि ने किया है। जो नदियां रैवतक पर्वत की बेटियां हैं, वे पति (समुद्र) से मिलने को जा रही हैं। कितनी सुन्दर उपमा पिता और पुत्री के पतिगृह जाने की दी हैं–

अपशङ्कःमङ्क परिवर्तनोचिताश्चलिताः पुरः पतिमुपैतुमात्मजाः।
अनुरोदितीव करुणेन पत्रिणां विरुतेन वत्सलतयैष निम्नगाः।।

कन्या के पतिगृह जाने के समय पिता का हृदय पिघल जाता है। वह कितना भी कठोर हो द्रवीभूत अवश्य हो जाता है।

"पीड्यन्ते गृहिणः कथंन्नु तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः"।।

अतः रैवतक भी पक्षियों के करुण स्वर से कन्याओं के लिये रो रहा है।

अर्थगौरव – भारवि के समान माघ में भी अर्थगौरव उत्पादन की विशेष क्षमता थी। वे भलीभांति जानते थे कि, कतिपय वर्णों के विन्यास द्वारा ही वाङ्मय में उसी प्रकार अनन्त विचित्रता है, जिस प्रकार सप्त स्वरों से ग्रंथित होने वाला गायन अनन्त रूप से विचित्र बन जाता है। अर्थ के गाम्भीर्य से माघ काव्य भरा पड़ा है। अर्थगाम्भीर्य के कारण अर्थान्तरन्यास अलंकार से युक्त अर्थ गौरव के अनेकानेक उदाहरण हैं– यथा

सदाभिमानैकधना हि मानिनः(1 से 67)

(स्वाभिमानियों का मान ही धन होता है।)

महीयांसः प्रकृत्या मितभाषिणः (2–13)

(श्रेष्ठ व्यक्ति स्वभाव से ही मितभाषी होते हैं।)

अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धों दुरुदाहरः (2: 73)

(अर्थ गाम्भीर्य से युक्त प्रबन्ध दुष्कर है।)

नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः (2–83)

(प्रतिभासम्पन्न कवि प्रसाद, माधुर्य और ओज इन तीनों गुणों को अपनाता है।)

भाषा माघ की अनुगामिनी है। भाषा के माध्यम में महाकवि माघ जो चाहते हैं, वैसा अर्थ निकालवा लेते हैं। इसी क्रम में अर्थ के गाम्भीर्य का एक सुन्दर उदाहरण तथ्यों के उद्घाटन के अवसर पर विशेष रूप से मिलता है।

तस्य सांख्यपुरुषेण तुल्यतांविभ्रतः स्वयमकुर्वत क्रियाः।।
कर्तता तदुपलाम्भतोऽभवद् वृत्तिभाजि करणे यथर्त्विजि।।

यज्ञ का प्रसंग हैं। होम आदि क्रियाओं को स्वयं न करते हुये सांख्य पुरुष की समानता धारण करने वाले राजा युधिष्ठिर को अन्तःकरण के समान ऋत्विजों द्वारा अधिष्ठित यज्ञ की भावना से कर्तापन की प्राप्ति हुई।

ऐसे ही एक बहुत चमत्कारी वर्णन आदर्श राजा के स्वरूप के चित्रण को दर्शाते हुये महाकवि माघ ने किया है जो अर्थगौरव का सुन्दर प्रस्तुतीकरण है–

बुद्धिशस्त्रः प्रकृत्यङ्गो धनसंवृति कञ्चुकः

चारेक्षणो दूतमुखः पुरुषः कोऽपि पार्थिवः।।

(सं०सा० का इतिहास बलदेव उपाध्याय– 2/82)

शस्त्र जिसकी बुद्धि है जिसके अंग प्रजा, स्वामी, अमात्य आदि हैं। जिसका कवच दुर्वेद्य मन्त्र की सुरक्षा है, जिसके नेत्र गुप्तचर हैं। जिसका मुख सन्देशवाहक दूत होता है–ऐसा राजा सामान्य जन न होकर अलौकिक पुरुष होता है। इन अल्पकाय श्लोक में अर्थ का गौरव पूरी मात्रा में विद्यमान है।

महाकवि माघ पदलालित्य–

जहाँ पर एक ओर उपमा के प्रयोग में कवि चतुर हैं तथा अर्थगौरव माघ के साहित्य में पद–पद पर पदलालित्य प्राप्त होता है। माघ तो पदविन्यास के बादशाह हैं। न केवल शब्दों तथा पदों के ललित विन्यास में ही माघ निपुण थे। प्रत्युत नित नूतन प्रयोगों के कारण ही यह उक्ति प्रसिद्ध है।

"नवसर्गगते माघे नवशब्दो न विद्यते "। यह कथन पदमाधुर्य कर निपुणता के आचार्य माघ की कविताकामिनी की कितनी प्रशस्ति की जाये वह कम होगी। उनके शब्दों से इतनी संगीतात्मक एकरसता है कि, वीणा के तारों के झंकार की भांति अर्थवबोध की प्रतीक्षा किये विना ही वह सबके हृदय में घुल सी जाती है। रसप्लावित हो जाती है।

वसन्त की सुन्दरता का कितनी ही मोहकता से माघ ने अपने शब्दों की ध्वनि द्वारा विद्योतित किया है–

मधुरया मधुबोधितमाधवी, मधुसमृद्धिसमेधितमेधया।

मधुकराङ्गनया मुहुरुन्मदध्वनिभृता निभृताक्षरमुज्जगे।।

श्लोक के सरस वर्णों के उच्चारण के समय बिना किसी परिश्रम के अनायास ही मानो जीभ फिसलती हुई चली जाती है। माघ ने ऐसे वर्णनों में अपनी कला प्रतिभा और कल्पना का उच्चकोटि का समन्वय किया है। कवि के वर्णनों में सजीवता, सरसता, चित्रात्मकता और अलंकृता सर्वत्र विद्यमान है। वर्णनों में माघ की सूक्ष्म दृष्टि अत्यन्त प्रशंसनीय है। अतः समीक्षकों द्वारा निम्न क्थन अत्यन्त समीचीनी है–

"उपमा कालिदासस्य भारवेर्र्थगौरवम्।

दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः"।।

5.8 माघ की काव्यशैली –

भाषा पर असाधारण अधिकार रखने वाले महाकवियों में महाकवि माघ भी आते हैं। अवसरानुकूल पदों के प्रयोग में माघ सिद्धहस्त हैं। माघ एक महान् कवि–पण्डित थे। उनका ज्ञान दर्शन, नाट्यशास्त्र, अलंकारशास्त्र, व्याकरण आदि शास्त्रों में बड़ा ही उत्कृष्ट था। महाकाव्य की कथावस्तु को श्रीमद्भागवत (10/6150) के आधार पर ही मुख्यतया प्रस्तुत किया है। काव्य की प्रधान घटना का मुख्य आधार भागवतपुराण ही है। माघ की काव्यशैली 'अलंकृत' शैली का चूडान्त दृश्य है। वह प्रसंगानुसार सरल से

सरल और कठिन से कठिन पदावली के प्रयोग में दक्ष रहे हैं। माघ परिष्कृत पद विन्यास के आचार्य हैं। माघ की दृष्टि में सीधे–सादे शब्दों में पदार्थ निरुपण ऊंचे काव्य की कसौटी नहीं हैं, प्रत्युत वक्रोक्ति से मण्डित तथा शाब्दिक और आर्थिक चमत्कार के उत्पादक अलंकारों से सुसज्जित पदविन्यास ही सच्चे काव्य का निदर्शन है। यही कारण हैं कि इनके काव्य में सभी गुणों का सामञ्जस्य स्थान–स्थान पर सुन्दरतम ढंग से हमारे सामने उपस्थित होता रहता है। कहीं पर प्रसाद है, कहीं पर माधुर्य और कहीं पर ओज और इसी प्रकार कहीं पर शृङ्गार के विविध भावों का सौन्दर्य है, तो कहीं वीर रस का प्रस्फुरण। कवि की मान्यता है कि –

क्षणे–क्षणे यन्नवतामुपैति, तदेव रूपं रमणीयतायाः (4/17)

अर्थात् काव्य में प्रतिक्षण भावों के कारण, गुणों के कारण, अलङ्कारों के कारण, रसादि के प्रयोग के कारण जो नवीनता आती है, वही वास्तविक रूप से काव्य का सौन्दर्य है।

माधुर्य, यमक और लयात्मकता के सम्बन्ध की एक और झांकी प्रस्तुत है–

वर्जयन्त्या जनैः सङ्गमेकान्ततस्तर्कयन्त्या सुखं सङ्गमे कान्ततः।

योषयैष स्मरासन्नतापाङ्गाया,सेव्यतेऽनेकया सन्नतापाङ्गया।। (1/4–42)

माघ के प्रवीण पद उस गुलदस्ते के समान है जिसे माली ने अनेक रंगीन फूलों के मंजुल मिश्रण से तैयार किया है और जो खूब कटे–छंटे, नपे–तुले विदग्धजनों के मनोविनोद के लिये प्रस्तुत एक नयनाभिराम कलात्मक पदार्थ होता है।

चित्रालंकारों का बाहुल्य कवि की शाब्दिक चमत्कारी प्रतिभा का निर्देशन होने पर भी आलोचकों के नितान्त वैरस्य का कारण बनता है। माघ ने नाना प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। मालिनी छन्द के तो माघ रससिद्ध आचार्य हैं।

माघ प्रकाण्ड पण्डित हैं। उन्होंने नाना शास्त्रों के विषय का उपयोग अपनी उपमा और उत्प्रेक्षा जमाने के लिये बड़े ही सुन्दरतम ढंग से किया है। उदात्त चरित्र शिशुपाल एक ही चाल में अपने शत्रुओं को उसी प्रकार मार भगाता है जिस प्रकार एक ही पद में विद्यमान उदात्त स्वर अन्य स्वरों को निघात स्वर (अनुदात्त) बना देता है। माघ के वर्णनों में चाहे वे प्राकृतिक हो या मानुषिक वर्णनों में सजीवता का वर्णन देखने को मिलता है। कवि के प्राकृतिक प्रक्षेपण का परिणाम उनके वर्णनों में सजीवता है, ऐसा उनके वर्णनों में प्रचुरता से देखने को मिलता है। कवि के प्राकृतिक पर्यवेक्षण का परिणाम उनके वर्णनों में प्रचुरता से देखा जा सकता है। माघ ने अपने काव्य के उपवृहण (आवर्धन, सशक्त) करने के लिये पर्वत, नदियां, ऋतु, प्रभात आदि का चित्रण बहुत कुशलता के साथ किया है। उन्होंने इसे अपनी बौद्धिक तूलिका से

चित्रित किया है। शिशुपाल वध के 11 वें सर्ग में पर्वत की तुलना हाथी से तथा दोनों ओर लटकने वाली सूर्य चन्द्र की तुलना घण्टा से किया है। इसीलिये कुछ स्थलों पर उन्हें **''घण्टा माघ''** भी कहा गया है।

माघ ने छन्दों के चयन में भी पटुता प्रदर्शित की है। कालिदास के अतिप्रिय छह छन्दों के अनुपात में भारवि ने 12 छन्दों का वैशिष्टय दिखाया है परन्तु माघ ने सोलह छन्दों का प्रयोग किया है। भावगाम्भीर्य तथा चित्रालंकारों के प्रयोग में अनुष्टुप जैसे सरल छन्द का क्रमशः सर्ग 2 और सर्ग 19 में उपयोग किया है।

अभ्यास

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) ''बृहत्सहायः कार्यान्त क्षोदीयानपि गचछति'' इस सूक्ति ये युक्त रचना है –

(क) शिशुपालवध **(ख)** किरातार्जुनीय **(ग)** नैषधीय चरित्र **(घ)** रघुवंश – **उत्तर (क)**

(2) शिशुपालवध में कितने सर्ग हैं –

(क) 20 **(ख)** 17 **(ग)** 18 **(घ)** 19 – **उत्तर (क)**

(3) शिशुपालवध में श्लोकों की संख्या कितनी है –

(क) 1030 **(ख)** 1650 **(ग)** 1830 **(घ)** 1624 – **उत्तर (ख)**

(4) शिशुपालवध में कथा महाभारत के किस पर्व से ली गई है –

(क) आदि–पर्व **(ख)** शान्ति–पर्व **(ग)** सभा– पर्व **(घ)** द्रोण –पर्व – **उत्तर (ग)**

(3) शिशुपालवध में कथानक का मूल विषय है –

(क) कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध **(ख)** शिव से पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति **(ग)** श्रीकृष्ण द्वारा शिशुपाल का वध **(घ)** नल–दमयन्ती का प्रणय वर्णन – **उत्तर (ग)**

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न –

प्रश्न 1– शिशुपालवध के प्रथम सर्ग के कथानक का सारांश लिखिये।

प्रश्न 2– 'नवसर्गगते माघे नव शब्दों न विधते' की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न 3– माघे सन्ति त्रयो गुणाः पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 4– महाकवि के काव्य का वैशिष्ट्य लिखिये।

इकाई –6

महाकवि श्री हर्ष

इकाई की रूपरेखा

6.1 इकाई परिचय

6.2 उद्देश्य

6.3 महाकवि श्री हर्ष का व्यक्तित्व

6.4 महाकवि श्री हर्ष का कर्तुत्व

6.5 महाकवि श्री हर्ष का समय

6.6 'नैषधीय चरितम्' का प्रतिपाद्य विषय

6.7 महाकवि श्री हर्ष की काव्यशैली

- **6.71** भाषा सौष्ठव
- **6.72** भावाभिव्यक्ति
- **6.73** रस योजना
- **6.74** महाकवि श्री हर्ष का ... द्वारा निरुपण
- **6.75** नैषधविद्वौषम्

6.8 बोध प्रश्न

6.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के अन्तर्गत 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (MAST-113 N) नामक प्रश्न–पत्र निर्धारित है। इस प्रश्न–पत्र के खण्ड ख में छठवीं इकाई श्री हर्ष से सम्बन्धित है। इस इकाई में महाकवि श्री हर्ष के व्यक्तित्व एवं कर्तुत्व के विषय में विस्तार से अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी –

1– महाकवि श्री हर्ष के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।

2– महाकवि श्री हर्ष के कर्तुत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3– 'नैषधीय चरितम्' के प्रतिपाद्य विषय से अवगत हो सकेंगे।

4– श्री हर्ष की काव्यशैली का बोध कर सकेंगे।

6.3 महाकवि श्री हर्ष का व्यक्तित्व

कृत्रिम अलङ्कृत शैली में महाकाव्य लेखन परम्परा महाकवि भारवि से प्रारम्भ होकर माघ तक अनवरत चलती रही। माघ के परवर्ती महाकवियों में यह कृत्रिमता और क्षणिक बढ़ती गयी, फलतः महाकाव्य शाब्दिक चमत्कार, विविध छन्द प्रयोग, अलङ्कारिक ज्ञान एवं पाण्डित्य प्रदर्शन के विषय बन गये। माघोत्तर काल के महाकाव्यों में पाण्डित्य प्रदर्शन, कल्पना की ऊँची उड़ान एवं शृङ्गारिक चित्रण के कारण जो महाकाव्य अत्यधिक प्रसिद्ध हुआ, वह है– श्री हर्ष का नैषधीय चरितम्।

'नैषधीयचरितम्' के सर्गान्त में श्री हर्ष ने अपने जीवन के बारे में कुछ बातों को उद्घाटित किया है, जिससे उनके माता–पिता का नाम, आश्रयदाता का नाम और प्रमुख ग्रन्थों का नाम हमें ज्ञात होता है। इससे उनके समय निर्धारण में भी सरलता होती है। श्री हर्ष के पिता का नाम 'हीर' तथा माता का नाम 'मामल्लदेवी' था।

'श्रीहर्षं कविराजमुकुटालंकार हीरः सुतं।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।। (1/145)

हीर काशी के गहड़वाल वंशी विजयचन्द्र की सभा के प्रधान पण्डित थे। श्री हर्ष के प्रति गौरव सूचनार्थ राजा उनको दो पान और आसन देते थे। कश्मीर के उद्भट विद्वानों ने उनके ग्रन्थों की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। श्री हर्ष के विषय में कुछ किवदन्तियां भी मिलती हैं कि, वे बहुत अभिमानी थे। कुछ आलोचक कहते हैं कि, उन्हें अपने वैदुष्य का वहुत अभिमान था।

कहा जाता है कि, श्री हर्ष के पिता श्री हीर को प्रसिद्ध नैयायिक आचार्य उदयन ने शास्त्रार्थ में हराया था। पिता के आदेशनुसार उन्होंने चिन्तामणि मंत्र का जप करके त्रिपुरसुन्दरी का वरदान प्राप्त किया जिससे उनको अपराजेय पाण्डित्य मिला। उन्होंने उदयनाचार्य को हराकर पिता की कामना पूर्ण की। श्री हर्ष के

राजदरबार में आने पर उदयनाचार्य ने 'गौर्गौरागतः' (बैल आया) ऐसा कहा। जिसका मुंहतोड़ उत्तर श्री हर्ष ने इस प्रकार दिया–

"किं गवि गोत्वमुतागवि गोत्वं, यदि गवि गोत्वं नहि मयि गोत्वम्।
अगवि च गोत्वं तव यदि साध्यं, भवतु भवत्यपि संप्रति गोत्वम्।।"

अर्थात् गो भिन्न को यदि तुम गो (बैल मूर्ख) सिद्ध करना चाहते हो, तो वह गोत्व मूर्खत्व तुममें भी है।

एक समय राजा विजयचन्द्र जयचन्द्र की सभा में श्रीहर्ष गये और सभा में पहुंचते ही राजा के गुणों से प्रसन्न होकर उनके सम्मान में यह सुन्दर पद्य सुनाया–

गोविन्द नन्दनतया च वपुः श्रिया च
माऽस्मिन् नृपे कुरुत कामधियं तरुण्यः।
अस्त्रीकरोति जगतां विजये स्मरः स्त्री–
रस्त्रीजनःपुनरनेन विधीयते स्त्रीः।।

(श्रीराजशेखर सूक्तिकृत श्री हर्ष कवि प्रबन्ध 1)

यह पद्य सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग अत्यधिक प्रसन्न हुए। उनके पिता को पराजित करने वाले पण्डित उदयनाचार्य ने भी उनकी असीम विद्वता को देख अपनी पराजय स्वीकार की तथा इनकी स्तुति की। इसके पश्चात वे जयचन्द्र की सभा में रहने लगे। राजा के कहने से ही श्री हर्ष ने 'नैषधीयचरितम्' की रचना की।

कश्मीर में श्री हर्ष के ग्रन्थों की बहुत प्रशंसा प्रतिष्ठा रही है। कुछ किवदन्तियों में यह कहा जाता है कि, आचार्य मम्मट उनके मामा थे पर मम्मट और श्री हर्ष के समय में बहुत ज्यादा अन्तर होने के कारण इसको प्रमाणिक नहीं माना जा सकता है। उदयन द्वैतवादी नैयायिक थे तथा श्रीहर्ष अद्वैतवादी वेदान्ती। फलतः श्री हर्ष द्वारा उदयन के मत का खण्डन उपलब्ध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। श्रीहर्ष केवल प्रथम कोटि के महाकवि ही नहीं थे, अपितु उच्चकोटि के प्रकाण्ड विद्वान भी थे। इनमें पाण्डित्य और वैदग्धता का अनुपम सम्मिलन था।

6.4 महाकवि श्रीहर्ष का कर्तृत्व–

श्रीहर्ष की महान कृति नैषधीयचरित सर्गान्त के कतिपय श्लोकों से निम्न कृतियों के विषय में जानकारी मिलती है।

(1) सर्ग 4 के अन्त से स्थैर्यविचार प्रकरण (2) श्रीविजयप्रशस्ति सर्ग 5 से (3) खन्डनखण्डखाद्य सर्ग 6 से (4) गौडोर्वीशि कुल प्रशस्ति की जानकारी सर्ग 7 से (5) अर्णववर्णन की जानकारी संर्ग 9 से (6) छिन्दप्रशस्ति की सर्ग 17 से (7) शिवशक्तिसिद्वि की सर्ग 18से (8) नवसाहसाङ्कचरितचम्पू की सर्ग 22 के अन्त में आये श्लोकों से प्राप्त होती है।

'खन्डनखण्डखाद्य' में 'ईश्वराभिसन्धि' ग्रन्थ का पांच बार उल्लेख हुआ है। इस तरह नैषधीयचरित को लेकर श्रीहर्ष की 10 रचनायें ज्ञात होती हैं। परन्तु स्पष्ट उल्लेख व अन्य किसी रचना के प्राप्त न होने से संस्कृत साहित्य के सुधी इतिहासकारों द्वारा 10 रचनाओं को, जिनके नाम प्राप्य हैं, श्री हर्ष की रचना माना गया।

6.4 महाकवि श्रीहर्ष का समय–

श्री हर्ष ने स्वयं इस बात का उल्लेख किया है कि वे (कान्यकुब्ज) कन्नौज के राजा के आश्रित कवि हैं और उन्हें राजदरबार में बहुत सम्मान मिलता था। राजदरबार में सम्मानस्वरूप दो पान और आसन दिया जाता था।

"ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरात्"। (नैषधीयचरितम् 22–153)

डॉ0 ब्यूहलर ने सर्वप्रथम इस ओर प्रकाश डाला था। उनके निर्णय का आधार राजशेखर सूरि (1348 ई0) कृत 'प्रबन्धकोष' में दिया गया विवरण है। तदनुसार श्रीहर्ष कान्यकुब्ज के राजा जयन्तचंद या जयचन्द के आश्रित कवि थे। जयचन्द और कुमारपाल की 1163 ई0 से 1164 ई0 की स्थिति मानी जाती है। इसीलिये ब्यूहलर ने निष्कर्ष निकाला है कि, नैषधीयचरितम् की रचना इसी बीच हुई है। अतः श्रीहर्ष का समय 12वीं शताब्दी का उत्तरार्ध माना जा सकता है।

6.6 नैषधीय चरितम् का प्रतिपाद्य विषय

नैषधीयचरित में कुल 22 सर्ग हैं। जिसमें तेरहवें और उन्नीसवें सर्ग को छोड़कर शेष सभी सर्गों में 100 से अधिक श्लोक हैं। सर्वाधिक श्लोक 17वें सर्ग में 222 श्लोक हैं। इस कथा में नल और दमयन्ती के प्रेम से लेकर परिणय तक का वर्णन है। 'नैषधीय चरितम्' का प्रतिपाद्य विषय सर्गानुसार निम्नवत है –

सर्ग 1– नल और दमयन्ती का एक दूसरे के गुणों को सुनकर परस्पर आकृष्ट होना। नल का वन विहार, हंस को पकड़ना दयार्द्र होकर उसे छोड़ना।

सर्ग 2 – हंस का कृतज्ञताज्ञापन और दमयन्ती के पास गुणगान। नल के आग्रह पर हंस का दमयन्ती के पास कुण्डिनपुरी जाना।

सर्ग 3– हंस का दमयन्ती के सामने नल का गुणगान, दमयन्ती की नल के प्रति अनुरक्ति और हंस का नल के पास लौटना।

सर्ग 4– दमयन्ती की विकलता का भावपूर्ण वर्णन तथा पिता भीमसेन द्वारा स्वयंवर का निर्णय।

सर्ग 5– इन्द्र, अग्नि, यम और वरुण का नल को दूत बनाकर दमयन्ती के पास भेजना।

सर्ग 6– अदृश्य नल का दमयन्ती के यहाँ पहुँचना और उसका सौन्दर्य देखना।

सर्ग 7– दमयन्ती का नख–शिख वर्णन

सर्ग 8– नल का प्रकट होकर देवों का सन्देश दमयन्ती को सुनाना और चारों देवों में से किसी एक को चुनने का आग्रह करना।

सर्ग 9– नल दमयन्ती का वार्तालाप। दमयन्ती का देवों का अस्वीकार करने का निश्चय और नल को विवाह के लिये मनाना।

सर्ग 10– स्वयंवर वर्णन, स्वयंवर में देवताओं को नल के वेश में देखकर दमयन्ती का घबरा जाना।

सर्ग 11 और 12– सरस्वती स्वयं उस सभा में आकर देवताओं का परिचय देती हैं।

सर्ग 13– चार देवताओं और नल का सरस्वती द्वारा श्लेषयुक्तवर्णन

सर्ग 14– देवों की स्वीकृति से दमयन्ती का नल को वरण करना और देवों का आशीर्वाद देना।

सर्ग 15– विवाह की तैयारी

सर्ग 16– विवाह संस्कार आदि विशेष वैवाहिक भोजन आदि का वर्णन। छह दिन रुककर नल का अपनी राजधानी पहुंचना।

सर्ग 17– देवों का लौटते समय कलि से मिलना, कलि के मुंह से चार्वाक् सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन, देवों के द्वारा चावार्क सिद्धान्त का खण्डन, क्रोधित कलि का नल को राज्यच्युत तथा दमयन्ती से वियुक्त होने का शाप।

सर्ग 18– नल दमयन्ती का प्रथम मिलन एवं प्रणय–क्रीडा–वर्णन

सर्ग 19 से 22 तक– चार सर्गो में नल दमयन्ती के प्रेम, दिनचर्या, देवस्तुति प्रकृति वर्णन, नल दमयन्ती का विलास–वर्णन तथा कविवृत्त वर्णन से समाप्त होता है। जिस प्रकार से 'खण्डनखण्डखाद्य' ग्रन्थ को दार्शनिक ग्रन्थों का मुकुट मणि कहा गया उसी प्रकार नैषध उनके काव्यों का अलंकार है।

6.7 महाकवि श्रीहर्ष की काव्यशैली–

श्रीहर्ष तक आते–आते काव्य में चमत्कार इतना अधिक बढ़ गया कि डॉ0 भोला शंकर व्यास आदि संस्कृत साहित्य के समीक्षकों ने श्रीहर्ष के नैषध के विषय में कहा कि श्रीहर्ष ने अपना काव्य कोरे रसिक सहृदयों के लिए न लिखकर पण्डितों के लिये लिखा है। रसिक सहृदयों को भी श्रीहर्ष ने अप्रौढ़ बुद्धि वाले बालक कहा है, जिनके हृदय में श्रीहर्ष की रमणीय कविता–कामिनी का लावण्य कोई आनन्द नहीं पैदा कर सकता। वे स्वयं कहते हैं कि नैषध की रमणीयता का आस्वाद उसी व्यक्ति को हो सकता है जो श्रद्धा के साथ गुरुचरणों में बैठकर इस ग्रन्थ की उन जटिल गाँठों को ढीली करवा ले, जिन्हें कवि ने स्थान–स्थान पर बड़े प्रयत्न एवं कुशलता से डाल दिये हैं। आगे वे चेतावनी देते हैं कि अपने आपको विद्वान् समझने वाला दुष्ट मूर्ख इस काव्य के साथ खिलवाड़ करने की कोशिश न करे, वह इन गाँठों को नहीं सुलझा पायेगा और यदि वह इन गाँठों को सुलझाकर काव्यतरङ्गों में अवगाहन करने का आनन्द प्राप्त करना चाहता है, तो गुरु के चरणों में बैठकर इसका अध्ययन करे–

"ग्रन्थग्रन्थिरिह क्वचितक्वाचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञंमन्यमना हवेन पठिती मास्मिन् खलः खेलतु।
श्रद्धाराद्वगुरूश्लथीकृत दृढग्रन्थिः समासदय–
त्वेतात्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः।।

कतिपय संस्कृत साहित्य के समीक्षक विद्वान श्रीहर्ष को भारवि एवं माघ से बड़ा मानते हुये कहते हैं कि – महाकवि भारवि तभी तक सुशोभित हैं, जब तक माघ का उदय नहीं हुआ था और नैषध के प्रकाश में आने पर कहाँ भारवि और कहाँ माघ–

तावद् भा भारवेर्भाति, यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे काव्ये, क्व माघः क्व च भारविः।।

श्री हर्ष संस्कृत साहित्य के मूर्धन्य कवियों में से एक हैं। उनका 'नैषधीयचरित' महाकाव्य ही उनके गुण–गौरव और विद्वता का आकार है। अपने पाण्डित्य प्रदर्शन, योग्यता विद्वता के माध्यम से श्रीहर्ष ने सभी महाकवियों को पीछे छोड़ दिया है। अत एव 'नैषधीयचरित' को वृहत्त्रयी में परिगणित महाकाव्यों में सर्वोत्कृष्ट रचना माना जाता है। श्रीहर्ष ने संस्कृत काव्यों के रीतिकाव्य में द्वयर्थक या त्र्यर्थक पद्य रचना की, जिसके फलस्वरुप एक नयी विधा प्रकाश में आयी। इसी की अनुकृति पर राघवपाण्डवीयम्, राघवनैषधीयम् आदि द्वयर्थक या त्र्यर्थक काव्यों का प्रणयन हुआ। पञ्चनली –प्रसंग में श्रीहर्ष ने द्वयर्थक से लेकर पांच अर्थ वाले श्लोकों की रचना की है। श्रीहर्ष की कल्पना शक्ति अत्यन्त उर्वर है। उनकी कल्पनाओं की कोई सीमा नहीं है। वह अपनी किसी कल्पना की पुनरावृत्ति कर उसको फीका नहीं बनाते हैं। विप्रलम्भ शृङ्गार के वर्णन में भी श्रीहर्ष की चातुरी अद्भुत तथा मनोहारिणी है। श्रीहर्ष की अन्य विशेषता यह है कि, उसने

पुरातन पद्धति का अनुकरण नहीं किया। उन्होंने कालिदास की कल्पना शक्ति, भारवि के अर्थगौरव और माघ के पाण्डित्य प्रदर्शन आदि गुणों को अपनाकर अपने काव्य में स्थान दिया। श्रीहर्ष का काव्य सरस हृदय एवं व्युत्पन्न पाठकों के लिये शस्य–श्यामल कुसमित उद्यान है। कवि ने अपनी प्रतिभा का परिचय शब्दों के नवीन अर्थों का बहुत स्थानों पर प्रयोग करके दिया है।

6.7.1 भाषा सौष्ठव –

श्रीहर्ष की भाषा में प्रौढ़ता के साथ परिष्कार है। उनकी भाषा में दुरूह से दुरूह भावों को प्रकट करने की असाधरण क्षमता है। उनकी भाषा सरस, सरल, प्राञ्जल, प्रवाहयुक्त ध्वन्यात्मक और लयात्मक है। भावों के अनुसार भाषा में उतार–चढ़ाव है। एक ओर पदलालित्य तो दूसरी ओर स्वरमाधुर्य है। एक ओर प्रसादगुण तो दूसरी ओर ओज है। एक ओर वैदर्भी की छटा हैं तो दूसरी ओर गौडी का चमत्कार। एक ओर उत्प्रेक्षाओं का भंडार है तो दूसरी तरफ अर्थान्तरन्यास का वैभव झलकता है। एक तरफ शृङ्गार की रस क्रीडायें हैं तो वहीं दूसरी ओर करुण का द्रवीभाव, एक ओर कलापक्ष की प्रधानता है तो दूसरी तरफ भावपक्ष की उदात्तता है। भाषा के रस माधुर्य, लयात्मक एवं संगीतात्मकता का सुन्दर समन्वय निम्न पद्य में देख सकते हैं।

"इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीन दयालुतयाऽवनिपालः।
रुपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय।।"

दमयन्ती के मुखचन्द्र के वर्णन में यमक की छटा के साथ आरोह–अवरोह दर्शनीय है, जिसमें कवि कहता है कि, दमयन्ती के दाँतों की कान्ति ने तारवली को, मुख की कान्ति ने चन्द्रमा को एवं बालों की कान्ति ने आकाश की शोभा को जीतकर किस राजा को सन्तुष्ट नहीं किया, अर्थात सभी को किया–

तारा रदानां वदनस्य चन्द्रं रुचा कचानां च नभो जयन्तीम्।
आकण्ठमक्ष्णोर्द्वितयं मधूमि, मही भुजः कस्य न भोजयन्तीम्।। (नैषध 10/10 से)

6.7.2 भावाभिव्यक्ति–

श्री हर्ष भावाभिव्यक्ति के पण्डित माने जाते हैं। उन्होंने अपनी कल्पना की ऊँची उड़ान में भावों का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जो अछूता छोड़ रखा हो। उनकी अभिव्यक्ति भावों को मनोरम और सुकुमार बना देती है। मानव के हृदय के मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध को उन्होंने बहुत ही सरल ढंग से अपने श्लोकों में प्रस्तुत किया है – उदाहरणार्थ एक स्थल पर कवि कहता है कि कि विधि की इच्छानुरूप चित्त की गति हुआ करती है–

अवश्यभव्येष्वनवग्रहाग्रहा,यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा।
तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते, जनस्य चित्तेन भृशाऽवशात्मना।। (नैषध 1/20 से)

अर्थात् अवश्यंभावी विषयों में विधि की इच्छा जिस ओर गमन करती है, विवश होकर मनुष्य का चित्त भी उसी ओर जाता है, जैसे आँधी के साथ तिनका जाता है।

इसी प्रकार एक और श्लोक उदाहरण के रूप में प्रस्तुत है, जिसमें श्री हर्ष ने कल्पना की ऊँची उड़ान से चन्द्रमा के कलंक का अद्भुत वर्णन किया है।

"यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जिम।

तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ।। (नैषध 1/8 से)

अर्थात् विजय यात्रा के लिये जब राजा नल की सेनायें चल रही थीं तब उनके चलने से जो धूलराशि समुद्र में जाकर गिरी, वही कीचड़ होकर समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा में कलंक के रूप में दिखाई पड़ती है।

6.7.3रस योजना–

नैषध में **अंङ्गीरस** शृङ्गार है, अन्य वीर, करुण, हास्य आदि रस अंगभूत हैं। श्रीहर्ष शृङ्गार कला के कवि हैं। शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का वर्णन किया है। सम्भोग पक्ष अत्यन्त व्यापक है। अन्य रसों का अल्प मात्रा में प्रयोग किया है। यद्यपि श्रीहर्ष में कालिदास जैसा रसपरिपाक नहीं है, परन्तु भावप्रवणता का प्राचुर्य है। श्रीहर्ष ने 18वें सर्ग में विवाह के पश्चात नल दमयन्ती के प्रथम मिलन का विस्तृत वर्णन किया है, जो इस प्रकार है–

वल्लभस्य भुजयोः स्मरोत्सवे, दित्सतोः प्रसभङ्कपालिकाम।

एककश्चिरमरोधि बालया, तल्पयन्त्रणनिरन्तरालया।।

इसी प्रकार करुण रस का और प्रसाद गुण का कितना सुन्दर प्रयोग बन पड़ा है–

मदेकपुत्रा जननी जरातुरा, नवप्रसूतिवर्रटा तपस्विनी।

गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दय न्नहो विधे त्वां करुणा रुणद्धि नो।।

अर्थात् हे भाग्य! मैं वृद्धा माता का एकमात्र पुत्र हूँ। बेचारी पत्नी के अभी नयी सन्तान उत्पन्न हुई है। मैं ही दोनों का देख–भाल करने वाला हूं। ऐसे में मुझको मारते हुए क्या तुझे दया नहीं आती?

6.7.4 महाकवि श्री हर्ष का अलङ्कार विधान –

श्रीहर्ष के काव्य में पद–पद पर अलङ्कार मिलते हैं। स्वाभाविक रूप से अलङ्कारों के प्रयोगों के कारण उनकी तुलना कालिदास से की जा सकती है। अलङ्कार में उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति कवि को अतिप्रिय है।

अतः पदे–पदे कल्पना की ऊँची उड़ानों का दर्शन होता है। अनुप्रास और यमक शब्दालङ्कार अनायास सर्वत्र प्राप्त है। उन्होंने मुख्यतया उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, श्लेष, विभावना, व्यतिरेक आदि अलङ्कारों का प्रयोग किया है। श्रीहर्ष पर वक्रोक्ति सम्प्रदाय का अधिक प्रभाव दिखता है। अत एव, उन्होंने बहुत से स्थलों पर बातों को साधारण ढंग से न कहकर व्ङग्यपूर्ण चमत्कारी प्रयोग किये हैं। एक उदाहरण दर्शनीय है,जिसमें कवि ने उत्प्रेक्षा अलङ्कार का प्रयोग करते हुए दमयन्ती के मुख निर्माण का वर्णन किया है–

हृत्सारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते, धृतगम्भीरखनीखनीलिम।।(नैषध 2–25)

अर्थात परमात्मा ने दमयन्ती के मुख के निर्माणार्थ चन्द्रमा का सार भाग निकाल लिया है। अतः उसमें छिद्र हो गया है और उसके मध्य से आकाश की नीलिमा दिखायी देती है। वस्तुतः चन्द्रमा में यह कलंक नहीं हैं, श्लेष अलंकार का एक अप्रतिम वर्णन श्री हर्ष ने नैषध में किया है। दमयन्ती की इस उक्ति में इसमें अनेक कथन के बीच तीन अर्थ प्रस्तुत है–

"इतीरिता पत्ररथेन तेन, ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी।
चेतो नलङ्.कामयते मदीयं, नान्यत्र कुत्रापि च साभिलाषम्।। (नैषध 3–67)

उक्त पद्य में दमयन्ती हंस से कहती है, जिसमें 'चेतो नलङकामयते' के तीन अर्थ हैं। **(1)**चेतः नलं कामयते मदीयम–अर्थात् मेरा हृदय नल को चाहता है। **(2)** चेतः न लंङ्का.म् अयते मदीयम्– अर्थात् मेरा चित्त धन का लोभी होकर लंका की ओर नहीं जाता है। **(3)** चेतः अनलं कामयते मदीयम्– अर्थात् नल के न मिलने पर मेरा चित्त अनल (अग्नि) को चाहता है, अर्थात् मैं सती हो जाउंगी। श्रीहर्ष में असाधारण प्रतिभा है। वे साधारण से साधारण प्रसंग के सूक्ष्म निरुपण में दक्ष हैं। श्रीहर्ष ने बहुत ही सूक्ष्म परीक्षण करके सरोवर वर्णन, दमयन्ती का नखशिख–वर्णन, उद्यान–वर्णन, चन्द्रोदय–वर्णन किया है। श्रीहर्ष छन्दः प्रयोग में भी दक्षता रखते हैं। छोटे–छोटे छन्दों के समान ही शार्दुलविक्रीडित, हरिणी, मदाक्रान्ता, स्त्रधरा आदि बड़े छन्दों के प्रयोग में भी उन्हें सफलता मिली है। श्रीहर्ष ने नैषध में 19 छन्दों का प्रयोग किया है। नैषध काव्य एक विशाल सुसज्जित प्रासाद के समान है, जिसमें सब वस्तुएं यथास्थान सुचारुरूप से सजाकर रखी गईं हैं, जिनके चुनाव तथा रमणीयता में सर्वत्र सुसंस्कृति तथा नागरिकता झलकती है। श्रीहर्ष अपने अलौकिक पाण्डित्य के लिये जितने प्रसिद्ध है उतने ही वे वर्णन चातुरी तथा रसमय उक्तियों के लिये भी प्रसिद्ध हैं।

6.7.5 "नैषधविदौषधम्"

श्रीहर्ष का पाण्डित्य अगाध है। उनकी काव्य शक्ति और दर्शन ज्ञान का जाज्वल्यमान उदाहरण तो उनकी अमरकृति नैषधीयचरित है। विभिन्न शास्त्रीय सिद्धान्तों के वर्णन क्लिष्ट और श्लिष्ट प्रयोग तथा बहुज्ञता के प्रकाशन ने काव्य के गागर में सागर भर दिया है। अत एव नैषध को विद्वानों के लिए औषधि या रसायन का माना गया है। संस्कृत साहित्य के समीक्षकों ने श्रीहर्ष में कवित्व तथा दार्शनिकता का, प्रतिभा तथा पाण्डित्य का मिला जुला रूप पाया है। नाना दर्शनों के विषय में उनका नाम चतुरस्र था। श्रीहर्ष ने नैषध में श्लेषयुक्त प्रयोगों के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, वैशेषिक, वेदान्त, जैन, बौद्ध आदि सभी दर्शनों के कठिन सिद्धान्तों का यथावसर पर प्रयोग किया है। वे अद्वैत वेदान्त के प्रौढ़ आचार्य हैं। श्रीहर्ष अपने आप अद्वैत वेदान्ती हैं जिस कारण यथावसर अन्य दर्शनों की आलोचना भी की है या उनकी खिल्ली उड़ायी है। आचार्य पाणिनि की सूत्र 'अपवर्गे तृतीया' पर कहते हैं कि पाणिनि की सूत्र के द्वारा यह व्यञ्जना करायी है कि मोक्ष साधन तो केवल तृतीया प्रकृति अर्थात स्त्री–पुरूष मिभन्न नपुंसक के लिये ही माना गया है। वैयाकरणों पर यह चुटकुला है–

"उभयी प्रकृतिः कामे सज्जेदिति मुनेर्मनः।
अपवर्गे तृतीयेति भणतः पाणिनेरपि।।"(नैषधीय चरितम् 17/70)

अर्थात् स्त्री तथा पुरूष दोनों काम में ही आसक्त रहा करें, अपवर्ग (मोक्ष) तो केवल तृतीय प्रकृति (नपुंसक) के ही लिए है।

न्याय दर्शन के मान्य आनन्द रहित मोक्ष के वर्णन पर व्यंग्य किया है कि न्याय शास्त्र का मोक्ष गोतम (पक्का बैल) का मत है कि वह मुक्त दशा में चेतन प्राणियों को विशेष गुण से हीन बतलाकर उनकी पत्थर के समान निर्जीव स्थिति को स्वीकार करते हैं–

मुक्तये यः शिलात्वाय, शास्त्रमूचे सचेतसाम्।
गोतमं तमवेक्ष्यैव यथा वित्थ तथैव सः।। (नैषध 17–75)

वैशेषिक दर्शन पर भी उन्होंने व्यङ्ग्य किया है। वैशेषिक दर्शनकार कणाद का दूसरा नाम उलूक है, अतः इस दर्शन को औलूक्य दर्शन कहते हैं। इसी पर व्यंग्य करते हुये श्रीहर्ष नैषधकार कहते हैं कि उलूक ही तमस्तत्व का परीक्षण कर सकता है और इसके संन्दर्भ में उसी के मत को स्वीकार करना चाहिये–

ध्वान्तस्य वामोरू विचाराणायां वैशेषिकं चाक मतं मतं मे।
आलूकमाहुः खलु दर्शनं तत् क्षमं तमस्तत्वनिरूपणाय।।

वेदान्त दर्शन के अनुसार मुक्ति में जीवात्मा के लय के साथ ब्रह्मैक्य होता है।

स्वं च ब्रह्म च संसारे, मुक्तौ तु ब्रह्म केवलम्।
इति स्वोच्छिति मुक्त्युक्तिवैदग्धी वेदवादिनाम्।।

श्रीहर्ष का अपना मत अद्वैत वेदान्त है और विविध दार्शनिक मतों का खण्डन करते हुए अन्त में अद्वैत वेदान्त को ही वे सर्वमान्य बताते हुये कहते हैं कि–

श्रद्धां दधे निषधराड् विमतौ मताना
मद्वैततत्त्व इव सत्यतरेऽपि लोकः।। (नैषध 13–36)

सरस्वती के स्वरूप का वर्णन करते हुए एक ही श्लोक में बौद्ध दर्शन के तीन सिद्धान्तों का उल्लेख किया है। शून्यवाद, विज्ञानवाद और सौत्रान्तिक। इसी प्रकार **'नास्ति जन्यजनकव्यतिभेदः (5–94)** में सांख्य के सत्कार्यवाद का योग दर्शन की संप्रज्ञात समाधि का वर्णन किया है, वे ज्योतिष के भी बड़े जानकार थे। श्लेष मूलक प्रयोगों ने इस दुरूहता को और अधिक जटिल बना दिया है। पंचनली वर्णन में श्लेष द्वारा इन्द्र, अग्नि, वरूण, यम और नल पांचों का एक साथ एक लोक में वर्णन किया है –

देवः पतिर्विदुषि नैषधराजगत्या
निर्णीयते न किमु न व्रियते भवव्या।
नायं नलः खलु तवातिमहानलाभो
यद्येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते।।

श्री हर्ष ने नैषध में बहुत से नये–नये प्रयोग किये जो आज भी बोल–चाल में प्रचलित हैं।

श्री हर्ष का काव्य जगत असीम है उनके शब्दों और अर्थों का भंडार कल्पना से परे हैं। श्री हर्ष का नैषध इनके गुण, गौरव और विद्वता का आकार है इसीलिए कहा गया है। **''नैषधंविद्वदौषधम्''**

6.8 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) 'नैषधंविद्वदौषधम्' की समीक्षा कीजिये।

(2) 'नौषधीयचरितम्' का प्रतिपाद्य विषय लिखिये।

(3) श्रीहर्ष की 'अलङ्कार' योजना पर सोदाहरण प्रकाश डालिये।

(4) श्रीहर्ष की इस योजना पर एक निबन्ध लिखिये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) महाकवि श्रीहर्ष के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिए।

(2) महाकवि श्रीहर्ष की काव्यशैली की विवेचना कीजिये।

इकाई –7

नाट्य साहित्य का उद्भव एवं विकास

इकाई की रूपरेखा

7.1 इकाई परिचय

7.2 उद्देश्य

7.3 नाट्य का स्वरूप

7.4 संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति

7.4.1 ऋक्संवाद सूक्तवाद

7.4.2 मृतात्माश्राद्धवाद

7.4.3 वीरपूजावाद

7.4.4 नृत्य पुत्तलिकावाद

7.4.5 छायानाटक सिद्धान्त

7.5 संस्कृत नाटकों का विकास

7.6 भरतमुनि

7.7 संस्कृत–नाटकों की विशेषतायें

7.8 बोध प्रश्न

7.1 इकाई परिचय

परास्नातक संस्कृत (MAST) के अन्तर्गत 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक प्रश्न पत्र (MAST-113) निर्धारित है। इसी प्रश्न–पत्र की सांतवीं इकाई ' नाट्य साहित्य का उद्भव एवं विकास' से सम्बन्धित है। इस इकाई में संस्कृत–नाट्य की उत्पत्ति एवं उसके विकास के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी –

1– संस्कृत नाट्य के स्वरूप से अवगत हो सकेंगे।

2– संस्कृत नाट्य की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

3– संस्कृत–नाटकों की विशेषताओं का बोध कर सकेंगे।

4– संस्कृत नाट्कों के विकासक्रम के बारे में जान सकेंगे।

7.3 नाट्य का स्वरूप

'नट' धातु से व्युत्पन्न शब्द 'नाट्य' रंगमंच पर अभिनय वाङ्मय का वाचक है। जिसका लक्षण भरतमुनि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
सोऽङ्गा.गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।

अर्थात् सुख और दुःख आदि से समन्वित लोकस्वभाव; जब आंगिक, वाचिक, सात्विक और आहार्य रूपी चतुर्विध अभिनयों के द्वारा रंगमंच पर अभिनीत किया जाये तो वह नाटक कहलाता है।

लोकजीवन के इस प्रस्तुतीकरण को भरतमुनि ने अनुकृति मानते हुये कहा कि, त्रिलोकी के भावों का अनुकीर्तन या सात द्वीपों के लोकजीवन का अनुकरण ही नाट्य है।

इसी प्रकार दसवीं शताब्दी के आचार्य धनंजय ने भी परिभाषा की है– 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'। अर्थात् अवस्थाओं का अनुकीर्तन नाट्य कहलाता है।

साहित्यशास्त्र में काव्य के दो भेद हैं।

(1) दृश्य–काव्य

(2) श्रव्य–काव्य

दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्।
दृश्यं तत्राभिनेयं तद्रूपारोपात्तु रुपकम्।।

श्रव्य–काव्य में आनन्दानुभूति कल्पना के मार्ग से प्राप्त होती है, परन्तु दृश्य–काव्य के द्वारा आनन्द की अनुभूति रंगमंच पर साकार होती है। इसी दृश्य–काव्य को रुपक के नाम से जाना जाता है।

सर्वप्रथम भरतमुनि (द्वितीय शताब्दी ई0पू0) ने अपने आकर ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में 36 अध्यायों में नाट्यशास्त्र का प्रामाणिकता के साथ विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। नाट्यशास्त्र का महत्त्व बताते हुये उनका कहना है कि विश्व का कोई ज्ञान, कला, शिल्प और कर्म नहीं है, जो नाट्यशास्त्र में न आता हो।

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म, नाट्येऽस्मिन यन्न दृश्यते।। (ना0 1–116)

इसीलिये महाकवि कालिदास ने भिन्न रुचिवाले लोगों के लिये नाटक को एक सामान्य मनोरंजन का साधन बताया है। इस प्रकार आनन्द के साथ चरित्र को उदार बनाना, जीवन के स्तर को उदात्त तथा आदर्श बनाना नाटक का जागरूक उद्देश्य है। देवताओं की प्रार्थना पर नाट्यवेद की रचना कर ब्रह्मा ने कहा कि यह नाट्य दुःखपीडित, थके हुए, शोक सन्तप्त लोगों को विश्राम देने वाला है तथा धर्म, यश, आयुवर्धक, हितकर,बुद्धिवर्धक एवं लोकोपदेश का जनक होगा–

दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्।

विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यिति।।

धर्म्यं यशस्यमासष्यं हित् बुद्धि विवर्धनम्।

लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।। (भरतमुनि नाट्यशास्त्र 1/114–115)

दृश्य–काव्य के लिये 'रूपक' शब्द का प्रयोग किया जाता है। रूपक दस प्रकार का होता है, जिसका महत्त्वपूर्ण प्रकार 'नाटक' है। रूपक के भेद इस प्रकार हैं–

(1) नाटक **(2)** प्रकरण **(3)** भाण **(4)** प्रहसन **(5)** डिम **(6)** व्यायोग **(7)** समवकार **(8)** वीथि **(9)** अंक **(10)** ईहामृग।

"नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोग समवकारडिमाः।

इहामृगाङ्कवीथ्यःप्रहसनमिति रूपकाणि दश।।" (सा0द0 6–3)

इसके अतिरिक्त 18 प्रकार अन्य रूपकों के भी नाम तथा लक्षण नाट्यशास्त्र के ग्रन्थों में मिलते हैं परन्तु इनके बारे में विस्तार से उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

नाटकों में श्रव्यकाव्यों की अपेक्षा दृश्य काव्य हृदयग्राहिता, मनोरंजनकता भावभिव्यंजकता और विषय की विविधता अधिक ग्राह्य होती है। इसीलिये कहा गया है 'काव्येषु 'नाटकंरम्यम्'।

7.4 संस्कृत–नाटकों की उत्पत्ति–

भारत में नाटक की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, इस पर अनेकानेक विद्वानों के अपने–अपने मत हैं, परन्तु उनमें से किसी का मत अभ्रान्त या विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपने–अपने मत दिये हैं। इस विषय पर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा पर्याप्त खोज किया गया है तथा अनके वादों का प्रवर्तन किया है। उन वादों में कुछ का सम्बन्ध धार्मिक भावनाओं से था तो कुछ का सम्बन्ध रीति–रिवाजों एवं लौकिक लीलाओं से था। अतः अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नाट्य–उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(I) परम्परागतवाद

(II) धार्मिकभावनावाद

(III) लौकिक लीलावाद

(I) परम्परागतवाद – इस वाद में केवल दैवीय उत्पत्ति के सिद्धान्त को रखा जा सकता है। इसके विषय में आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' में उल्लेख किया है।

(II) धार्मिकभावनावाद – इस वाद के अन्तर्गत निम्न वाद आते है।

(क) मृतक पूजावाद

(ख) मे–पोलवाद

(ग) कृष्णोपासक्तवाद

(III) लौकिक लीलावाद – इस सिद्धान्त के अन्तर्गत निम्न वादों को रखा जा सकता है। –

(क) संवाद सूक्तवाद

(ख) पुत्तलिका नृत्यवाद

(ग) स्वांगवाद

(घ) छाया नाटक

(ङ.) वीर पूजावाद

भारतीय नाट्यशास्त्र की उत्पत्ति की विवेचना करते हुये महामुनि भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में उल्लेख किया है कि, सभी देवताओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि हमें ऐसे मनोरंजन की वस्तु दीजिए जो दृश्य और श्रव्य दोनों ही विधा में हो, जिसको चारों वर्णों के लोग समान रूप से अपना सकें। उनकी प्रार्थना पर ब्रह्मा जी ने वेदों से नाट्य सामग्री लेकर पंचम वेद 'नाट्यशास्त्र' नामक नाट्यवेद की रचना की–

एवं संकल्प्य भगवान्सर्ववेदाननुस्मरन्।

नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्ग सम्भवम्।।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।

यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।। (नाट्यशास्त्र 1/16–17)

उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य (संवाद, कथोपकथन आदि), सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस तत्वों को लिया। अतः यह सिद्धान्त भारतीय मनीषा के अनुरूप है, जो प्रत्येक वस्तु की उप्तत्ति देवताओं से मानती है।

7.4.1 ऋकसंवाद सूक्तवाद –

नाट्योत्पत्ति के सन्दर्भ में अधिकांश पाश्चात्य विद्वानों ने ऋक् संवाद–सूक्तवाद का प्रवर्तन किया। इनमें प्रो0 मैक्समूलर, प्रो0 सिल्वां लेवी, प्रो0 फॉन श्रोएडर और डा0 हर्टेल प्रमुख हैं। संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति से सम्बन्धित इनके विचार भारतीय परम्परा से बहुत कुछ साम्य रखता है। इन सभी का कथन है कि ऋग्वेद में कई संवाद सूक्त हैं, जिनके आधार पर संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति हुई। ऋग्वेद में प्राप्त यम–यमी संवाद, विश्वामित्र–नदी संवाद, लोपामुद्रा–अगस्त्य संवाद इन्द्र–मरुत–संवाद,सरमा–पाणि–संवाद, – इन्द्राणी – बृषाकपि –संवाद, पुरूरवा–उर्वशी–संवाद आदि सूक्त हैं, जिनकी अभिनयात्मक व्याख्या की जा सकती है क्योंकि संवाद नाटक का महत्वपूर्ण तत्व है।

7.4.2 मृतात्मश्राद्ध–वाद

प्रो0 रिजवे ने यह मत प्रस्तुत किया है कि, जिस प्रकार यूरोप में मेन्पोल (MAYPOLE) का पर्व अभिनय–प्रधान ढंग से मनाया जाता है, उसी प्रकार प्राचीन समय में इन्द्र–ध्वज उत्सव पर अभिनयादि होते थे। वसन्तपंचमी होली आदि उत्सवों का आयोजन होने लगा। इस तरह के आयोजनों से भी भारतीय नाटकों का उद्भव हुआ।

7.4.3 वीरपूजा –

डा0 रिजवे नाटक की उत्पत्ति 'वीरपूजा' से सम्बद्ध मानते हैं। नाटक प्रणयन की प्रवत्ति तथा रुचि वीरगति को प्राप्त पुरुषों के प्रति आदर प्रदर्शित करने की इच्छा से जाग्रत हुई।

डा0 क्रीथ ने – नाटक की उत्पत्ति के विषय में एक नवीन मत की कल्पना की। उनके अनुसार प्राकृतिक परिवर्तनों की जनसाधारण के सामने मूर्तरूप से दिखलाने की अभिलाषा से ही नाटकों का जन्म हुआ।

7.4.4 नृत्य–पुत्तलिका वाद–

जर्मनी के प्रसिद्ध विद्वान डा0 पिशेल संस्कृत नाटक का उद्भव पुत्तलिकाओं के नृत्य तथा अभिनय से मानते हैं। 'सूत्रधार' एवं स्थापक शब्दों का नाटक में प्रयोग हुआ है। इन शब्दों का सम्बन्ध पुत्तलिका नृत्य से है। महाभारत, बालरामायण, कथासरित्सागर इत्यादि में दाऊमयी, पुत्तलिका आदि शब्दों का प्रयोग इन मत की पुष्टता प्रदान करते हैं।

7.4.5 छाया नाटक सिद्धान्त–

छाया नाटकों से रूपक की उत्पत्ति एवं विकास का समर्थन करने वाले प्रसिद्ध विद्वान डा0 ल्यूडर्स एवं सअेन कोनो हैं। अपने मत के समर्थन में वे महाभाष्य को प्रगाढ़ रूप से प्रस्तुत करते हैं। महाभाष्य में शौमिक छाया नाटकों की छाया मूर्तियों के व्याख्याकार थे पर दूतांगद नामक छाया नाटक अधिक प्राचीन नहीं है। इसे भी नाटकों का मूल कारण मानना न्यायोचित नहीं है।

उपर्युक्त सिद्धांतों के अतिरिक्त कुछ विद्वान लोकप्रिय स्वांग सिद्धांत तथा वैदिक अनुष्ठान सिद्धांत को भी रूपको की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। किन्तु विद्वान इस मत से भी पूर्णतः सहमत नहीं हैं। प्रचीन भारतीय परम्परा नाट्यवेद के रचयिता ब्रह्मा को इंगित करती है और लोकप्रचारक के रूप में भरतमुनि को निर्दिष्ट करती है। इन सब मतों के बाद भी किसी एक मत को सभी की सहमति नहीं प्राप्त हुई कि अमुक मत ही नाटक की उत्पत्ति का मूल कारण है।

छाया–नाटकवाद– प्रो0 ल्यूडर्स और स्टेन कोनो ने यह मत प्रस्तुत किया है कि छाया–नाटकों में जो छाया – चित्रों का प्रदर्शन किया जाता है, उससे नाटकों की उत्पत्ति हुई है।

संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति के विषय में जो वाद प्रस्तुत किये गये हैं, उनमें दो तथ्य विशेष अवधेय हैं। (1) नाअकीय तत्वो का होना (2) नोटकों का प्रारम्भिक, नाटकीय तत्वों के प्राचीनतम रूप पर विचार करने से ज्ञात होता है कि वैदि साहित्य में नाटक के प्रमुख सभी तत्व मिल जाते हैं। अतएव भरतमुनि ने नाट्यवेद को 'चतुर्वेदाङ्गसंभवम्' कहा है।

मुख्यतः नाटक में चार तत्वों की आवश्यकता है।

(1) पाठ्य कथावस्तु **(2)** संगीत **(3)** अभिनय **(4)** रज

ऋग्वेद– ऋग्वेद के संवादसूत्रों में कथा वस्तु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है।

यजुर्वेद– यजुर्वेद के कर्मकाण्ड में वाचिक और हस्तादि–संचालन के अभिप्राय पूर्णतया प्राप्त हैं।

सामवेद– सामवेद से ही संगीत की उत्पत्ति मानी जाती है। तो नाटकों में भी संगीत तत्व सामवेद से है।

अथर्ववेद– इस वेद में कामः (9–2,,19–52), कास्य इतुः (3–25) कामिनीमनोऽभिमुखीकरणम् (2–30), सपत्नीनाशमम् (6–35) आदि सूक्तों में श्रृंगार रस प्रधान है और कुछ सूक्तों में वीर रस का पता चलता है। भारतीय नाटकों में मुख्यतः श्रृंगार और वीर रस रहा है। इन रसों के लिये अथर्ववेद उत्तम आधार है। इस प्रकार नाटक के लिये आवश्यक चारो तत्व वेदों में उपलब्ध हैं।

इससे भरतमुनि का कथन उपयुक्त प्रतीत होता है कि भारतीय नाट्यशास्त्र ' चतुर्वेदांगसंभवम्' है।

7.5 संस्कृत नाटकों का विकास –

पाश्चात्य विद्वान भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि नाटकों का प्रारम्भ सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ। प्रो मैक्स मूलर, मिशेल आदि इसका समर्थन करते हैं। इससे पूर्व वैदिक काल से नाट्य के अस्तित्व का पता चलता है। सोम के विक्रय के समय यज्ञ में उपस्थित दर्शकों के मनोरंजन के लिये एक प्रकार का अभिन्य होता है। ऋग्वेद के संवाद सूक्त की नाटकीयता का द्योतन करते हैं। नाटक के लिये आवश्यक तत्व गीत, नृत्य, वाद्य सभी का अस्तित्व वैदिक युग में था। आदिकाव्य रामायण में नाट्य तत्वों का उल्लेख हुआ है। नट, नाटक, नर्तक आदि का भी उल्लेख है। नाटकों में रसों का पूरा प्रयोग है।

(क) "रसैः श्रृङ्गारकरुण हास्य रौद्र भयानकैः।

वीरादभि रसैर्युक्तं काव्यमेतद्गायताम्"।। (रामा0 1–4–8)

इसी प्रकार महाभारत में भी सूत्रधार, नट, नर्तक, आदि का उल्लेख प्राप्त होता है।

(क) इत्यब्रबीत सूत्रधार : सूतः पौराणिकस्तथा (महा01–51–15)

(ख) नाटका विविधाः काव्यः कथाख्यायिककारकाः (महा0 2–12–26)

पाणिनी ने अपने सूत्रों में दो नटसूत्रों अर्थात नाट्यशास्त्रों का उल्लेख किया है। इससे ज्ञात होता है कि, महर्षि पाणिनी से पूर्व नाट्यशास्त्र पूर्ण उन्नत स्वरूप में था।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने महाभाष्य में कंसवध और बलिबन्ध नाटकों का उल्लेख किया है।

रामायण और महाभारत से ज्ञात होता है कि उस समय नाटक प्रचलित हो चुके थे और उस समय से नाटकों का विकास का क्रम चल रहा था।

7.6 भरतमुनि –

भारतीय नाट्यशास्त्र के प्रधान आचार्य भरतमुनि माने जाते हैं। इन्होंने नाट्य सम्बन्धी श्लोकबद्ध ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' की रचना की है। इनका समय 200 ई0पू0 के लगभग माना जाता है। इससे पता चलता है कि , ई0पू0 तृतीय चतुर्थ शताब्दी में भारतीय नाट्यकला अपनी उन्नत अवस्था में थी।

इसी प्रकार बौद्ध, जैन ग्रन्थों एवं वात्सायन के कामसूत्र में भी नाटकों और नटों का उल्लेख मिलता है। संस्कृत नाटककारों में सबसे प्राचीन रचनाएं महाकवि भास की प्राप्ति होती है। इसके बाद शूद्रक, कालिदास, अश्वघोष, हर्ष, विशाखदत्त, दिंगनाग, भवभूति आदि आते हैं। इन नाटककारों के उच्चकाटि के नाटकों ने संस्कृत साहित्य को सम्यक श्री वृद्धि की है।

7.7 संस्कृत नाटकों की विशेषतायें –

संस्कृत–नाटकों की एक सुदीर्घ परम्परा चली आ रही है। जिनमें भास से लेकर कालिदास,शूद्रक, भवभूति, भट्ट नारायण, श्रीहर्ष आदि प्रमुख रूप से आते हैं। इन नाट्ककारों के नाट्कों, यथा– स्वप्नवासवदत्तम्, अभिज्ञान शकुन्तल, मृच्छकटिक, उत्तर रामचरित, वेणीसंहार, रत्नावली आदि का अध्ययन करने के पश्चात निम्न विशेषताएं हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं–

(1) संस्कृत–नाट्क प्रायः सुखान्त हुआ करते हैं। दुःखान्त न के बराबर हैं।

(2) संस्कृत–नाट्कों में कतिपय नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द समान रूप से पाये जाते हैं, यथा– नान्दी, प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि।

(3) संस्कृत–नाटकों का प्रधान उद्देश्य लोकाराधन रहा है।

(4) नाटकों की कथावस्तु या तो मौलिक है या भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थों से ली गई है।

(5) संस्कृत नाटकों में विदूषक की कल्पना अद्वितीय है। विदूषक राजा का मित्र या सखा हुआ करता है, दास नहीं।

(6) इनमें रङ्गमञ्च पर किसी का वध, विवाह, युद्ध आदि नहीं दिखाये जाते। इनका केवल प्रतीकात्मक मञ्चन हुआ करता है।

(7) इन नाटकों में युगबोध का सफलतापूर्वक चित्रण है।

(8) संस्कृत–नाटकों में अन्वितित्रय के अन्तर्गत आने वाली कार्यान्वित को छोड़कर स्थानान्विति एवं कालान्विति का अभाव देखा जाता है। देशकाल–सङ्कलन की ओर ध्यान नहीं दिया गया।

(9) सभी नाटक सहृदय सामाजिक को ध्यान में रखकर लिखे गये हैं एवं रस–परिपाक की ओर विशेषतः ध्यान केन्द्रित किया गया है।

(10) संस्कृत–नाटकों में संस्कृत तथा प्राकृत दोनों भाषाओं का मिश्रण प्राप्त होता है। प्रख्यात वंश में उत्पन्न राजा, पण्डित एवं अन्य विद्वान् संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हैं, जबकि स्त्रीपात्र एवं अन्य नीच पात्र प्राकृत बोलते हैं।

(11) नाटकों का विभाजन अङ्कों में हुआ करता है एवं अङ्क की समाप्ति पर सभी पात्र रङ्गमञ्च छोड़कर चले जाते हैं।

(12) कतिपय नाटक आकार में बड़े हुआ करते हैं।

(13) मानवीय जीवन के साथ–साथ प्राकृतिक जीवन का सफल चित्रण संस्कृत–नाटकों में उपलब्ध होता है।

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त नाट्यकला सम्बन्धी और भी अनके विषय हैं, जिनके आज वैश्विक जगत् में संस्कृत–नाटकों का महत्वपूर्ण स्थान है। अकेले अभिज्ञान शकुन्तल को जब जर्मन कवि गेटे ने पढ़ा तो सम्पूर्ण विश्व में संस्कृत–नाटकों को पढ़ने की उत्सुकता उत्पन्न कर दी। इन नाटक का अनेक भाषाअें में अनुवाद हो चुका है। इस अनके विशेषताओं से मुक्त नाट्य साहित्य कह उत्कृष्टता विद्यमान है।

7.8 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1– नाट्य के महत्व पर टिप्पणी लिखिये।

2– संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति से सम्बन्धित किसी एक सिद्धान्त पर प्रकाश डालिये।

3– नाट्य का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ बताते हुये नाटक में कितने तत्वों की आवश्यकता होती है, प्रकाश डालिये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1– नाट्य की उत्पत्ति के विविध सिद्धान्तों का विवेचना कीजिये।

2– नाट्य का स्वकम बताते हुये संस्कृत नाटकों की विशेषताओं को रेखाङ्कित कीजिए।

इकाई– 8

महाकवि भास

इकाई की रूपरेखा

8.1 इकाई –परिचय

8.2 उद्देश्य

8.3 महाकवि का जीवन–वृत्त

8.4 महाकवि भास का कर्तृत्व

8.5 महाकवि भास के रूपकों का विवेचन

- 8.5.1 स्वप्नवासवदत्तम्
- 8.5.2 प्रतिज्ञायौगन्धरायण
- 8.5.3 अविमारकम्
- 8.5.4 चारूदत्तम्
- 8.5.5 मध्यमव्यायोग
- 8.5.6 पाञ्चराप्तम्
- 8.5.7 दूतवाक्यम्
- 8.5.8 दूतघटोत्कच
- 8.5.9 कर्णभारम्
- 8.5.10 उरुभङ्गम्
- 8.5.11 प्रतिमनाटकम्
- 8.5.12 अभिषेकनाटकम्
- 8.5.13 बालचरितम्

8.6 महाकवि भास की शैली

8.6.1 भाषा सौष्ठव

8.6.2 भावाभिव्यक्ति

8.6.3 वर्णन कुशलता

8.6.4 अलङ्कार योजना

8.6.5 प्रकृति वर्णन

8.7 बोध प्रश्न

8.1 इकाई –परिचय –

परस्नातक संस्कृत (MAST) में 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक प्रश्न–पत्र (MAST-113) निर्धारित है। इस प्रश्न–पत्र की आठवीं इकाई 'महाकवि भास' शीर्षक से है। इस इकाई में महाकवि भास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से शिक्षार्थी –

1– महाकवि भास के व्यक्तित्व से अवगत हो सकेंगे।

2– महाकवि भास के नाटकों के विषय में बोध कर सकेंगे।

3– महाकवि भास की नाट्यगत विशेषताओं को जान सकेंगे।

4–महाकवि भास की नाट्यकला से परिचित हो सकेंगे।

5– संस्कृत के प्रारम्भिक नाट्यशैली से परिचित हो सकेंगे।

भास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार हैं यहां आप उनके जीवनवृत्त, कृतित्व उनकी रचनाओं एवं उनकी रचना शैली उनके अद्वितीय प्रतिभा का अध्ययन करेंगे।

8.3 महाकवि भास का व्यक्तित्व एवं स्थितिकाल

संस्कृत नाटकों के विकास–परम्परा की दृष्टि से भास संस्कृत नाट्य गगन के देदीप्यमान नक्षत्र हैं, जिनके प्रकाश से संस्कृत परवर्ती नाट्यकारों ने अपनी नाट्य प्रकृतियों को प्रकाशित किया है। चूँकि संस्कृत

नाट्यकृतियाँ भास से पूर्व अनुपलब्ध हैं, अतः संस्कृत नाट्य लेखन का प्रारम्भ भास से ही माना जा सकता है। बिना नाट्यशास्त्रीय प्रतिमानों के इन्होंने 13 नाट्यग्रन्थ लिखे, अतः संस्कृत नाट्ककारों में इनका अद्वितीय स्थान है।

संस्कृत नाट्य साहित्य में सर्वप्रथम नाटककारों में भास का नाम आता है परन्तु भास के समय के बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं ज्ञात होता है। भास संस्कृत साहित्य की एक प्रहेलिका हैं। कुछ उपलब्ध साहित्य के आधार पर कुछ जानकारी प्राप्त होती है। यह निर्विवाद सत्य है कि, भास कालिदास के पूर्ववर्ती हैं। कालिदास ने मालविकाग्निमित्रम् की प्रस्तावना में भास का नाम बहुत आदरपूर्वक आता है। **" प्रथितयशस्तं भास सौमिल्ल कवि पुत्रादीनां प्रबन्धानतिक्रम्य कथं वर्तमानस्य कवेः कालिदासस्य कृतौ बहुमानः।"–(मालविकाःग्निमित्रम् प्रस्तावना)**

इससे ज्ञात होता है कि, कालिदास के समय में भास की कीर्ति व्याप्त थी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भास का समय द्वितीय शताब्दी ई0पू0 के बाद का नहीं हो सकता है।

प्रो0 विन्सेन्ट ए0 स्मिथ के मतानुसार शूद्रक ने 220 ई0 में राजगद्दी ग्रहण की और 196 ई0पू0 में उसका स्वर्गवास हुआ। मृच्छकटिक का रचनाकाल तृतीय शताब्दी ई0पू0 के पूर्वार्ध के बाद ही रखा जा सकता है। कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में भास के निम्नलिखित श्लोक को आप्तवाक्य के रूप में उदधृत किया गया है।

"नवं शरावं सलिलैः सुपूर्णं, सुसंस्कृतं दर्भकृतोत्तरीयम्।
तत्तस्य मा भून्नरकं च गच्छेद्, यो भर्तृपिण्डस्य कृते न युध्यत्।।"

(कौटिल्य अर्थ0–10–3)

चन्द्रगुप्त मौर्य का समय 321 ई0पू0 गद्दी पर बैठने का है। इसलिये भास का समय कौटिल्य से कम से कम 50 वर्ष पूर्व मानना चाहिये। इस प्रकार भास का समय 370 ई0 पू0 के बाद का नहीं हो सकता है। इस आधार पर भास कौटिल्य के पहले हुए, ऐसा विद्वानों का मानना है।

भास के नाटकों में दो नाटक स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञा यौगन्धरायण ऐतिहासिक घटना पर निर्भर है। अतः भास का समय इससे भी निर्धारित किया जा सकता है।

(1) कौशाम्बी के राजा उदयन **(2)** उज्जयिनी के राजा प्रद्योत **(3)** मगध के राजा दर्शक; इन तीनों राजाओं का उल्लेख पुराणों, बौद्ध ग्रन्थों एवं जैन ग्रन्थों में भी मिलता है। भास ने तीनों को समकालीन चित्रित किया है। विन्सेन्ट ए स्मिथ के अनुसार, दर्शक और उसके उत्तराधिकारी का राज्यकाल 475 ई0पू0 से 450 ई0 पू0 है। इस तरह इन तीनों राजाओं का समय इसी के आसपास का रहा होगा। इस प्रकार भास का समय 450 ई0पू0 के पश्चात् और 370 ई0 पू0 से पूर्व सिद्ध होता है।

8.4 महाकवि भास का कर्तृत्व –

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भास ने कई रूपक लिखे थे। राजशेखर ने **भासनाटकचक्र** इस संज्ञा का प्रयोग भास की रचनाओं के लिये किया है। यह संज्ञा तभी सम्भव है, जब भास के कई नाटक मिलते हों। भास के नाम से टी. गणपति शास्त्री ने तेरह रूपक प्रकाशित किए। विषयवस्तु की दृष्टि से इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

(1) इनमें दो रूपक उद्‌यन कथा पर आधृत ऐतिहासिक है,पर आधारित है –

स्वप्नवासवदत्तम्, 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्'–

2) छह रूपक महाभारत की कथा को विषय बनाकर लिखे गए हैं–

'मध्यमव्यायोग', 'पञ्चरात्रम्', 'दूतवाक्यम्', 'दूतघटोत्कचम्', 'कर्णभारम्' तथा 'उरुभङ्गम्'।

3) दो रूपक रामायणाश्रित हैं– 'प्रतिमानाटकम्' तथा 'अभिषेकनाटकम्'।

4) कल्पना पर आधृत –'अविमारकम्' तथा 'चारुदत्तम्'

5) एक रूपक श्रीकृष्ण कथा पर आश्रित हैं –'बालचरितम्'।

वास्तव में इन रूपकों के कर्तृत्व को लेकर विद्वानों में मतभेद है। इस विषय में मुख्यरूप से दो ही वर्ग सामने आते हैं– एक जो इन सभी नाटकों का प्रणेता नाटककार भास को मानता है, जिसमें टी0 गणपति शास्त्री, एम आर काले, कीथ, याकोबी, स्टेनकोनो, लौकरि, थामस, हिवारगावरकर तथा शिवराम महादेव परांजपे आदि आते हैं। दूसरा वर्ग, जो इन बार्नेट के प्रणेता भास को नहीं मानता, जिनमें पं0 रामावतार शर्मा पी0वी0 काणे, रंगाचार्य रेड्‌डी, डा0 बार्नेट, पिशरोडी, सिल्वा लेवी, कप्पूस्वामी तथा भट्‌टनाथ शास्त्री आदि। एक तीसरा वर्ग है मध्यममार्गी मत के पोषकों का, जिनके अनुसार 'स्वप्नवासवदत्तम' तथा 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' के तो प्रणेता भास है लेकिन शेष नाटकों के नहीं। इस मत के मानने वाले में विन्टरनित्ज, डॉ0 एस0 के0 डे,सुरवण्णकर आदि आते हैं।

8.5 महाकवि भास के रूपकों का विवेचन –

लोककथा पर आधारित 4 रूपकों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

8.5.1 "स्वप्नवासवदत्तम्" निःसन्देह विश्व साहित्य में सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से एक है तथा भास के नाट्‌यकौशल का चूडान्त निर्देशन है। इस नाटक में छः अंक हैं। यह नाटक कौशाम्बी के राजा उदयन की कथा पर आधृत है। मन्त्री यौगन्धरायण का **"वासवदत्ता अग्नौ प्रविष्टा"** ''वासवदत्ता अग्नि में भस्म हो गई'' इस प्रवाद को प्रसारित कर उदयन का पद्‌मावती से विवाह करने तथा उदयन के अपहृत राज्य का वर्णन

है। चरित्र–चित्रण में भास ने अपनी नाट्यकला का अद्भुत चित्र खीचां है। शुद्ध तथा विशद प्रेम का ऐसा वर्णन किया है तथा नाटकीय घटनाओं की ऐसी मनोहारिणी संगति दिखलाई है कि स्वाभाविकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में यह नाटक संस्कृत–साहित्य का एक जाज्वल्यमान रत्न है।

''स्वप्नवासवदत्तम्'' का कथा संविधान कौतुक और नाटकीयता से भरपूर है। नाटकीय विडम्बनाओं और विसंगतियों के अभिप्राय का अत्यन्त मार्मिक प्रयोग भास ने नाटक में किया है। दर्शक तो प्रारम्भ में ही यागैन्धरायण की सारी कूटयोजना से अवगत हो जाते हैं और वे अवन्तिका के वेष में नाटक की नायिका वासवदत्ता को आद्यन्त पहचानते रहते हैं, पर पद्मावती नहीं जानती कि जिसे साधारण स्त्री बताकर धरोहर के रूप में उसे सौंपा जा रहा है वह कौशाम्बी की महारानी वासवदत्ता है। नाटक के चौथे और पाँचवें अङ्क तो नाट्यकला और भावजगत् की रचना में अद्वितीय ही हैं।

8.5.2 प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में चार अंक हैं। इसमें उदयन और वासवदत्ता के प्रेम और विवाह का वर्णन है। मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को राजा महासेन प्रद्योत के यहाँ से छुड़ाने तथा उनकी नीति–वैशिष्ट्य का वर्णन है। नाटकीय संविधान की दृष्टि से 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' विश्वनाट्यसाहित्य में अपने ढंग का अनोखा नाटक है। वीर रस की भी इस नाटक में विशिष्ट रूप में ही अवतारणा की गयी है। घटनाक्रम का बार–बार अप्रत्याशित रूप में नयी दिशा में मुड़ जाना दर्शकों में कौतूहल बनाये रखता है। यह नाट्क मन्त्री की ढृढ–प्रतिज्ञा एवं कुटिल नीति का श्रेष्ठ निदर्शन है।

8.5.3 अविमारकम् – इस नाटक में छह अङ्क है। इसमें राजकुमार अविमारक का राजा कुन्तिभोज की पुत्री राजकुमारी कुरङ्गी के साथ प्रणय विवाह वर्णित है। लोककथाओं के बहुविध अभिप्राय इसमें संक्रान्त हुए हैं। यह रूपक आद्यन्त विविध घटनाओं के जाल में बुना हुआ है। इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता है, जिसके साथ अद्भुत रस ने कथा में चमत्कार ला दिया है।

8.5.4 चारुदत्तम – यह चार अङ्कों का अपूर्ण नाटक है। शूद्रककृत 'मृच्छकटिक' के प्रथम चार अङ्कों के लगभग सभी संवादों और कथायोजना का इस रूपक से साम्य है। इसमें निर्धन किन्तु उदार ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रणय सम्बन्ध का वर्णन है। सम्भवतः यह नाटक माननीय भास की अन्तिम कृति हैं, जिसको वे पूर्ण नहीं कर सके।

8.5.5 मध्यमव्यायोग –महाकवि भास के अन्य छह रूपकों का यह एकांकी नाटक संक्षिप्त विवेचन है। मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और भीम को पुत्रदर्शन से आनन्दानुभूति तथा हिडिम्बा–मिलन का रसास्वाद इस नाटक में वर्णित है।

8.5.6 पञ्चरात्रम् – इसमें तीन अङ्क हैं। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन ने कहा कि यदि पाँच रात्रि में पाण्डव मिल जायेंगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्डवों का मिलना तथा आधा राज्य प्राप्त करना; इस नाटक में वर्णित है।

8.5.7 दूतवाक्यम्– यह एक एकांकी नाटक है। महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की सभा में जाना और विफल मनोरथ लौटने का इस नाटक में वर्णन है।

8.5.8 दूतघटोत्कच– यह एकांकी श्रेणी का एक अद्वितीय नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूत रूप से धृतराष्ट्र के पास भेजना, दुर्योधन द्वारा अपमान, अन्त में दुर्योधन का कथन है कि मैं अपने बाणों द्वारा उनका उत्तर दूंगा इत्यादि कथा इस नाटक में वर्णित है। घटोत्कच शान्ति और सन्धि का आवाहन करता है, पर कौरवपक्षीय लोग उसका उपहास करते हैं। युद्ध में अभिमन्यु के निधन के पश्चात् श्रीकृष्ण घटोत्कच को दूत बनाकर धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन के पास इसलिए भेजते हैं कि जो दशा पुत्र के मरने से पाण्डवों की हुई है,वहीं दशा तुम्हारी भी होगी। यह इतिवृत्त स्वयं नाट्ककार भास की मौलिक उद्भावना है।

8.5.9 कर्णभार–कर्णभार भी एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को दान में कवच और कुण्डल देने की कथा को आधार बनाकर यह नाटक लिखा गया है। यह भी महाभारत आधारित नाटक है।

8.5.10 उरुभङ्ग –यह एक एकांकी नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसके वध का वर्णन है। संस्कृत साहित्य में यह दुःखान्त नाटक है। उरुभङ्ग में करुण रस प्रधान है। दुर्योधन के चरित्र का अत्यन्त उज्जवल और प्रभावशाली रूप यहाँ अंकित है, जो अपनी मृत्यु के समय अपनी उदात्तता और मनुष्य की गरिमा को जिस मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है, वह भारतीय साहित्य में अप्रतिम ही है।

रामायण पर आश्रित दो रूपकों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है –

8.5.11 प्रतिमा नाट्कम् –प्रतिमा तथा अभिषेक इन दोनों नाटकों के द्वारा भास ने रामायण की सम्पूर्ण कथा को नाटकीय स्वरूप में विनयस्त किया है। इस नाटक में सात अंक हैं। राम का वनवास, सीताहरण, रावण वध और राम के राज्याभिषेक इस नाटक के वर्ण्य–विषय हैं। केकयदेश से लौटते समय अयोध्या के समीप देवकुल में प्रतिस्थापित की गयी दशरथ की प्रतिमा को देखकर ही भरत ने उनकी मृत्यु के विषय में अनुमान कर लिया था। इसी से इस नाटक का नाम 'प्रतिमाननाटकम्' है। इस नाटक से प्राचीन भारत में कला विषयक नवीन वृत्तान्तों का पता चलता है।

8.5.12 अभिषेक नाटकम् – इस नाटक में भी छः अंक हैं। इसमें रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की सम्पूर्ण कथा संक्षेप में वर्णित है। अन्त में रावण–वध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है। यह नाटक वीर रस से परिपूर्ण है।

कृष्ण कथा पर आश्रित रूपक का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

8.5.13 बालचरित– यह रूपक श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से कंसवध तक की कथा वर्णित है। इसमें पाँच अंक हैं। वीर और अद्भुत रसों की निरन्तर व्याप्ति तथा असाधारण पराक्रम के चित्रण के कारण भी यह नाटक उल्लेख्य है।

8.6 महाकवि भास की शैली –

भास ने अपने नाटकों में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। इनकी शैली मुख्यतः प्रसाद गुणयुक्त है, किन्तु वीररस के स्थलों पर वह ओज गुण से भी आप्लावित होती है। अतः उनकी शैली में प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों गुणों का समन्वय है। भास नाट्य साहित्य के इतिहास में गीर्वाणवाणी के एक अमर कवि हैं, जिनकी काव्यकला इस नवीनयुग में अपना प्रकृष्ट महत्त्व धारण करती है तथा काव्यरसिकों को अपने अलौकिक चमत्कार से मुक्त करती है। परकालीन नाटकों में प्राप्त होने वाली क्लिष्ट कल्पना, समासो की अधिकता, क्लिष्टता और अस्वाभाविकता आदि दोष उनके नाटकों में नहीं हैं। उनकी भाषा शैली पर रामायण का प्रभाव ज्यादा दिखायी देता है। भास भारतीय भावों के कवि हैं। उनमें भारतीयता के आदर्श पग–पग पर दिखाई देते हैं। राम ओर कृष्ण से सम्बद्ध नाटकों में प्रमुखता से दिखायी पड़ता है। उनकी रचनाओं में कहीं–कहीं कालिदास की भांति भावों की गम्भीरता और कल्पना का उत्कर्ष दिखायी देता है। अलंकारों के प्रयोग में भास ने बहुत संयम दिखाया है। प्रकृति वर्णन, मानवीय भावों का वर्णन अतीव सुन्दर ढंग से किया है। भास ने अपने नाटकों में 24 छन्दों का प्रयोग किया है।

8.6.1 भाषा सौष्ठव –

भास की भाषा बहुत ही सरल और सुबोध है। गुणों के सामञ्जस्य ने भास के नाटकों को लोकप्रिय बना दिया है। भास ने राम का पौरुष बडे ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है –

"अहो बलमहो वीर्यमहो सत्वमहो जवः।

राम इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत्।।" (प्रतिमा 5–14)

कृतज्ञता गुण की दुर्लभता का उन्होंने सहज चित्रण किया है।

गुणानां वा विशालानां सत्काराणां च नित्यशः।।

कर्तारः सुलभा लोके विज्ञातारस्तु दुर्लभाः।। (स्वप्न–4–9)

अर्थात् अच्छे कर्म करने वाले एवं दूसरों को सम्मान देने वाले लोग सुलभ हैं, किन्तु वे दुर्लभ हैं जो दूसरों के द्वारा किये गये उपकार या सम्मान का स्वागत करते हैं।

8.6.2 भावाभिव्यक्ति –

भास भावजगत् का मूर्तवत चित्रण करने में अत्यन्त पटु हैं। उनके नाटकों में भारतीय भावों और आदर्शों का सुन्दर समन्वय है। वह मानव हृदय के सच्चे पारखी थे। पितृभक्ति, मातृभक्ति, पतिव्रत, भ्रातृप्रेम, क्षमाशीलता और त्याग आदि गुणों का अनेक स्थानों पर वर्णन है। पातिव्रत धर्म का आदर्श उपस्थित करते हुये भास कहते हैं कि, स्त्रियों का पति ही उसका स्वामी है और प्रत्येक अवस्था में उन्हें उसका अनुकरण करना चाहिये।

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोषेऽपि तारा,

पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।

त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रम

व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः।। (प्रतिमा 1–25)

भास ने वात्सल्य प्रेम का एक अनुपम उदाहरण दशरथ का सीता के प्रति दर्शाया है कि दशरथ सीता की सुरक्षा के लिये चिन्तित हैं और वात्सल्य भाव के कारण नामोच्चारण में भी वे सीता का नाम राम और लक्ष्मण के बीच में रखना चाहते हैं, मित्र एवं शत्रु के व्यवहार में एक विशेष अन्तर हुआ करता है। शत्रु यदि प्रहार करता है, तो कष्टकर नहीं होता क्योंकि शत्रु का काम ही है प्रहार करना, किन्तु यदि मित्र प्रहार करता है तो वह मर्म को चीर डालता है। यही भाव को अभिव्यक्त करता हुआ भास का यह कथन कितना समीचीन है– **शरीरेऽरि : प्रहरति हृदये स्वजनस्तथाः**। जिससे वह सुरक्षित रहे–

अथ कः क्रमः? राजा रामो वैदेही लक्ष्मण इत्यभिधीयताम्।

राम लक्ष्मवणयोर्मध्ये तिष्ठत्वत्रापि मैथिली।

बहुदोषाण्यरण्यानि सनाथैषा भविष्यति।। (प्रतिमाननाटकम् 2/15)

8.6.3 वर्णन कुशलता–

भास ने अन्तः प्रकृति एवं बाह्य प्रकृति; दोनों का सुन्दर वर्णन किया है। वे रस वर्णन मनोभावों एवं नाटकीय तत्वों के वर्णन में बहुत कुशल हैं। प्रकृति वर्णन में प्रसाद गुण का बहुतायत से प्रयोग किया है। तीव्र गति से चलते हुये रथ का स्वाभाविक एवं सजीव चित्रण बड़े ही मनोरम ढंग से किया है–

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोदधूतं पतति पुरतो नानुपतति।। (प्रतिमानाटकम्–3–2)

अर्थात् वृक्ष भागते हुए से प्रतीत हो रहे हैं। रथ की गति अतितीव्र होने के कारण वृक्षों के बीच व्यवधान नष्ट हो रहा है। भंवरयुक्त नदी के तुल्य पृथ्वी रथ की धुरी में प्रविष्ट सी हो रही है। चक्रों के अरों का स्पष्ट दिखाई देना बन्द हो गया है। वेग के कारण पहियों का घेरा रुका सा प्रतीत हो रहा है। घोड़ों के खुरों द्वारा उठी धूल रथ के सामने तो उड़ती है, परन्तु रथ का पीछा नहीं कर पाती है। वर्तमान में यात्रा करते समय रेलगाड़ी के साथ भी ऐसा ही दृश्य उपस्थित होता है।

8.6.4 अलंकार योजना –

भास के नाटकों में अलङ्कारों की सुन्दर छटा दर्शनीय है। अलङ्कारों के प्रयोग में उपमा और स्वाभावोक्ति अलङ्कार पर विशेष अनुराग रहा है। उपमा का एक सुन्दर प्रयोग द्रष्टव्य है। राम–सीता और लक्ष्मण के वनगमन में उपमा का प्रयोग करते हुये वर्णन करते हैं कि – राम सूर्यवत है, अस्त हो गये है, सूर्य के पश्चात दिन के तुल्य लक्ष्मण भी चले गये हैं और सूर्य तथा दिन की समाप्ति पर सन्ध्या के तुल्य सीता भी चली गईं।

"सूर्य इव गतो रामः सूर्य दिवस इव लक्ष्मणोऽनुगतः।
सूर्य दिवसावसाने छायवे न दृश्यते सीता"।। (प्रतिमा –2–7)

भास ने वृत्त कल्पना में अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता का परिचय दिया है। भास संवाद तत्व के विशेष मर्मज्ञ हैं। उन्होंने अपने पाण्डित्य को इतने सरल और सुबोध ढंग से प्रस्तुत किया है कि पाठक को उसका भाव सरलता से हृदयंगम हो जाता है।

8.6.5 प्रकृति वर्णन –

भास की सबसे बड़ी विशेषता है वर्णन में स्वाभाविकता एवं अकृत्रिमता। नाटककार का प्रकृति वर्णन भी सजीव एवं स्वाभाविक रूप से बड़ा ही मनोरम बन पड़ा है। प्रकृति वर्णन का एक स्थल दृष्टव्य है, जिसमें कहा गया है कि सायंकाल का समय है। पक्षी अपने–अपने घोसलों की ओर जा चुके हैं। मुनियों द्वारा जलाशयों में स्नान कर लिया गया है। सायंकालिक अग्निहोत्र के लिये जलायी गयी अग्नि सुशोभित हो रही

है एवं उसका धुआँ आस–पास मुनिवन में फैल रहा है। सूर्य रथ से उतर गया है। उसने अपनी किरणें समेट ली हैं और रथ को लौटाकर शनैः शनैः अस्ताचल की ओर जा रहा है–

खगा वासोपेताः सलिलमवगाढो मुनिजनः

प्रदीप्तोऽग्नि र्भाति प्रविचरति धूमो मुनिवनम्।

परिभ्रष्टो दूराद् रविरपि च संक्षिप्तकिरणा

रथं व्यावर्त्यासो प्रविशिति शनैरस्तशिखरम्।। (स्वप्नवासवदत्तम् 1/16)

महाकवि भास की शैली मानवीय भावों या मनोवैज्ञानिक भावों का चित्र भी खींचने में सफल दिखायी देते हैं। अविमारक कुरङ्गी के प्रथम दर्शन को याद करता हुआ कहता है कि मैं आज भी उस सुन्दरी का स्मरण कर रहा हूं, जो हाथी की सूँड़ से छोड़े गये जलबिन्दुओं से भीग गयी थी और हाथी के डर से भयभीत, व्याकुल एवं चञ्चल दिखायी देती थी। मैं उसे आज भी उसी तरह याद कर रहा हूँ, जेसे कोई व्यक्ति किसी वस्तु को स्वप्न में देखकर जगने पर उसे याद करता है। अथवा जैसे मैं स्वयं अपने पूर्वजन्म को प्रतिदिन स्वप्न में प्राप्त कर जगने पर पुनः पूर्व जन्म को ही याद करता हूं।

अद्यापि हस्तिवार शीकरशीतलाङ्गी बालां भयाकुललोलविषादनेत्राम्।

स्वप्नेषु नित्यमुपलभ्य पुनर्विबोधे जातिस्मरः प्रथम जातिमिव स्मरामि्।।

8.7 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय

1– महाकवि भास के समय पर टिप्पणी लिखिये।

2– महाकवि भास के कितने नाट्क हैं, नाम का निर्देश कीजिये।

3–'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का परिचय प्रस्तुत कीजिये।

दीर्घ उत्तरीय

प्रश्न 1– महाकवि भास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 2– महाकवि की नाट्यकला का मूल्याङ्कन कीजिये।

इकाई – 9

महाकवि शूद्रक

इकाई की रूपरेखा

9.1 इकाई परिचय

9.2 उद्देश्य

9.3 महाकवि शूद्रक का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

9.4 मृच्छकटिक की संक्षिप्त कथावस्तु

9.5 महाकवि शूद्रक की नाट्यकला

9.6 महाकवि शूद्रक की नाट्यशैली

9.7 मृच्छकटिक में सामाजिक चित्रण

9.7.1 वर्ण एवं जाति –

9.7.2 स्त्रियों का स्थान –

9.7.3 नगर व्यवस्था –

9.7.4 अर्थव्यवस्था –

9.7.5 धार्मिक स्थिति –

9.7.6 विवाह –

9.7.7 कला कौशल –

9.8 बोध प्रश्न –

9.1 इकाई परिचय –

परास्नात्क संस्कृत (MAST) कार्यक्रम के पाठ्यक्रम में 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक प्रश्न–पत्र (MAST-113) निर्धारित है। इसी प्रश्प–पत्र की नवीं इकाई महाकवि शूद्रक से सम्बन्धित है। इस इकाई में महाकवि शूद्रक एवं उनकी नाट्य कृति 'मृच्छकटिक' के विषय में अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन से –

1– शिक्षार्थियों को महाकवि शूद्रक के व्यक्तित्व के विषय में जानकारी हो सकेगी।

2– शूद्रक के कर्तृत्व से अवगत हो सकेंगे।

3– शिक्षार्थियों को 'मृच्छकटिक' के विषय में बोध हो सकेगा।

4– शिक्षार्थी महाकवि शूद्रक की नाट्यकला से अवगत हो सकेंगे।

5–शिक्षार्थी तात्कालिक सामाजिक दशा से परिचित हो सकेंगे।

9..3 महाकवि शूद्रक का व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व –

संस्कृत के अन्य महाकवियों की भाँति शूद्रक का भी प्रामाणिक जीवन–वृत्त अप्राप्य है। प्रसिद्ध प्रकरण 'मृच्छकटिक' के रचयिता राजा शूद्रक को कुछ विद्वान् एक कल्पित व्यक्ति मानते हैं। शूद्रक के व्यक्तित्व पर अभी तक प्रामाणिक रूप से कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इस विषय में ऐतिहासिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। संस्कृत साहित्य में शूद्रक के विषय में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। 'कादम्बरी', 'कथासरित्सागर', 'वेतालपंचविंशतिका', 'हर्षचरित', 'राजतरंगिणी,' 'स्कन्दपुराण' आदि ग्रन्थों में शूद्रक का उल्लेख प्राप्त होता है। 'मृच्छकटिक' की प्रस्तावना में शूद्रक का परिचय दो श्लोकों में दिया गया है। उसमें उनकी मृत्यु का भी वर्णन है, किन्तु किसी भी कवि का अपनी ही रचना में स्वयं अपनी मृत्यु का उल्लेख करना असम्भव है।

अतः प्रस्तावना में ये श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। इन श्लोकों से ज्ञात होता है कि शूद्रक सुन्दर आकृति वाले महापराक्रमी, ब्राह्मणों में श्रेष्ठ कवि, वेदों के ज्ञाता, गणित, संगीत, हस्तविद्या के विशेषज्ञ थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था और वे शतायु हुये। कीथ का मत है कि किसी अज्ञात कवि– रौमिल या सौंमिल्ल या दोनों ने भास के 'चारुदत्त' नाटक को परिवर्धित कर उसे 'मृच्छकटिक' का नाम दिया और प्रसिद्ध राजा शूद्रक के नाम से उसे प्रचारित किया। मृच्छकटिक के रचनाकाल का विचार करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। कालिदास के नाटकों में **'मृच्छकटिक'** की कुछ छाप दृष्टिगोचर होती है। कालिदास का समय लगभग 100 ई0पू0 है। अतः मृच्छकटिक की रचना इससे कुछ पूर्व अवश्य हो चुकी होगी। कालिदास के अनुसार **'मृच्छकटिक'** के रचयिता रौमिल और सौमिल्ल रहे होंगे, क्योंकि इन्हीं का उल्लेख उन्होंने अपने **'मालविकाग्निमित्रम्'** में किया है। अतः मृच्छकटिक कालिदास के पूर्व की रचना है। मृच्छकटिक में आठ प्रकार की प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है। अतः मृच्छकटिक की रचना इन ग्रन्थों से पहले ही हुई होगी। **'मृच्छकटिक'** भास के ''चारुदत्त'' नाटक का परिवर्धित रूप जान पड़ता है। अतः इसकी रचना भास के बाद अर्थात् तृतीय शताब्दी ई0पू0 में हुई होगी।

मृच्छकटिक का कर्त्ता दाक्षिणात्य (महाराष्ट्र) का निवासी है, ऐसा प्रतीत होता है। उज्जयिनी में दक्षिण के लोग भी राज्य के पदों पर प्रतिष्ठित रहा करते थे। चन्दनक ऐसा ही एक पदाधिकारी था। इसी हेतु मृच्छकटिक के वर्णनों में दक्षिण भारत में प्रचलित शब्दों का प्रयोग तथा प्रथाओं का वर्णन मिलता है। दण्डी के कथन से भी शूद्रक की राजधानी उज्जयिनी ही प्रकट होती है। मृच्छकटिक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि, उन्हें नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, राजनीति का उच्चकोटि का ज्ञान था। वे वर्ण व्यवस्था को मानते थे। भरतवाक्य से ज्ञात होता है कि, वे गाय और ब्राह्मणों का महत्त्व चाहते थे।

9.4 मृच्छकटिक की संक्षिप्त कथावस्तु

महाकवि शूद्रक के द्वारा विरचित 'मृच्छकटिक' 10 अंकों का एक प्रकरण है। इस प्रकरण में नायक चारुदत्त तथा गणिका वसन्तसेना के प्रेम की कथा विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों के साथ वर्णित हुई है। तत्कालीन समाज के चित्रण में कवि की लेखनी प्रत्येक मर्मों का स्पर्श करती हुई सी दिखती है। भारतीय नाट्य परम्परा के अनुसार मृच्छकटिक नामक प्रकरण का आरम्भ नान्दीपाठ के माध्यम से होता है। कवि दो श्लोकों के माध्यम से सुधी सामाजिकों की मंगल कामना करता है। महाकवि शूद्रक ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से इस ग्रन्थ की कथावस्तु का संक्षिप्त विवरण प्रस्तावना में ही सूत्रधार के मुख से प्रस्तुत कर दिया है।

अध्येताओं को मृच्छकटिक की कथावस्तु का ज्ञान सुगमतया प्राप्त हो, इस निमित्त अंकों की संक्षिप्त कथावस्तु निम्नवत् है–

मृच्छकटिक – यह दस अंकों का नाटक है। इसमें दो मुख्य कथानक गुँथे हुए है – एक चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रेम का और दूसरा पालक और गोपालदारक आर्यक के राजनैतिक संघर्ष का। **प्रथम अंक** में वसन्तसेना शकार से अपने बचाव के लिए चारुदत्त के घर में शरण लेती है तथा वापस जाते हुए अपने आभूषणों को चारुदत्त के घर में रख देती है। **दूसरे अंक** में एक ओर चारुदत्त के प्रेम में अनुरक्त वसन्तसेना का दृश्य है तो दूसरी ओर द्यूतकर तथा माथुर द्वारा पीछा किये जाते हुए चारुदत्त के भृत्य रह चुके संवाहक का दृश्य। वसन्तसेना जुयें में हार कर उसके घर में शरण लेने वाले संवाहक के लिए माथुर और द्यूतकर को रुपयों के बदले अपना आभूषण देकर छुडाती है। इसी अंक में एक भिक्षु की हाथी से रक्षा करने के निमित्त कर्णपूरक नामक चेट को चारुदत्त द्वारा पुरस्कार स्वरूप दुशाला भेंट किये जाने का समाचार भी वसन्तसेना को प्राप्त होता है। **तीसरे अंक** में मदनिका का प्रेमी शर्विलक चारुदत्त के घर में सेंध लगाकर वसन्तसेना के आभूषण चुरा लेता है। आभूषणों के बदले में चारुदत्त की पत्नी धूता अपनी रत्नमाला वसन्तसेना के घर में भिजवा देती है। **चौथे अंक** में शर्विलक मदनिका के कहने पर चारुदत्त का दूत बनकर चुराये हुए गहनों को वसन्तसेना को लौटा देता है। वसन्तसेना सब वृत्तान्त जानकर मदनिका को उसकी वधू बनाकर उसके साथ भेज देती है। घर जाते समय रास्ते में शर्विलक को पालक द्वारा गोपालदारक आर्यक के कैद किये जाने का समाचार मिलता है तो वह मदनिका को सार्थवाह रेभिल के घर भेजकर आर्यक को छुड़ाने के लिए चल देता है। इसी अंक में विदूषक धूता की रत्नमाला वसन्तसेना को दे

आता है। **पंचम अंक** में वसन्तसेना चारुदत्त के घर पहुँचती है तथा रात को वहीं रहती है। **षष्ठ अंक** का नाम 'प्रवहण विपर्यय' है। इसमें वसन्तसेना भूलवश शकार की गाड़ी में बैठ जाती है और आर्यक चारुदत्त की गाड़ी मे बैठ जाता है। **सप्तम अंक** का नाम 'आर्यकापहरण' है। इसमें चारुदत्त आर्यक के बन्धन कटवाकर उसे अभयदान प्रदान करता है। **अष्टम अंक** का नाम 'वसन्तसेनामोटन' है। इसमें शकार का प्रणय निवेदन अस्वीकार करने पर वह वसन्तसेना का गला घोंट देता है। **नवम अंक** का नाम 'व्यवहार' है। शकार चारुदत्त पर वसन्तसेना को मारने का अभियोग लगाता है। **'सहांर' नामक दशम अंक** में उसी समय राज्य परिवर्तन होता है। वसन्तसेना के साथ चारुदत्त का विवाह सम्पन्न होता है। इसी के अन्तिम मिलन के साथ यह रुपक समाप्त होता है।

9.5 महाकवि शूद्रक की नाट्यकला –

कला की दृष्टि से शूद्रक का 'मृच्छकटिक' संस्कृत–नाटक–साहित्य की एक अद्भुत रचना है। महाकवि शूद्रक ने पहली बार मध्यम श्रेणी के लोगों को अपने नाटक का पात्र बनाया है। इसमें जनजीवन का वास्तविक चित्रण मिलता है। जनजीवन का जितना विस्तृत और वास्तविक चित्रण **'मृच्छकटिक'** में मिलता है उतना अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है।

'मृच्छकटिक' 10 रूपकों में से एक 'प्रकरण' रूपक है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में जो आवश्यक निर्देश दिया है, उसका इसमें पालन हुआ है। नाटक की कथावस्तु काल्पनिक है। इसमें प्रकरण के लिये निर्धारित 10 अंक हैं। इसका अंगीरस, शृङ्गार, हास्य, करुण, भय आदि रसों का भी प्रयोग हुआ है।

इसमें नायक राजा न होकर एक निर्धन ब्राह्मण है तथा नायिका एक विदुषी गणिका है। इसमें मध्यमवर्गीय पात्रों की सामाजिक स्थिति का वास्तविक चित्रण है। विट, शकार, सार्थवाह, द्यूतकार आदि के दैनिक कार्यों का उल्लेख है। इस नाटक में नाटकीयता के साथ काव्य का भी समन्वय है। इसकी कथा आदर्शवादी न होकर यर्थाथवादी है। इस नाटक में सभी कोटि के पात्र लिये गये हैं। निम्नकोटि के पात्रों की संख्या अधिक है। चरित्र चित्रण में मानवतावादी दृष्टिकोण है। मानव सुलभ सद्गुणों और दुर्गुणों का स्वाभाविक चित्रण किया गया है। पात्र सार्वभौम हैं। वे किसी भी देशकाल और समाज में सरलता से प्राप्त हैं।

'मृच्छकटिक' की शैली बहुत ही सरल और अकृत्रिमता लिये हुये है। भाषा का प्रयोग बहुत सरल ढंग से हुआ है और समासों का अभाव है। इन्होंने वैदर्भी रीति को अपनाया है। कहीं–कहीं गौणी का भी आश्रय लिया है। शूद्रक ने बड़े–बड़े शब्दों का प्रयोग न करके छोटे वर्णनों को महत्त्व दिया है। संवाद सजीव हैं तथा लम्बे–लम्बे कथोपकथन सामान्तया नहीं पाये जाते। संवादों में हास्य–व्यंग्य का पुट है। संवादों में प्रसंग के अनुरूप भाषा का चयन किया गया है। इसमें यथार्थ जीवन का मूल्यांकन किया गया है। चरित्र की उदात्तता पर बल दिया गया है। राजनीति में जनतांत्रिक तत्त्वों के महत्त्व का प्रतिपादन है।

'मृच्छकटिक' में तत्कालीन समाज का सच्चा चित्रण प्राप्त होता है। केवल राज वर्ग या भ्रान्त वर्ग ही नहीं अपितु सामान्य समाज को शूद्रक ने बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है।

9.6 महाकवि शूद्रक की नाट्य शैली –

शूद्रक एक सफल नाटककार होने के साथ ही एक कुशल कवि भी हैं। उनका प्रयत्न रहा है कि सभी नाट्कीय गुण 'मृच्छकटिक' में समाविष्ट हों, साथ ही कवित्व का परचिय भी प्राप्त हो। शूद्रक की शैली बहुत ही सरल है। बड़े–बड़े छन्दों का बहुत कम प्रयोग किया है। नये–नये भाव स्थान–स्थान पर मिलते हैं। इसमें मुख्य रस शृङ्गार है। रस की विभिन्न सामग्री से परिपुष्ट कर श्रृंगार को सुन्दर रूप कवि ने दिखालाया है। शूद्रक वैदर्भी रीति के कवि हैं। कहीं–कहीं गौणी रीति को भी अपनाया है। इनकी भाषा में सरलता, स्पष्टता और सुबोधता है। प्रसाद गुण युक्त पद रचना नाटक में सजीवता ले आती है। सरल अभिव्यञजना पर भी पूर्ण अधिकार है। बादलों का उन्होंने यहां पर कितना सजीव वर्णन किया है–

उन्नमति नमति वर्षति गर्जति मेघः करोति सतिमिरौघम्।
प्रथमश्रीरिव पुरुषः करोति रुपाण्यनेकानि।। ('मृच्छकटिक'–5,26)

बादल नवीन धनाड्य व्यक्ति की तरह नित नये–नये रूप दिखा रहा है। कभी ऊपर उठता है, कभी नीचे झुकता है, कभी बरसता है, कभी गरजता है और कभी अंधकार फैलाता है।

इसी प्रकार न्यायालय का सजीव चित्रण कर कवि ने अपने राज–कार्य विदग्धता का परिचय दिया है। न्यायालय में व्याप्त भ्रष्टाचार और अनीति की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुये नाट्यकार कहता है –

चिन्तासक्तनिमग्नमन्त्रि सलिलं दूतोर्मिशङ्.खाकुलं
पर्यन्तस्थितचारन क्रमकरं नागाश्वहिंसाश्रयम्।
नानावशककङ्कपक्षिरुचिरं कायस्थसर्पास्पदं।
नीतिक्षुण्णतटं च राजकरणं हिस्त्रैः समुद्रायते।। (मृच्छ–9–14)

अर्थात् कचहरी समुद्र के समान है, जिसमें चिन्तायुक्त मन्त्री जल हैं, दूतगण तरंग और शंख हैं, चारों ओर बैठे हुये गुप्तचर घडियाल और मगर हैं, हाथी–घोड़े हिंसक जलजन्तु हैं, विविध वादी–प्रतिवादी कंक पक्षी हैं,पेशकार कायस्थ सर्प हैं और नीति ही टूटा हुआ किनारा है।

शूद्रक का मनोवैज्ञानिक निरीक्षण परम उच्च कोटि का है। उन्होंने स्त्री स्वभाव के दोनों उच्च और नीच पक्षों का सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण किया है। वह स्त्री को एक ओर मार्गदर्शक तथा ज्ञान की ज्योति बताते हैं तो दूसरी ओर उसे धन लोभी अविश्वसनीय और अत्यन्त स्वार्थी बताते हैं। स्त्रीस्वभाव के बारे में बताते हैं

और कहते हैं कि वे जन्म से चतुर होती हैं। मनुष्य विद्या पढ़कर चतुर होता है, परन्तु स्त्री जन्म से ही चतुर होती है।

स्त्रियो हि नाम खल्वेता निसर्गादेव पण्डिताः।
पुरुषाणां तु पाण्डित्यं शास्त्रैरेवोपदिश्यते।। (मृच्छ – 4–19)

मृच्छकटिक का प्रमुख रस श‍ृङ्गार रस है। कवि ने श‍ृङ्गार के अनेक चित्र खींचे हैं। कवि ने सम्भोग श‍ृङ्गार का कितना सुन्दर चित्र प्रसतुत किया है –

धन्यानि तेषां खलु श्री वितानि ये कामिनीनां गृहमागतानाम्।
आद्राणि मेघोदकशीतलानि गात्राणि गात्रेषु परिष्वजन्ति।।

अर्थात् उन प्रेमियों का जीवन धन्य है, जो घरपर आयी हुई प्रेमिकाओं के वर्षा के जल से भीगे हुये शरीर को अपने शरीर से भेंट कर आलिङ्गन करते हैं।

विट की उक्ति से कवि वसन्तसेना की श‍ृङ्गारोद्दीपक ललित गति का कितनी सुन्दरता एवं सरसता के साथ आते हैं–

किं यासि बालकदलीव विकम्पमाना रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती।
रक्तोत्पलप्रकराकुड्मलमुत्सृजन्ती टङ्कैर्मनः शिलगुहेव विदार्यमाणा।।

अर्थात् हे वसन्तसेने! पवन से फहराते हुए चञ्चल रक्त उत्तरीय को धारण करती हुई, काँपती हुई सरस कोमल कदली के समान तुम तेजी से क्यों जा रही हो? जब तुम चलती हो तो ऐसा पता चलता है जेसे अपने पैरों से राजमार्ग के कुट्टिम पर लाल कमलों के समूह को छोड़ती जा रही हो, और तुम्हारी रक्तिम शोभा जैसे मनःशिल की गुहा हो, जिसे छेनी से टाँका जा रहा हो और उससे लालरंग का मनःशिल उड़ उड़कर इधर–उघर विखर रहा हो।

कवि ने ऐसे अनेकानेक प्रसंगों का वर्णन किया है। जुयें का वर्णन करते हुये कहते हैं कि जुआ एक ऐसा दुर्व्यसन है जिसके खेलने का अधिकारी वही मनुष्य है जिसे घोर कष्ट और घोर अपमान सहने का अभ्यास हो। शूद्रक ने गद्य और पद्य दोनों के लिये सरल शैली का प्रयोग किया है। उके संवाद सरल और संक्षिप्त हैं। उनमें वाग्विदग्धता तथा व्यंग्य का दर्शन होता है। मृच्दकटिकम् नाटक का प्रत्येक पात्र अपना निजी व्यक्तित्व लेकर सामने आता है। इसमें कहीं पर व्यवहारिक आदर्श तो कहीं पर जीवन की शिक्षायें कहीं पर काव्य सौन्दर्य विद्यमान है। इसकी भाषा शैली अत्यन्त सरल और रोचक है। पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। विविध प्राकृत भाषाओं के सफल प्रयोग की दृष्टि से तो 'मृच्छकटिकम्' अद्वितीय ग्रन्थ है।

9.7 मृच्छकटिक में सामाजिक चित्रण –

सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण रुपक है। इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग का यथार्थ स्वरुप वर्णित है। मृच्छकटिक का कथानक राजभवन के संकुचित वृत्त के बाहर सामान्यजनों के संकुल राजमार्ग से सम्बद्ध है, इसमें समाज के कई स्तरों का चित्रण किया गया है। शूद्रक ने विविध वर्गों के पात्रों को अपने इस ग्रन्थ में स्थान देकर सर्वांगपूर्ण सामाजिक स्थिति का निरुपण किया है। जिसमें चारों वर्णों की स्थिति, स्त्रियों का समाज में स्थान, राजनैतिक दुरवस्था, न्यायालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा दण्डविधान की कठोरता इत्यादि का चित्रण मिलता है।

9.7.1 वर्ण एवं जाति –

इस रुपक से ज्ञात होता है कि, उस समय वर्ण व्यवस्था विद्यमान थी, व्यवसायों के आधार पर कुछ जातियॉ भी थी। ब्राह्मणों का कार्य पठन–पाठन, यजन–याजन और दान–पुण्य परन्तु उपर्युक्त कर्म अनिवार्य नहीं थे, लेकिन ब्राह्मणों का स्थान उच्च था। उन्हें आदरणीय माना जाता था। ब्राह्मण भी वैश्य का कार्य करते थे। वे कर्मानुसार वैश्य या ब्राह्मण माने जाते थे। चारुदत्त जन्मना ब्राह्मण होते हुए भी वैश्य है। शार्विलक ब्राह्मण होते हुए भी चोरी का कार्य करता है। न्यायालयों में कायस्थ लोग लेखन कार्य करते थे, नवम् अंक में न्यायालय को कायस्थ रुपी सर्पों से भरा हुआ स्थान कहा गया है। वहीं दण्ड के बाद शूली पर चढ़ाने का कार्य चाण्डाल लोग करते थे।

9.7.2 स्त्रियों का स्थान –

समाज में स्त्रियों का आदरपूर्ण स्थान था। कुलवधू का पद उच्चकोटि का था। उनके दो वर्ग थे– कुलवधू और गणिका। गणिकाओं में भी दो वर्ग था– वेश्या और गणिका। वेश्यायें अपने रुप–यौवन द्वारा धनोपार्जन करती थीं तथा गणिकाएं नृत्य–संगीत आदि को अपनी आजीविका का साधन मानती थीं। बसन्तसेना गणिका कोटि में है। गणिका भी विवाह करके कुलवधू हो सकती हैं। समाज में विवाह का स्थान महत्वपूर्ण था और स्त्रियां बहूमूल्य आभूषण पहनती थीं। राजा लोग कुछ रखेलियां भी रखते थे, शकार एक रखेली का ही पुत्र था।

9.7.3 नगर व्यवस्था –

मृच्छकटिक के युग में नगरों में जातियों के आधार पर मुहल्ले बसे हुए थे। चारुदत्त सेठों के मुहल्ले में रहता था (सखलु श्रेष्ठिचत्वरे निवसति)। नगर के मुख्य द्वार रात में बन्द हो जाते थे। पहरेदार नगर में घूम–घूम कर पहरा देते थे। आवागमन के लिए बैलगाड़ियों का प्रयोग होता था, पुरुष घोड़े–हाथी का प्रयोग करते थे।

9.7.4 अर्थव्यवस्था –

उज्जयिनी नगरी तथा गणिका के प्रासाद के यथार्थ वर्णन से उस युग की आर्थिक समृद्धि का परिचय मिलता है। वसन्तसेना और चारुदत्त का वैभव उस समय की उन्नत आर्थिक स्थिति को सूचित करता है। धनी बच्चे सोने की गाड़ी से खेलते थे। द्यूतक्रीडा में धन का प्रचुर आदान–प्रदान होता था। द्यूत में हार जाने पर ऋण चुकाना आवश्यक था। इसमें राजपुरुषों की भी सहायता ली जाती थी।

9.7.5 धार्मिक स्थिति –

वैदिक धर्म का सामान्य प्रसार था। अनेक प्रकार के यज्ञपूजन, बलि, तर्पण आदि कर्म किये जाते थे। लोग व्रत–उपवास करते थे एवं ब्राह्मणों को दान देते थे। निम्न वर्ग के लोग भी धार्मिक कार्य करते थे। उस समय बौद्ध धर्म का भी प्रचार था। उस समय अनेक बौद्ध विहार थे। उनके कुलपति होते थे। उस समय वैदिक धर्म राजधर्म था और उसका ही सर्वत्र प्रचार था।

9.7.6 विवाह –

तत्कालीन समाज का प्रभाव विवाह संस्कारों पर भी था, उस काल में बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी। ब्राह्मण के लिए असवर्ण स्त्री से विवाह करना निषिद्ध नहीं था। चारुदत्त ने गणिका वसन्तसेना से और शार्विलक ने गणिका की दासी मदनिका से विवाह किया था। पति की मृत्यु के बाद सती–प्रथा प्रचलित थी। पर्दा–प्रथा का प्रचार नहीं था क्योंकि धूता सबके समक्ष बिना परदे के ही आती है। कुछ सम्पन्न लोग रखैल स्त्री भी रखते थे। शकार की बहन राजा पालक की रखैल थी।

9.7.7 कला कौशल –

कलाएं उस समय उन्नत अवस्था में थी ऐसा ज्ञात होता है। संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला संवाहन (शरीर दबाना) और चौर्यकला आदि का वर्णन मृच्छकटिक में हैं। चोरी भी वैज्ञानिक कार्य बन गया था इसके शास्त्र और नियम थे। तृतीय अंक में चौर्यकला का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त बांसुरी, मृदंग, प्रणव, अन्य वाद्ययंत्रों की चर्चा इस रुपक में है।

9.7.8 राजनीतिक स्थिति –

उस समय जब मृच्छकटिक की रचना हुई तब राजनैतिक व्यवस्था बहुत बिगड़ी हुई थी। देश छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त था। राजा दुर्व्यसनी, विलासी, अयोग्य और अनुदार थे। न्यायाधीश को भी राजा जब चाहे निकाल सकता था, राजा स्वेच्छाचारी होता था। नवम् अंक में शकार न्यायाधीश को धमकी देता है, कि यदि मेरा अभियोग नहीं सुना गया तो राजा से कहकर हटवा दूंगा। राजा न्यायालय के निर्णय को निरस्त कर सकता था। राजा के सम्बन्धी लोग राजकार्य में हस्तक्षेप करते थे। ऐसी तमाम कुव्यवस्था से सिंहासन का अधिकारी क्षणभर में बदल जाता था। मृच्छकटिक के आधार पर तत्कालीन समाज का चित्रण किया गया है।

9.8 बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

(1) मृच्छकटिक क्या है।

(क) रूपक **(ख)** भाण **(ग)** प्रहसन **(घ)** प्रकरण

उत्तर – प्रकरण

(2) मृच्छकटिक कितने अंको का ग्रन्थ है।

(क) सात **(ख)** नौ **(ग)** ग्यारह **(घ)** चौदह

उत्तर – नौ

(3) कौन सी रचना शूद्रक की है।

(क) मालविकाग्निमित्रम् **(ख)** मृच्छकटिक **(ग)** उत्तर रामचरित **(घ)** हर्षचरित

उत्तर – मृच्छकटिक

लघु उत्तरीय प्रश्न –

प्रश्न 1– महाकवि शूद्रक के समय पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 2– महाकवि शूद्रक की नाट्यकला की समीक्षा कीजिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न –

प्रश्न 1–शूद्रक की शैलीगत विशिष्टताओं पर प्रकाश डालिये।

प्रश्न 2–मृच्छकटिक की कथा का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 3– महाकवि शूद्रक के व्यक्तित्व और कर्तृत्व की विवेचना कीजिए।

खण्ड –ग

इकाई –10 महाकवि कालिदास

इकाई की रूपरेखा

10.1 इकाई परिचय

10.2 उद्देश्य

10.3 महाकवि कालिदास जीवन–वृत्त

10.4 महाकवि कालिदास के कर्तृत्व

10.5 कालिदास की नाट्यशैली

10.6 बोध प्रश्न

10.1 इकाई परिचय

परस्नातक संस्कृत (MAST) में 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक प्रश्न–पत्र (MAST-113) निर्धारित है। इस प्रश्न–पत्र की दसवीं इकाई 'महाकवि कालिदास' शीर्षक से है। इस इकाई में महाकवि कालिदास के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

10.2 उद्देश्य –

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी –

1– महाकवि कालिदास की नाट्य–कला का बोध कर सकेंगे।

2– महाकवि कालिदस की नाट्य–शैली के विषय में जान सकेंगे।

3–अभिज्ञान शाकुन्तलम् की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे।

4–विक्रमोर्वशीय की कथावस्तु से अगवत हो सकेंगे।

5– मालविग्निमित्रम् की कथावस्तु को जान सकेंगे।

कालिदास

इससे पहले खण्ड क में शिक्षार्थी महाकवि कालिदास के समय और जीवन–वृत्त के बारे में विस्तार से पढ़ चुके हैं। महाकवि कालिदास का नाम सस्ंकृत साहित्य में ही नहीं वरन् विश्व साहित्य में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इकाई के इस अंश में आप उनके जीवन–वृत्त, कर्तृत्व और शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे। सम्राट् विक्रमादित्य के दरबार के नवरत्नों में से एक कालिदास उच्च–कोटि के एवं प्रतिभावान, महाकवि और नाटककार थे। उनके समानान्तर धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, वेदालभट्ट, खटकर्परा, वराहमिहिर, रत्नाकर और वररुचि आदि दरबार के अन्य महान व जाज्वल्यमान् कवि थे।

कालिदास को विश्व की महानतम् काव्य–प्रतिभा माना जाता है। उनका गांभीर्य, सौन्दर्यबोध और स्वच्छन्दता उनकी रचनाओं में शाश्वत झलकती है, जिसके परिणामस्वरूप आज सम्पूर्ण विश्व में उनके सबसे अधिक प्रशंसक हैं और वे प्रसिद्धि के चरम शिखर पर विद्यमान हैं। यहां पर शिक्षार्थियों को कालिदास की रचना, साहित्य–कला के शिक्षार्थियों को दर्शन, काव्य–परम्परा, दूर–दृष्टि, सामान्य ज्ञान और जन–जीवन का वृहत् बोध प्राप्त होगा। इस खण्ड में विद्यार्थी इकाई 10 और इकाई 11 में महाकवि कालिदास के नाटकों की समीक्षात्मक विवेचना पढ़ेंगे और महाकवि भवभूति एवं विशाखदत्त के नाटकों का अध्ययन करेंगे।

10.3 महाकवि कालिदास का जीवन–वृत्त

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि एवं नाटककार हैं। इनके जीवन–वृत्त के विषय में अनेक दन्तकथायें हैं। कुछ विद्वान् इन्हें विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों में एक मानते हैं किन्तु उन नवरत्नों में जिनके साथ इनकी गणना की गई है, वे विभिन्न कालों के हैं और विक्रमादित्य की पहचान करना कठिन है।

'भोज प्रबन्ध' नामक कथाग्रन्थ में भोज की राजसभा में संस्कृत के सभी कवियों को दर्शाया गया है, जिनमें कालिदास प्रमुख थे। एक किंवदन्ती के अनुसार कालिदास सिंहल नरेश कुमारदास के मित्र थे। उनका अन्तिम समय लंका में ही बीता था। वहाँ एक वेश्या ने धन के लोभवश इनकी हत्या कर दी थी। कालिदास के विषय में एक किंवदन्ती यह भी प्रचलित है, कि ये वज्रमूर्ख थे। इनका विवाह विद्वानों ने षड्यन्त्र रचकर विदुषी विद्योत्तमा से करवा दिया। तदनन्तर पत्नी से तिरस्कृत होकर इन्होंने काली की उपासना की और कवित्व शक्ति–अर्जित कर कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, मेघदूतम् जैसे ग्रन्थों की रचना कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाया।

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों का जब हम अध्ययन करते हैं, तो यह ज्ञात होता है कि ये जन्मना ब्राह्मण और शिवभक्त थे। इन्होंने शिव के अतिरिक्त अन्य देवताओं के प्रति भी अपनी आदर–श्रद्धा प्रकट की है। रघुवंशम् और मेघदूतम् में जिस प्रकार से भौगोलिक स्थानों का वर्णन किया गया है, उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन्होंने भारत की विस्तृत यात्रा की थी। इनकी रचनाओं में कहीं भी कष्ट,दारिद्रय आदि का

वर्णन न होने से यह प्रतीत होता है कि, इनका भौतिक जीवन सुखद् था। महाकवि कालिदास किस स्थान के निवासी थे? इस विषय में भी विद्वानों मध्य मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें बंगाली, कुछ कश्मीरी, कुछ उज्जयिनी का निवासी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं, किन्तु महाकवि के उज्जयिनी वर्णन को पढ़कर ऐसी प्रतीति होती है कि, इन्होंने उज्जयिनी को बड़े ही निकट से देखा और समझा है। मेघदूतम् में इन्होंने उज्जयिनी नगरी के प्रति जिस प्रकार का आदरभाव व्यक्त किया है, उससे यह कहा जा सकता है कि ये उज्जयिनी के निवासी थे। महाकवि का काल निर्धारण करना भी विद्वानों के समक्ष किसी चुनौती से कम नहीं था। इस विषय में भी विद्वानों ने अपने–अपने मत प्रकट किए हैं और उनके काल को सिद्ध करने का प्रयास किया है। विद्वानों ने इन्हें प्रथम शताब्दी ई.0पू0, तृतीय शताब्दी ई0, चतुर्थ शताब्दी ई0 का उत्तरार्द्ध, पंचम शताब्दी ई0 का स्वीकार किया है। इस पक्ष में अपने मत भी प्रस्तुत किए हैं। इन मतों में प्रथम शताब्दी ई0पू0 का मत नितान्त सटीक जान पड़ता है जो अधिकांश विद्वानों को मान्य है।

10.4 महाकवि कालिदास के कर्तृत्व

कालिदास की दीर्घ सांसारिक अनुभूतियों तथा लोकव्यवहार की गाढ़ी प्रवीणता का परिचय हमें उनके नाटकों से मिलता है। उन्होंने मानव हृदय की विभिन्न परिस्थितियों में उदीयमान वृत्तियों का चित्रण लोकव्यवहार के साथ पूर्ण सामञ्जस्य के साथ किया है। महाकवि कालिदास ने तीन नाटकों का प्रणयन किया है और तीनों प्रेम मूलक आख्यानों पर आधारित हैं।

(1) मालविकाग्निमित्रम्

(2) विक्रमोर्वशीयम्

(3) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

तीनों नाटकों में प्रेम की अलग–अलग परिस्थितियों का निदर्शन बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। मालविकाग्निमित्रम में प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर भी राजसी अन्तःपुर में पनपने वाले यौवन सुलभ प्रेम का निरुपण किया गया है।

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में इन दोनों से भिन्न स्थिति है। वहां प्रेम में तपस्या, साधना, विरह, काम की, प्रेम की परिणित का अद्भुत चित्रण प्रस्तुत किया गया है। कालिदास के तीनों नाटक, संस्कृत साहित्य में उत्कृष्ट एवं अनुपम मानक प्रस्तुत करते है।

कालिदास विरचित तीनों नाटकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(1) मालविकाग्निमित्रम् –

मालविकाग्निमित्रम् के पाँच अंकों में राजा अग्निमित्र तथा मालविका के विवाह की कथा वर्णित है। विपत्तियों से ग्रस्त मालविका वन में वीरसेन को प्राप्त होती है, जो उसे धारिणी के पास पहुँचा देता है। वहाँ वह दासी के रूप में रहती है, किन्तु अग्निमित्र की प्रेयसी बन जाती है। गणदास मालविका को नृत्य संगीत की शिक्षा देते हैं। धारिणी मालविका को राजा से दूर रखने का प्रयत्न करती है, किन्तु राजा उसे चित्र में देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है। विदूषक मालविका को राजा के समक्ष लाने का प्रयास करता है। इसी बीच नाट्यादास, गणदास और हरदत्त के बीच योग्यता को लेकर विवाद हो जाता है। उसका निर्णय करने के लिए कौशिकी के आदेशानुसार दोनों आचार्य अपनी शिष्याओं से नृत्य और अभिनय कराने की बात मान लेते हैं। **द्वितीय अंक** में मालविका का नृत्य होता है और गणदास की विजय होती है। इस प्रदर्शन को देखकर राजा मालविका पर अत्यन्त मुग्ध हो जाता है। **तृतीय अंक** में प्रमदवन में राजा और मालविका की भेंट होती है। **चतुर्थ अंक** में धारिणी मालविका और उसकी सखी को कारागार में डाल देती है। विदूषक रानी की अगूँठी दिखाकर उन दोनों को कारागार से मुक्त कराता है। **पंचम अंक** में विदर्भ से आई दो सेविकाओं से रानी को मालविका का परिचय मिलता है वह अग्निमित्र और मालविका का विवाह करा देती है।

(2) विक्रमोर्वशीयम् –

विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंकों का त्रोटक नाम का उपरूपक है। इसमें राजा पुरुरवा और उर्वशी की प्रणय कथा का वर्णन है। पुरुरवा केशी राक्षस से आक्रान्त उर्वशी की रक्षा करता है। राजा और उर्वशी एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। विदूषक की अकुशलता से उर्वशी का प्रेम–पत्र देवी औशीनरी को मिल जाता है। वह राजा पर कुपित होती है। राजा किसी प्रकार उसका क्रोध शान्त करते हैं। स्वर्ग में भरत द्वारा निर्देशित एक नाटक में उर्वशी अभिनय करते हुए 'पुरुषोत्तम विष्णु' के स्थान पर पुरुरवा का नाम ले लेती है। कुपित होकर भरतमुनि उसे पुत्रदर्शन तक मृत्युलोक में रहने का शाप देते हैं। वह राजा पुरुरवा के पास रहने लगती है। राजा पर कुपित होकर उर्वशी एकदिन गन्धमादन उपवन में चली जाती है। वहाँ शापवश वह लता बन जाती है। शोक से व्याकुल राजा आकाशवाणी के अनुसार संगमनीय मणि लेकर लतारूपी उर्वशी का आलिंगन कर उसको पूर्वरूप में ले आते हैं। च्यवन ऋषि के आश्रम में उर्वशी को अपने पुत्र का दर्शन होता है, और उर्वशी स्वर्ग चली जाती है। नारद इन्द्रलोक से आकर यह सूचना देते हैं कि, इन्द्र को युद्ध में पुरुरवा की सहायता चाहिए। पुरुरवा इन्द्र की सहायता करते हैं। इन्द्र उर्वशी को सदैव पुरुरवा के साथ रहने का वर देते हैं और भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति हो जाती है।

(3) अभिज्ञानशाकुन्तलम् –

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक समग्र संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसमें कुल सात अंक है। इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा वर्णित है। हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त मृगया करते हुए संयोगवश कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँच जाते हैं जहाँ उनका शकुन्तला से साक्षात्कार होता है। आश्रम के मृग का पीछा करते हुए राजा दुष्यन्त सारथि के साथ प्रवेश करते हैं। वह मृग को मारना ही चाहते हैं कि उसी समय तपस्वी का प्रवेश होता है और वह राजा दुष्यन्त से निवेदन करता है कि यह आश्रम का मृग है, इसे न मारिये। तपस्वी के निवेदन के पश्चात् राजा धनुष से प्रत्यंचा उतार लेते हैं, तपस्वी भी उनको चक्रवर्ती पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद देकर उनसे प्रार्थना करता है कि, आश्रम में आकर अतिथि सत्कार स्वीकार करें। वह राजा को बताता है कि, इस आश्रम के कुलपति कण्व सोमतीर्थ गए हैं। अतः अतिथि सत्कार का कार्य शकुन्तला कर रही है। राजा सारथि को बाहर छोड़कर सामान्य वेश में आश्रम में प्रवेश करते हैं। वहाँ वह वृक्षों में जल डालती हुई तीन अत्यन्त सुन्दर कन्याओं को देखते हैं। उन कन्याओं में से एक शकुन्तला है। राजा उस पर आसक्त हो जाता है, उसी समय शकुन्तला को एक भौंरा परेशान करने लगता है और वह उस भौंरे से रक्षा के लिए प्रार्थना करती है। उस समय राजा दुष्यन्त वृक्ष की ओट से बाहर आकर शकुन्तला की रक्षा करते हैं। वह शकुन्तला और उसकी सखियों से वार्तालाप करते हैं तभी उन्हें यह ज्ञात होता है कि, शकुन्तला ऋषि विश्वामित्र और मेनका की पुत्री है तथा कण्व ऋषि की पालिता पुत्री है। शकुन्तला को क्षत्रिय कन्या जानकर दुष्यन्त उस पर आसक्त हो जाता है तथा उससे विवाह करने का दृढ़ विचार करता है। तपस्वी से उसके जन्म की कथा सुन लेने के बाद उनके हृदय में उस मुनि–कन्या के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। शकुन्तला भी आभिजात्य और पौरुष की प्रत्यक्ष प्रतिमा महाराज दुष्यन्त के प्रति आकर्षित होती है। दोनों गान्धर्व विधि से विवाह–सूत्र में बँध जाते हैं। परन्तु ऋषि शाप–वश दुष्यन्त शकुन्तला को भूल जाते हैं। शाप निवारण के पश्चात दोनों का पुनर्मिलन हो जाता है।

10.4 कालिदास की नाट्यकला –

अभिज्ञान शाकुन्तलम् कालिदास का सबसे प्रसिद्ध नाटक है। भारतीय आलोचकों ने तो इसे नाट्य साहित्य में सबसे श्रेष्ठ बतलाया है– **"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला"।** भारत ही नहीं अपितु पश्चिमी देशों के विद्वानों ने भी इसे सर्वश्रेष्ठ नाटक माना है।

घटना संयोजन –

कालिदास के शाकुन्तलम् में घटनाओं का संयोजन करने में अद्भुत कुशलता प्रदर्शित की है। प्रत्येक घटना सार्थक और कथानक में पूर्ण सहयोग करती है। जिससे नाटक की गति स्वाभाविक और अविच्छिन बनी रही है। जैसे भ्रमर से पीड़ित शकुन्तला की रक्षा के लिये राजा का प्रवेश, शकुन्तला का राजा को देखकर मोहित

होना, क्षत्रिय कन्या जानकर राजा का शकुन्तला से विवाह का निर्णय, दुर्वासा शाप, फिर राजा को याद आना, शकुन्तला से पुनर्मिलन आदि सभी घटनायें एक दूसरे से संबद्ध हैं।

घटनाओं की सार्थकता –

शाकुन्तलम् की सभी घटनायें सार्थक हैं। वे किसी विशेष उद्देश्य से ही रखी गई हैं। जैसे प्रथम अंक में ही तपस्वियों का चक्रवर्ती पुत्र का आशीर्वाद और सातवें अंक में इस आशीर्वाद का फलित होना। दुर्वासा के शाप के कारण शकुन्तला को भूलना और अंगूठी खोने से पांचवें अंक में पहचानना, अंगूठी मिलने से शाप की समाप्ति, स्वर्ग से सीधे देवों के आशीर्वाद से पुत्र और पत्नी से मिलन।

कालिदास ने प्रत्येक वर्णन को बहुत ही सुन्दर और स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया है। वे सभी घटनाओं को मूर्तवत चित्रित कर देते हैं। रथ की तीव्र गति एवं चतुर्थ अंक में शकुन्तला की विदाई का वर्णन, पेड़–पौधों, मृगशावक पिता का पुत्री को विदाई पर विलाप इत्यादि अद्वितीय है। शकुन्तला को महाभारत जैसे नीरस और गम्भीर कथानक से लेकर इतना सरस और मनोरम बना पाना कालिदास जैसे उत्कृष्ट और उर्वर कल्पना शक्ति वाले का ही प्रभाव है।

कालिदास ने काव्यों में ध्वनि और व्यञ्जना का प्रमुख स्थान रहा है। उनके वर्णन और घटनाएं संकेतात्मक हैं। वे भावी घटनाओं की ओर पूर्व संकेत कर देते हैं। जैसे प्रस्तावना में सूत्रधार का कथन – **दिवसाः परिणामरमणीयाः** (1–3) बताता है कि अन्त सुखद होगा। कालिदास चरित्र चित्रण में अत्यन्त पटु है। उनके प्रत्येक पात्र का अपना विशिष्ट व्यक्तित्व हैं। उनके हाथों में निर्जीव को सजीव कर देने की अद्भुत क्षमता है। रूक्षपाया शकुन्तला परम स्निग्ध रूप धारण कर हमारे लोचनों के सामने झांकती है। दुष्यन्त प्रजा वत्सल, उदात्ततचरित्र धीरोदत्त नायक हैं। उनका हृदय धर्मभावना से उत्तान है। तीन ऋषियों का वर्णन और तीनों में अन्तर **(1)** कण्व – अत्यन्त सज्जन शकुन्तला के धर्मपिता है। **(2)** मारीच वीतराग ऋषि हैं **(3)** दुर्वासा अत्यन्त क्रोधी ऋषि हैं। शकुन्तला लज्जाशील, मितभाषी, सरल हृदया हैं। अनुसुइया शान्त, गम्भीर, विवेकशील, प्रियंवदा मधुरभाषी और वाकपटु हैं।

कालिदास ने अपने नाटकों में पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया है। जैसी जिसकी स्थिति वह पात्र उसी के अनुरूप भाषा का प्रयोग करता है। साखियों का हास–परिहास, पुरोहित दार्शनिक भाषा का प्रयोग करते हैं। शिष्यों का अभिवादन, ऋषिजनों का अभिनन्दन सभी पात्रों का सुन्दर समन्वय भाषा, भाव और देशकाल स्थिति के अनुसार किया गया है।

कालिदास की नाट्यकला की एक यह भी विशेषता है कि, उनकी वर्णन शैली सर्वक्षा संक्षिप्त एवं सरस है। नपी–तुली भाषा में वर्ण्य विषय का सुन्दरतम् ढंग से वर्णन करते हैं, जिससे काव्य सौन्दर्य भी बना रहता है और नाट्य स्वरूप भी खण्डित नहीं होता है। शाकुन्तल में, भयभीत मृग, विरहाकुल शकुन्तला, मारीच, आश्रम आदि के वर्णन उदाहरण स्वरूप लिए जा सकते हैं।

कालिदास की प्रतिभा सर्वतोमुखी है। वे संस्कृत– साहित्याकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र हैं। उनके वर्णन सजीव है। विविध कला ज्ञान और नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा सरस्वती की शुभ्र धारा है। उनके काव्य में स्वर्गीय आनन्द है, भौतिक विलास है, दैवीय दिव्यता और सात्विक सम्मोहन है।

10.5 कालिदास की नाट्यशैली –

कालिदास संस्कृत जगत् के सर्वश्रेष्ठ कवि और नाटककार हैं। कालिदास की दीर्घ सांसारिक अनुभतियों तथा लोकव्यवहार हमें उनके नाट्कों से प्राप्त होता है। उन्होंने तीन नाटकों का प्रणयन किया है। इन नाटकों में प्रेममूलक आख्यान को ही कवि ने कथावस्तु के रूप में परिगृहीत किया है परन्तु यहां प्रेम की नाना अवस्थाओं का दिग्दर्शन बड़े ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। कालिदास ने वाह्य प्रकृति के साथ अन्तःप्रकृति का सूक्ष्म विश्लेषण किया है। उनके चरित्र–चित्रण में वैयक्तिकता का प्राधान्य है, शब्द चयन में नीर–क्षीर–विवेक का प्रयोग है, वर्णनों में अलंकार–प्राधन्य न होकर नैसर्गिक सुषमा को प्रमुखता दी है।

कालिदास वैदर्भी रीति के सर्वोच्च कवि हैं। वैदर्भी रीति की प्रमुख विशेषताएं हैं – मधुर शब्द, ललितरचना, समासों का सर्वथा अभाव या कम रहना, समस्त पदों का होना।

गुण –

कालिदास की शैली में प्रसाद और माधुर्य गुणों का प्रधान्य है। ओज गुण कहीं–कहीं नाममात्रही मिलता है। यद्यपि सभी पद्यों में प्रसाद गुण कम या अधिक मात्रा में विद्यमान है, कुछ श्लोक प्रसादमयी भाषा में लिखे गये हैं जो जो पाठक के मन को तुरन्त प्रभावित करते हैं जैसे– परोपकार पर लिखा यह श्लोक –

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनौ घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभि, स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।। (शाकुन्तल – 5/12)

कालिदास में माधुर्य गुण भी प्रचुर मात्रा में मिलता है। शकुन्तला के सुकुमार सौन्दर्य पर कवि कृपालु हैं। उसके लिये यह असह्य है कि शकुन्तला जैसी सुकुमारी से वृक्ष सिंचन और तपस्या जैसा कठोर कार्य कराया जाये।

इदं किलाव्याजमनोहरं वपुस्तपः क्षमं साधयितुं य इच्छति।
ध्रुवं स नीलोत्पलपत्र धारया शमीलतां छेत्तुमृषिर्व्यवस्थति।। (शाकुन्तल – 1/18)

भाषा –

कालिदास की भाषा परिष्कृत और सुस्संकृत है। उनका शब्दकोष अगाध है। वे उन्हीं शब्दों का प्रयोग करते हैं जिसका जहाँ उचित स्थान हो। उनकी भाषा सरस और मनोरम है, उन्होंने लम्बे समासों का परित्याग किया है। भाषा और शब्दकोष में असाधारण मनोहरता और प्रवाह है। वेसुन्दर भावों को सुन्दर भाषा में प्रकाशित करते हैं जैसे– **'इदं किलाव्याजमनोहरं वपुः' (शाकुन्तल – 1/18)** कालिदास ने अपने पात्रों के अनुकूल ही कथोपकथन में भाषा का प्रयोग किया है, जो व्यक्ति जिस कोटि का है वह वैसी ही भाषा का प्रयोग करता है।

वर्णन कुशलता –

कालिदास चाहे पात्रों का वर्णन हो या प्रकृति का बड़े ही सजीव ढंग से करते हैं, वे प्रकृति वर्णन में बहुत पटु हैं। उन्होंने वृक्षों, वनस्पतियों, पशु, पक्षी, नदी, तालाब आदि सभी का वर्णन बड़ी कुशलता के साथ किया है। वे बाह्य प्रकृति और अन्तःप्रकृति के पूरे सामरस्य के उपासक हैं। बाह्य प्रकृति जो अभिरामता प्रस्तुत करती है वही अन्तःप्रकृति में भी विद्यमान है। प्रातःकाल का समय है। सूर्य उदय हो रहा है और चन्द्रमा अस्त हो रहा है। दो तेजों का उदय और अस्त सूचित करता है कि, मनुष्य के जीवन में भी उत्थान और पतन होता है–

यात्येकृतोऽस्तशिखरं पतिरोष धीना

माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः।

तेजोद्वयस्य युगपद् व्यसनोदयाभ्यां

लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु।। (शाकुन्तल – 4/2)

संवादों में रोचकता –

कालिदास के नाटकों में संवाद अत्यन्त संक्षिप्त और सरल एवं रोचक है। उनमें अनावश्यक विस्तार का सर्वषा अभावा है। उनकी भाषा चुस्त और मुहावरेदार है कि वह विषय को अत्यन्त आकर्षक बना देती है। छोटे–छोटे और सरल वाक्यों सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यक्ति की गई है, जैसे – अङ्क 1 में राजा की प्रियंवदा आदि से वार्ता, अङ्क 2 में राजा और विदुषक का वार्तालाप इत्यादि।

अलंकार –

कालिदास के नाटकों में प्रायः प्रचलित सभी अलंकारों का प्रयोग हुआ है। वे सहज और स्वाभाविक रूप में हैं, श्रमसाध्य नहीं। अलंकार भाव और भाषा को मनोरमता देकर रसपरिपाक में सहायक है। मुख्यरूप से इन प्रमुख अलंकारों का प्रयोग हुआ है– उपमा, यमक, श्लेष, उत्प्रेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, दीपक, विभावना

इत्यादि। कालिदास अपनी उपमाओं के लिये विश्वप्रसिद्ध हैं। उनकी उपमायें अत्यन्त मनोरम हैं। यद्यपि उपमा का प्रयोग रघुवंश में सर्वाधिक है, तथापि शाकुन्तल में इसकी संख्या कम है। उपमा का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है–

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहु।

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमङ्गेषु संनद्धम्। (अभिज्ञान शाकुन्तल– 1/21)

शकुन्तला के सौन्दर्य का वर्णन है कि उसके अधर में किसलय की सी लालिमा है, दोनों भुजाएं कोमल शाखा के तुल्य हैं, उसक अंगों में फूल सी यौवन व्याप्त है।

ऋषियों के मध्य में शकुन्तला जीर्ण पत्तों के बीच में किसलय तुल्य दिखाई देती है। '**मध्ये तपोधनानां किसलयमिव पाण्डुपत्राणाम्'**

छन्द योजना –

कालिदास ने अपने नाटकों में कुल 24 छन्दों का प्रयोग किया है। छोटे छन्दों का प्रयोग बहुतायत में किया है, बड़े छन्दों का कम। छन्द भावों को ध्वनित करते हैं, इस प्रकार भाव और भाषा का सुन्दर समन्वय मिलता है। कोमल भावो और सुभाषितों के लिये आर्या छन्द को अपनाया जाता है। करुण भाव के लिए मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग होता है। कालिदास के अन्य नाटकों को देखने से पता चलता है कि आर्या और अनुष्टुप छन्द उनको अत्यन्त प्रिय हैं। मालविकाग्निमित्रम् में आर्या 35 बार और अनुष्टुप 17 बार आया है। क्रिमोर्वशीय् मे आर्या 29 बार और अनुष्टुप 30 बार प्रयुक्त हुआ है। शाकुन्तलम् में बड़े छन्दों का भी प्रयोग किया है, शार्दुलविक्रडित, मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी आदि।

रससिद्धि–

कालिदास रससिद्ध कवि हैं, जिस रस की ओर उनकी दृष्टि झुकती है उसे ही वे अनूठे तौर पर अभिव्यक्त कर देते हैं, पर शृङ्गार और करुण रसों की कुछ विलक्षण चारूता उनकी कृतियों में है, शाकुन्तलम् में प्रेम और करुण रस का अपूर्व सम्मिलन है। चतुर्थ अंक में, जहाँ शकुन्तला पतिगृह जा रही है, कवि ने जैसा करुण चित्र अंकित किया है वैसा शायद ही कहीं चित्रित हो–

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया

कण्ठः स्तम्भित वाष्पवृंत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।

वैक्लव्यं मम तवदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः

पीड्यन्ते गृहिणः कथं न तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः।।

आज शकुन्तला पतिगृह को चली जायेगी – इस उत्कण्ठा के मारे मेरा हृदय उच्छवसित हो रहा है, ऐसी पीड़ा अगर एक ऋषि की है तो गृहस्थ की क्या दशा होगी पुत्री की विदाई पर। ऐसा करुण वर्णन किया है। कालिदास ने प्रकृति और मनुष्य को एक घनिष्ठ–प्रेम–बन्धन में बंधा हुआ दिखाया है। आश्रम की बालिका शकुन्तला को अलंकृत करने के लिये प्रकृति स्नेह में आभूषण वितरित करती है।

कालिदास में सर्वतोमुखी प्रतिभा है, उनमें कवित्व की निर्मल और प्रबल धारा पवित्र मन्दाकिनी की धारा है। उनकी कविता साक्षात् त्रिवेणी है। वे स्वयं संस्कृतसाहित्याकाश के दैदीप्यमान नक्षत्र है।

10.6 बोध प्रश्न–

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न –1 महाकवि कालिदास के समय पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न –2 अभिज्ञान शाकुन्तलम् के चतुर्थ अंक की कथा लिखिए।

प्रश्न –3 कालिदास की कृतियों पर प्रकाश डालिये।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न –1 कालिदास की नाट्यशैली का विस्तार से वर्णन कीजिए।

प्रश्न –2 महाकवि कालिदास के जीवनवृत्त पर प्रकाश डालते समय उनकी कृतियों का उल्लेख कीजिए।

इकाई –11 महाकवि भवभूति

इकाई की रूपरेखा

11.1 इकाई परिचय

11.2 उद्देश्य

11.3 महाकवि भवभूति का जीवन–वृत्त

11.4 महाकवि भवभूति का समय

11.5 महाकवि भवभूति का कर्तृत्व

11.6 महाकवि भवभूति का शैलीगत वैशिष्ट्य

11.7 भवभूति की शैलीगत विशेषताएं

11.8 बोध प्रश्न

11.1 इकाई परिचय

परस्नातक संस्कृत (MAST) में 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक प्रश्न–पत्र (MAST-113) निर्धारित है। इस प्रश्न–पत्र की ग्यारहवीं इकाई 'महाकवि भवभूति' शीर्षक से है। इस इकाई में महाकवि भवभूति के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई के पश्चात् शिक्षार्थी–

1– महाकवि भवभूति के जीवन–वृत्त एवं रचनाओं के विषय में जान सकेंगे।

2– महाकवि भवभूति की नाट्यशैली से अवगत हो सकेंगे।

3– उत्तररामचरित् की कथावस्तु से परिचित हो सकेंगे।

11.3 महाकवि भवभूति का जीवन–

संस्कृत साहित्य में भवभूति एक श्रेष्ठ नाटककार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। भवभूति ने अपने ग्रन्थों में नाटकों की प्रस्तावना में अपना वंश परिचय और जीवन–वृत्त दिया है। ये दक्षिण पदमपुर के रहने वाले थे–

"अस्ति दक्षिणापथे पदमपुरं नाम नगरम्"। (महावीर चरितम्, भवभूति प्रस्तावना)

ये कृष्णयर्जुवेद की तैतरीय शाखा–पाठी ब्राह्मण थे। इनका गोत्र कश्यप था। भवभूति के पितामह का नाम भट्टगोपाल पिता का नाम नीलकण्ठ और माता का नाम जतुकर्णी था। इनके नाटकों से पता चलता है कि, पूर्वज सदाचार और वेदाध्ययन के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध थे। भवभूति ने अपने को **'भट्ट श्री कण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम'** लिखा है। कुछ टीकाकारों का अनुमान है कि इनका नाम 'श्री कण्ठ' था। बाद में ये भवभूति नाम से विख्यात हुए। भवभूति वेद तथा दर्शन के अगाधपण्डित थे।

11.4 महाकवि भवभूति का समय –

भवभूति के समय निर्धारण में विशेष कठिनाई नहीं आयी। कुछ तथ्यों के आधार पर पूर्व और अपर सीमा निर्धारित की जा सकती है।

बाण ने अपने ग्रन्थ हर्षचरित में पूर्ववर्ती कवियों और नाटककारों का उल्लेख किया है परन्तु उसमें भवभूति का उल्लेख नहीं है। अतः भवभूति बाण के परिवर्ती कवि सिद्ध होते हैं। इससे यह प्रमाण मिलता है कि, भवभूति का समय 650 ई0पू0 नहीं हो सकता है। वामन का समय 8वीं शताब्दी ई0 का उत्तरार्ध और 9वीं शताब्दी का प्रथम चरण माना जाता है। अतः भवभूति 750 ई0 से परवर्ती नहीं हो सकते हैं। वामन ने अपने ग्रन्थ में भवभूति के दो श्लोकों को उद्धृत किया हैं– दोर्लोलाञ्चित (महावीर स्वामी 1–54), इयं गेहे लक्ष्मी (उत्तररामचरित 1–38) इससे ज्ञात होता है कि, भवभूति का समय वामन के पूर्व का है।

कल्हण ने राजतरंगिणी (लगभग 1158 ई0) में राजा यशोवर्मा को भवभूति और वाक्पति राज का आश्रयदाता बताया है –

कविर्वाक्पतिराजश्री भव भूत्यादि सेवितः
जितो ययौ यशोवर्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्।। (राजतरंगिणी – 4/144)

इस प्रकार राजतरंगिणी और गउडवहो के आधार पर भी भवभूति का समय लगभग 680 से 750 ई0 तक मानना उचित होगा।

11.5 महाकवि भवभूति का कर्तृत्व –

भवभूति संस्कृत के सर्वोच्च महाकवियों में गिने जाते हैं। इन्होंने तीन नाटक लिखे हैं।

(1) मालतीमाधवम् प्रकरण

(2) महावीरचरित नाटक

(3) उत्तररामचरितम् नाटक

भवभूति के तीनों नाटकों का अभिनय, जैसा कि उनकी प्रस्तावना से मालूम पड़ता है, भगवान कालप्रियनाथ के उत्सव पर हुआ था। विद्वानों की सम्मति में उज्जयिनी के महाकाल महादेव का ही दूसरा नाम कालप्रियनाथ है। महावीरचरित तथा मालतीमाधव की प्रस्तावना से पता चलता है कि भवभूति की नटों से घनिष्ठ मित्रता थी, अतः यह स्पष्ट है कि भवभूति के नाटक अभिनय के ही लिये लिखे गये थे।

(1) मालतीमाधवम् प्रकरण – यह 10 अंकों का प्रकरण नाटक है। इसमें मालती तथा माधव और मकरन्द तथा मदयन्तिका के प्रणय एवं परिणय कथा का कवि ने वर्णन किया है। इसमें नायक और नायिका के प्रणय में बाधा होने पर कामन्दकी दोनों की सहायता करती है। मदयन्तिका पर सिंह का आक्रमण, मकरन्द द्वारा सिंह का मारा जाना, माधव का सिद्धि प्राप्ति के लिए श्मशान जाना, मालती को बलि देने की तैयारी, मालती का अपहरण जैसी अनेक रोमांचक घटनाओं से यह प्रकरण युक्त है।

(2) महावीरचरित नाटक – भवभूति प्रणीत महावीरचरित नाटक में सात अंक हैं। इसमें रामायण के बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा का वर्णन है। इसके **प्रथम अंक** में शिवधनुष तोड़कर राम सीता से विवाह करते हैं। इस पर रावण के क्रुद्ध होने का वर्णन महाकवि ने किया है। **द्वितीय अंक** में रावण का मन्त्री माल्यवान् राम के विरुद्ध परशुराम को उकसाता है। **तृतीय अंक** में राम और परशुराम के मध्य वाकयुद्ध का वर्णन है। **चतुर्थ अंक** में राम–परशुराम वाकयुद्ध में परशुराम पराजित होते हैं। माल्यवान् के षड्यन्त्र से शूर्पणखा कैकेयी की दासी मन्थरा के रूप में कैकेयी का पत्र राम को देती है कि, दशरथ के वर के अनुसार राम 14 वर्ष वन में रहें और भरत राजा बनें। **पंचम अंक** में सीता हरण, जटायु–रावण युद्ध, विभीषण–राम मिलन, बाली वध आदि घटनाओं का वर्णन है। **छठवें अंक** में राम–रावण युद्ध और रावण–वध की कथा वर्णित है। **सप्तम अंक** में सीता की अग्निपरीक्षा, राम का अयोध्या आगमन और राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है।

(3) उत्तररामचरितम् नाटक – भवभूति प्रणीत 'उत्तररामचरितम्' में सात अंक हैं। रामायण कथा आश्रित इस नाटक के नायक राम और नायिका सीता हैं तथा करुण अंगी रस है। नाटक के **प्रथम अंक** में राज्याभिषेक के पश्चात् प्रजानुरंजन में रत् श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन किया गया है। कुछ समय पश्चात् चित्रकारों द्वारा निर्मित आलेख्यवीथिका में लक्ष्मण, राम व सीता को ले जाते हैं। चित्र–दर्शन द्वारा सीता के मन में वन विहार एवं गंगा दर्शन की इच्छा उत्पन्न होती है। उसी समय दुर्मुख नामक दूत के द्वारा सीता विषयक लोकोपवाद की सूचना मिलती है। अन्त में राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सीता को वाल्मीकि आश्रम में छोड़ आते हैं। **द्वितीय अंक** में वासन्ती और आत्रेयी के संवाद से सीता विषयक विभिन्न तथ्यों की जानकारी मिलती है। उसी समय रामचन्द्र जी शम्बूक वध हेतु दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं तथा पहले देखे गए दृश्यों को देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। शम्बूक वध के पश्चात् रामचन्द्र जी अगस्त आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। **तृतीय अंक** छायांक के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं। तमसा–मुरला नामक दो नदी देवताओं के संवाद द्वारा वासन्ती से लव–कुश व सीता विषयक वार्ता को सुनकर राम

मूर्च्छित हो जाते हैं तब अदृश्य रूपधारिणी सीता राम को होश में लाती हैं। तदनन्तर अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन हेतु राम अयोध्या लौट जाते हैं। **चतुर्थ अंक** में वसिष्ठ.अरुन्धती, राम की मातायें तथा जनक जी अतिथि रूप में वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश करते हैं। इस अंक में जनक, अरुन्धती तथा कौशल्या के बीच सीता परित्याग से उत्पन्न स्थिति का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया गया है। अंक के अन्त में लव–कुश द्वारा राम के अश्वमेघीय घोड़े को पकड़ने की घटना का वर्णन है। **पंचम अंक** में चन्द्रकेतु तथा लव के बीच लम्बा संवाद होता है। उसके पश्चात् भीषण संग्राम प्रारम्भ होता है। **छठवें अंक** में लव चन्द्रकेतु संग्राम में राम का पदार्पण होता है। युद्ध बन्द होता है। दोनों श्रीराम को प्रणाम करते हैं। लव तथा कुश में सीता की आकृति की समानता देखकर राम प्रसन्न होते हैं तथा वहाँ उपस्थित वसिष्ठ, जनक, का कौशल्या आदि को प्रणाम करते हैं। **सप्तम अंक** गर्भांक है। इस अंक में प्रजा के समक्ष नाटक खेला जाता है जिसमें गंगा तथा पृथ्वी देवता सीता को निर्दोष सिद्ध कर रामचन्द्र को समर्पित करती हैं। जृम्भकास्त्र की सिद्धि से लव–कुश का राम का पुत्र होना निश्चित हो जाता है तथा भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

11.6 महाकवि भवभूति की नाट्यकला –

संस्कृत साहित्य जगत में कालिदास के बाद भवभूति का ही नाम उत्कृष्ट नाटककार के रूप में आता है। भवभूति का भाषा पर असाधारण अधिकार या प्रभुत्व था। वाग्देवी ब्रह्मा की तरह उनकी वश्या थी। उनका भाषा तथा भाव में अनुपम सामञ्जस्य था। भवभूति की शैली का विशेष गुण उनका समुचित विन्यास है, वे गौणी रीति के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। उनके तीनों नाटकों में उत्तरराम चरित ही सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जाता है। इसमें उनकी प्रतिभा का सर्वोत्तम निदर्शन है– अतएव कहा जाता है – **'उत्तरे रामचरितेभवभूतिर्विशिष्यते'**।

भवभूति के नाटकों की मुख्य विशेषतायें हैं – घटना संयोजन, वर्णनों की सार्थकता, उनकी स्वाभाविकता, चरित्र–चित्रण, व्यक्तिकता, कथोपथन में स्वाभाविकता, मनोहर शैली, देशकाल कवित्व और रसपरिपाक। भवभूति के जीवनकाल में ही उनके तीनों नाटकों का सफलता पूर्वक मंचन हो चुका था। भवभूति भाव–प्रवण कवि हैं और उनकी भाव–प्रवणता का प्रभाव उनके नाटकों पर विशेषतः उत्तररामचरित का अधिकता से पड़ा है। भावों के स्निग्ध चित्रण के कारण यदि उत्तररामचरित गीति नाटक है तो प्रकृति तथा युद्ध के वर्णनों के कारण यह ऐतिहासिक नाटक भी है।

घटनाओं की योजना में दश अंकों वाला प्रकरण कुछ अव्यवस्थित भले ही दिखाई पड़े परन्तु राम–सम्बन्धी दोनों नाटक में घटना शैथिल्य का सर्वथा अभाव है। उत्तररामचरित में घटना संयोजन बड़े ही मनोवैज्ञानिक पद्धति से प्रदर्शित किया गया है। प्रथम अंक की घटनाओं का सप्तम अंक की घटनाओं से साक्षात सम्बन्ध स्थापित होता है। सप्तम अंक के गर्भाङ्क की कल्पना,वाल्मीकि आश्रम में सबकी उपस्थिति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है।

चरित चित्रण में भी भवभूति सिद्धहस्त नाटककार दिखे हैं। अपनी गम्भीर प्रवृत्ति के अनुरूप ही उन्होंने राम और सीता जैसे परम पावन आदर्श चरित पात्रों को अपने नाटक का आधार बनाया। भवभूति ने वाल्मीकि के आदिकाव्य का गम्भीर अनुशीलन किया था और उससे उन्होंने मूर्त से अमूर्त की तुलना, करुण रस को सर्वोपरि तथा सर्वमान्य स्थिति आदि अनेक तथ्यों को अंगीकार किया है। भवभूति के प्रत्येक पात्र अपने आप में पूर्ण हैं। प्रत्येक पात्र किसी आदर्श को प्रस्तुत करता है। राम कर्तव्य पालन का और सीता पतिव्रता स्त्री का आदर्श प्रस्तुत करती हैं। भवभूति के पात्रों में गम्भीरता और संयम दोनों ही दृष्टिगोचर होते हैं।

भवभूति ने अपने नाटको में श‍ृङ्गार, वीर आदि सभी रसों का प्रयोग किया है परन्तु करुण रस के प्रयोग में वे सिद्धहस्त थे। उत्तररामचरित नाटक में उन्होंने करुण रस का सुन्दर वर्णन किया है। तृतीय अंक में करुण रस का चरम दिखाई पड़ता है–

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्।
भिन्न पृथक पृथगिवश्रयते विर्वतान्।। (उ0 रा0 च0–3/47)

भवभूति की उपमायें अपनी नवीनता के कारण आकर्षित करती हैं। भवभूति ने अनुष्टुप जैसे लघुकलेवर के छन्दों का जितनी कुशलता से प्रयोग किया है, उतनी ही सिद्धहस्तता के साथ वे लम्बे छन्दों का प्रयोग करते हैं। भवभूति छन्दों का प्रयोग उनके भाव और विषय के अनुरूप करते हैं। भवभूति के संवाद सुन्दर रस निष्पत्ति में सहायक हैं। उनकी भाषा संयत और भाव प्रकाश में समर्थ है।

एकोरसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्न पृथक पृथगिवश्रयते विर्वमान।। (उ0 रा0 च0–3/47)

भवभूति की उपमायें अपनी नवीनता के कारण आकर्षित करती हैं। भवभूति ने अनुष्टुपजैसेलघुकलेवर के छन्दों का जितनी कुशलता से प्रयोग किया है, उतनी ही सिद्धहस्तता के साथ वे लम्बे छन्दों का प्रयोग करते हैं। भवभूति छन्दों का प्रयोग उनके भाव और विषय के अनुरूप करते हैं। भवभूति के संवाद सुन्दर रस निष्पत्ति में सहायक हैं। उनकी भाषा और भवप्रकाश में समर्थ है।

भवभूति की शैली–

भवभूति संस्कृत साहित्य के उच्चकोटि के नाटककार और कवि हैं कालिदास के बाद भवभूति ही सर्वश्रेष्ठ नाटक का रमाने जाते हैं। उनकी असाधारण ख्याति के कारण हैं भाषा का गौरव तथा शब्द चमत्कार, भावानुरूप भाषा का प्रयोग, शब्द भण्डार की समृद्धता, भाव के अनुकूल छंदों का प्रयोग, प्रसाद, माधुरी और ओजगुणों से युक्त शैली, करूण रस के लिए शिखरिणी की उपयुक्तता – **'भवभूतेशिखरिणी निरगलित तरंगिणी रूचिरराघन संदर्भे मयुरीव नृत्यति'**। इस प्रकार कला की दृष्टि से भवभूति सर्वश्रेष्ठ रचनाकार माने जाते हैं।

11.7 भवभूति की शैलीगत विशेषताएं–

गौडी और वैदर्भी रीति–

भवभूति गौडी रीति के सर्वश्रेष्ठकवि हैं उन्होंने मालतीमाधव और महावीर चरित दोनों में गौडी रीति को अपनाया है उत्तररामचरित करूण रस–प्रधान नाटक है अतः उसमें वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है तथा वीररस और प्रकृति वर्णनों में गौडी रीति है। उत्तर रामचरित में गौडी और वैदर्भी रीति का मणि–कंचन–संयोग है।

प्रकृति–वर्णनों में गौडी रीति का आश्रय किया गया है मध्याह्य के वर्णन में गौडी रीति का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है–

कण्डूलद्विप गण्डपिण्ड कषणा कम्पेन संपातिभि
र्धर्मस्रंसितबन्धनैश्च कुसुमैरर्चन्ति गोदावरीम्।
छायापस्किरमाणविष्किरमुखव्याकृष्ट कीटत्वचः
कूजत्क्लान्तकपोतकुक्कुटकुलाः कूले कुलायद्रुमाः (उत्तरराम चरित–2/9)

प्रसाद, माधुर्य और ओजगुण–

महाकवि भवभूति ने अपने नाटकों में तीनों गुणों का प्रयोग किया है, महावीरचरित में वीररस की प्रधानता के कारण ओजगुण का, मालती माधव में श्रृंगाररस की प्रधानता के कारण माधुर्य का और उत्तररामचरित में करूण रस की मधुर प्रेमाभिव्यक्ति कितने मधुर शब्दों में वर्णित है। राम सीता को देखकर मन्त्रमुग्ध हैं और कहते हैं कि यह मेरी गृहलक्ष्मी है, मेरी आँखों के लिए अमृत शलाका हैं, इसका स्पर्श चन्दन–लेप के तुल्य शीतल है, गले में पड़ा हुआ इनका हाथ शीतल मोती की माला है इनकी सभी बातें अतिप्रिय हैं, परन्तु यदि विरह हुआ तो वह अत्यन्त असह्य होगा।

इयंगेहे लक्ष्मीरियममृतवर्तिर्नयनयो–
रसावस्याः स्पर्शो वपुषि बहुलश्चन्दनरसः।
अयं बाहुः कण्ठे शिशिरमसृणो मौक्तिकरसः।
किमस्या न प्रेयो यदि परमसह्यस्तु विरहः।। (उत्तररामचरित–1–38)

भाषा–

भवभूतिका भाषा का पूर्ण अधिकार है उनमें भाषा को अपनी उंगली पर नचाने की शक्ति है, भवभूति में प्रतिभा तथा वाग्वश्य का मणि–कांचन संयोग है। भवभूतिका शब्दकोश अगाध है, उनकी भाषा सरल और क्लिष्ट, सुबोध और दुर्बोध, समास रहित और समास प्रधान इन परस्पर विरोधी गुणों से युक्त है।

भवभूति ने अपने तीनों नाटकों में सार्थक संवादों को अपने पत्रों के माध्यम से स्थान दिया है– महावीरचरितम् के प्रथम अंक में जब ताड़का का वध करने के लिए विश्वामित्र राम को आदेश देते हैं तो राम कहते हैं– **'भगवन्! स्त्रीखल्वियम्'** उनके उदात्त शौर्य को व्यक्त करता है।

भवभूति का उत्तर रामचरितम् संवाद की दृष्टि से श्रेष्ठनाटक–नाटक के प्रथम अङ्क में कञ्चुकी के प्रति राम की उक्ति **'आर्य! रामचन्द्रइत्येव मां प्रत्युपचारः शोभते तातपरिजनस्य'** वृद्धजनों के प्रति उनकी श्रृद्धा को प्रकट करता है।

वर्णन कुशलता–

भवभूति में भावाभिव्यंजन की अपूर्व शक्ति है। भवभूति की प्रमुख विशेषता है वे स्वानुभूति जन्म है। उनके वर्णन स्वाभाविक है। उन्होंने प्रकृति के अनुसार सुकुमार और कठोर रूपों तथा प्रकृति से तादात्म्य का सुन्दर वर्णन किया है प्रकृति का सुकुमार रूप सुन्दर शब्दों में–

एते त एव गिरयो विरूवन्मयूरा
स्तान्येव मत्तहरिणानि वनस्थलानि।
आमञ्जुवञ्जुलतानि च तान्यमूनि
नीरन्ध्रनीपनिचुलानि सरित्तटानि।।(उत्तर रामचरित 2/23)

अर्थगौरव–

भवभूति की कृतियों में अनेक स्थलों पर अर्थ गौरव प्राप्त होता है। दाम्पत्य जीवन का जितना स्वाभाविक और मार्मिक वर्णन भवभूति ने किया है, उतना अन्य दुर्लभ है।

सुनृत (प्रिय और सत्य) वाणी का जो महत्व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है उसी का भवभूति ने वैदिक शैली अपनाते हुए मनोहर वर्णन किया है कि यह कामनाओं को पूर्ण करती है, दुर्भाग्य का दमन करती है, यश देती है, शत्रुओं का नाश करती है, कामधेनु के तुल्य सभी कामनाओं को पूर्ण करती है।

कामं दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मी
कीर्ति सूते दुर्हृदो निष्प्रलानि।
शुद्धां शान्तां मातरं मङ्गलानां
धेनु धीराः सूनृतां वाचमाहुः।। (उ0चरित 5/30)

अलंकार और छन्द योजना –

भवभूति की रचनाओं में प्राय सभी प्रमुख अलंकारों का प्रयोग मिलता है भवभूति ने विशेषकर उपमा की नवीन विधाओं को जन्म दिया है उत्तर रामचरित में उन्होंने 38 अलंकारों का प्रयोग किया है। इसी प्रकार भवभूति ने उत्तर रामचरित में 19 छन्दों का प्रयोग किया है उन्होंने बड़े छन्दों की उपेक्षा छोटे छन्दों का प्रयोग बहुतायत में किया है। तीनों नाटकों को देखने से ज्ञात होता है कि भवभूति को अनुष्टुप और शिखरिणी छन्द अधिक प्रिय हैं।

भवभूति रससिद्ध कवि हैं, वे करूण रस के निर्विवाद सर्वश्रेष्ठ कवि है, भवभूति प्रकृति वर्णन, शारीरिक सौन्दर्य वर्णन, प्रकृति वर्णन, मानवीय भावों के वर्णन में असाधारण पटु है। उनकी सूक्ष्म दृष्टि स्थूल से स्थूल से सूक्ष्म तत्वों की ओर अव्याहत गति से प्रवेश करती है।

11.9 बोधप्रश्न–

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1– महाकवि भवभूति के जन्म स्थान एवं उनकी कृतियों के बारे में संक्षेप में लिखिए।

प्रश्न 2– महाकवि भवभूति के नाटक उत्तर रामचरित की कथा संक्षेप में लिखें।

दीर्घउत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1– महाकवि भवभूति की नाटय शैली को विस्तार से लिखिए।

प्रश्न 2– महाकवि भवभूति के तीनों नाटकों की कथावस्तु का उल्लेख कीजिए।

महाकवि विशाखदत्त

इकाई की रूपरेखा

11.1 इकाई परिचय

11.2 उद्देश्य

11.3 महाकवि विशाखदत्त का जीवन–वृत्त

11.4 महाकवि विशाखदत्त के कर्तृत्व

11.5 महाकवि विशाखदत्त की नाट्यशैली

11.5.1 मौलिकता –

11.5.2 नाट्यकुशलता –

11.5.3 कथा संयोजन–

11.5.4 पात्रों का चित्रण –

11.5.5 नाटकीय तत्व –

11.6 बोध प्रश्न

11.1 इकाई परिचय

परस्नातक संस्कृत (MAST) में 'लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास' नामक प्रश्न–पत्र (MAST-113) निर्धारित है। इस प्रश्न–पत्र की ग्यारहवीं इकाई 'महाकवि विशाखदत्त' शीर्षक से है। इस इकाई में महाकवि विशाखदत्त के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व के विषय में अध्ययन करेंगे।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् शिक्षार्थी –

1–मुद्राराक्षस नाटक की कथा वस्तु के साथ–साथ राजशास्त्र का परिचय प्राप्त करे सकेगें।

2–संस्कृत नाटकों के नामकरण की विधा से परिचित हो सकेंगे।

3–वीररस प्रधान नाटक के विषय में जान सकेंगे।

4–जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण कूटनीति अवगत हो सकेंगे।

5–जीवन में करणीय व अकरणीय कार्यों के बारे में जान सकेगें।

6–संस्कृत भाषा एवं साहित्य के सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक महत्त्व का बोध करेंगे।

11.3 महाकवि विशाखदत्त का जीवन वृत्त –

विशाखदत्त के विषय में जानकारी उनके नाटक 'मुद्राराक्षस' के प्रस्तावना से ही प्राप्त होती है। किसी अन्य स्त्रोत से नहीं होती है। उनकी प्रस्तावना में उल्लेख किया गया है –

अद्य सामन्तवटेश्वरदत्तपौत्रस्य महाराजपदभाक्पृथुसूनोः,

कवेर्विशाखदत्तस्य कृतिः मुद्राराक्षसं नाम नाटकं नाटयितव्यम्।।

इससे यह ज्ञात होता है कि, इनके पितामह सामन्त थे और उनका नाम वटेश्वरदत्त थे और पिता महाराज पृथु। सामन्त और महाराज शब्दों से ज्ञात होता है कि, उनके पूर्वज किसी राजा के अधीन राजा थे। इसीलिये बाल्यकाल से ही विशाखदत्त की रुचि राजनीति में रही, उसी का परिपाक मुद्राराक्षस है। मुद्राराक्षस के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे राजनीति खासकर कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा शुक्रनीति के प्रकाण्ड विद्वान थे, इसके साथ–साथ विशाखदत्त ने नाट्यशास्त्र, दर्शनशास्त्र, बौद्धदर्शन, व्याकरण, नीतिशास्त्र आदि का गम्भीर अध्ययन किया था।

11.4 महाकवि विशाखदत्त का समय –

विशाखदत्त के समय के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। अलग–अलग विद्वानों के अलग–अलग मत हैं। कोई इनको चन्द्रगुप्त द्वितीय (365 ई0 से 413 ई0) का समकालीन कवि मानते हैं तो कोई अवन्ति वर्मा (528 ई0) का समकालीन मानते हैं। प्रो0 याकोबी ने मुद्राराक्षस में आये चन्द्रगुप्त की तिथि के आधार पर 860 ई0 के आसपास मानते हैं। विशाखदत्त के समय के बारे में बहुत लोग मुद्राराक्षस के भरतवाक्य पर आश्रित मानते हैं। जो कि इस प्रकार है–

म्लैच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना संश्रिता राजमूर्तेः।

स श्रीमदबन्धुभृत्यश्चिरमवतु महीं पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः।।

कुछ संस्करणों में नामों में भिन्नता है 'पार्थिवचन्द्रगुप्तः' के स्थान पर पार्थिवोऽवन्तिवर्मा, दन्तिवर्मा, पार्थिवो रन्ति वर्मा इत्यादि पाठ मिलता है। दन्तिवर्मा (620 ई0 के लगभग) पल्लव राजा थे। इनके समय में मलेच्छों का कोई आक्रमण दक्षिण में नही हुआ। ये शैव राजा थे और भरतवाक्य में राजा की विष्णु से तुलना है अतः इसे असंगत माना गया है।

अवन्तिवर्मा दो माने जाते हैं। एक कश्मीर के राजा और दूसरे कन्नौज के नरेश मौखरि वंश के थे। इस भरत वाक्य में इन्हीं का निर्देश ऐतिहासिक रीति से प्रमाणिक होता है। इसी समय हूणों का उपद्रव पश्चिमोत्तर भारत में विशेष रूप से हुआ। इन हूणों का अवन्ति वर्मा ने थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन की सहायता से परास्त किया था। हर्षचरित में प्रभाकरवर्द्धन को इसी कार्य के लिये 'हूण हरिण केसरी' कहा गया है। यह घटना 528 ई0 के आस–पास मानी जाती है।

के0 टी0 तेलंग ने विशाखदत्त का समय 7वीं या 8वीं शताब्दी ई0 माना है। प्रो0 ध्रुव ने इसी आधार पर विशाखदत्त का समय छठीवीं शताब्दी ई0 का उत्तरार्ध सिद्ध किया है। अन्तः बहिः साक्ष्य पर सम्पूर्ण दृष्टि डालते हुये कुछ साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि, विशाखदत्त चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन थे और उनका समय 400 ई0 के आस–पास मानना चाहिये।

11.5 महाकवि विशाखदत्त का कर्तृत्व –

विशाखदत्त की प्रमुख रचना 'मुद्राराक्षस' है। जो चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन से सम्बद्ध है और जो अमात्य चाणक्य की बुद्धिमता तथा कूटनीतिमत्ता का एक विमल निदर्शन है। विशाखदत्त की मुद्राराक्षस के अतिरिक्त दो अन्य रचनाओं का उल्लेख मिलता है।

(1) मुद्राराक्षस – मुदाराक्षस एक राजनीतिक नाटक है जो कि नायिका और विदूषक रहित अलग ही परम्परा को दर्शाता है। इसमें चाणक्य की कूटनीति और राजनीति का अनुपम उदाहारण प्रस्तुत किया है।

(2) देवी चन्द्र गुप्त – इसमें सम्राट रामगुप्त, चन्द्रगुप्त और ध्रुवस्वामिनी की ऐतिहासिक घटना का वर्णन है। राजा रामगुप्त ने अपनी भीरुता के कारण प्रबल शकराजा के मांगने पर अपनी रानी ध्रुवदेवी को समर्पित कर देना स्वीकार कर लिया था। जिसके बाद रामगुप्त का कोई भाई चन्द्रगुप्त ध्रुवदेवी के छद्म वेष में शकराज के शिविर में गया और उस अत्याचारी राजा का वध कर दिया। यह ऐतिहासिक घटना बहुत प्रख्यात रही क्योंकि इसका अन्य ग्रन्थों में भी उल्लेख मिलता है। हर्षचरित्र के पांचवें परिच्छेद और राजशेखर ने काव्यमीमांसा में इसका उल्लेख किया है।

(3) अभिसारिवंचितक – इस नाटक में वत्सराज उदयन के जीवन चरित वासवदत्ता पद्मावती के प्रणय की कथा है। यह ग्रन्थ अप्राप्य है। तीनों ग्रन्थ प्राप्य और जो अप्राप्य हैं वे ऐतिहासिक नाटकीय घटनाओं के आधार पर आश्रित प्रतीत होते हैं।

11.6 मुद्राराक्षस की संक्षिप्त कथा

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस भारतीय कूटनीति से ओत–प्रोत एक ऐतिहासिक नाटक है। वीर रस प्रधान इस नाटक का नायक चाणक्य है। नायिका एवं विदूषक रहित सात अंकों वाले इस नाटक में चाणक्य व आमात्य राक्षस के बुद्धिकौशल का विशाखदत्त ने वर्णन किया है।

प्रथम अंक का नाम 'मुद्रालाभ' है। नान्दी के पश्चात् सूत्रधार प्रवेश करता है। सूत्रधार को नटी से यह ज्ञात होता है कि चन्द्रग्रहण के उपलक्ष्य पर नटी ने ब्राह्मणों को भोज के लिए आमन्त्रित किया है। सूत्रधार इसका खण्डन करते हुए कहता है कि, चन्द्रग्रहण तो हो ही नहीं सकता। चाणक्य नेपथ्य में केवल 'चन्द्रग्रहण' ये शब्द ही सुन पाता है। नाम की समानता के कारण चाणक्य समझता है कि राक्षस, मलयकेतु के साथ मिलकर चन्द्रगुप्त पर आक्रमण (चन्द्र का ग्रहण) करने जा रहा है। चाणक्य अत्यधिक कुपित हो जाता है और यह कहते हुए रंगमंच पर प्रवेश करता है कि मेरे होते हुए कौन चन्द्रगुप्त पर आक्रमण कर सकता है। इस प्रकार नाटक का मुख्य पात्र रंगमंच पर आ जाता है।

इसी अंक में चाणक्य यह उद्घोषणा करता है कि, वह अनेक गुणों से युक्त राक्षस को चन्द्रगुप्त का मंत्री पद स्वीकार करवाना चाहता है, जिससे चन्द्रगुप्त की राज्यलक्ष्मी को चिरस्थायी बनाया जा सके। राक्षस को नियंत्रित किये बिना चन्द्रगुप्त का राज्य स्थिर नहीं हो सकता है। चाणक्य उन योजनाओं को भी बतलाता है जिनका सूत्रपात उसने इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया है।

सबसे पहले तो चाणक्य नन्दवंशीय सर्वार्थसिद्धि को तपोवन जाने पर मरवा देता है, ताकि नन्दवंश का कोई भी व्यक्ति जीवित न रह सके। वह यह लोकापवाद (अफ़वाह) फैला देता है कि, राक्षस ने विषकन्या का प्रयोग करके पर्वतक को मरवा दिया। पर्वतक पुत्र मलयकेतु को भागुरायण एकान्त में यह कह कर डरा देता है कि 'तुम्हारे पिता चाणक्य द्वारा मरवा दिए गए हैं' और उसे भागुरायण ही कुसुमपुर से राक्षस के पास भेज देता है। कुसुमपुर में रहने वाले नन्दों के घनिष्ठ मित्रों का पता लगाने के लिए नाना वेश में अनेक गुप्तचर नियुक्त कर दिए जाते हैं। चन्द्रगुप्त का साथ देने वाले भद्रभट इत्यादि प्रधान पुरुषों को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट कर दिया जाता है, ताकि वे शत्रु पक्ष में न मिल जायें। चन्द्रगुप्त की रक्षा के लिए उसके समीप अनेक विश्वसनीय सेवकों को नियुक्त कर दिया जाता है। चाणक्य अपने बचपन के सहपाठी इन्दुशर्मा नामक ब्राह्मण को जीवसिद्धि नामक क्षपणक का रूप धारण करवा देता है तथा नन्द के मंत्रियों के साथ नन्दों के नाश से पूर्व ही जीवसिद्धि क्षपणक की मित्रता करवा दी जाती है। राक्षस का जीवसिद्धि पर विशेष रूप से विश्वास उत्पन्न हो जाता है। चाणक्य के द्वारा प्रयुक्त गुप्तचर निपुणक वहाँ आकर सूचना देता है कि, राक्षस के परिवार के सदस्य चन्दनदास नामक वैश्य के यहाँ सुरक्षित हैं। इसके बाद चाणक्य चन्दनदास को बुलवाते हैं तथा उसे कहते हैं कि, वह राक्षस के परिवारजनों को सौंप दे। चन्दनदास किसी भी कीमत पर राक्षस के परिवारजनों को सौंपने के लिए तैयार नहीं होता। चाणक्य उसे बन्धन में डालने की आज्ञा देते हैं तथा अपने ही गुप्तचर जीवसिद्धि नामक क्षपणक को इस आरोप में कुसुमपुर से निष्कासित करवा देता है कि उसने पर्वतक को विषकन्या का प्रयोग करके मरवाया है। यह जीवसिद्धि नामक क्षपणक वास्तव में चाणक्य का ही इन्दुशर्मा नामक मित्र है। जीवसिद्धि क्षपणक को देश निकाला इसलिए दिया जाता है ताकि वह राक्षस के पास जा सके। चाणक्य के गुप्तचर को राक्षस के नाम से अंकित मुद्रा मिलती है, जिसे वह चाणक्य को समर्पित कर देता है। चाणक्य मुद्रा प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हो जाता है और राक्षस के मित्र शकटदास के द्वारा एक कपट पूर्ण लेख लिखवाकर उसे राक्षस की मुद्रा से मुद्राङ्कित कर देता है। शकटदास यह नहीं

जान पाता है कि, इस लेख को चाणक्य ने लिखवाया है। फिर चाणक्य वह लेख सिद्धार्थक को दे देता है व उसके कान में गुप्त योजना बताता है और उससे कहता है कि वह शकटदास, जिसको चाणक्य ने मृत्युदण्ड की सजा दी है, उसे मृत्यु स्थान से छुड़वाकर राक्षस के यहाँ पहुँचा दे।

राक्षस के मित्र शकटदास को फाँसी का आदेश दिया जाता है, लेकिन चाणक्य अपने गुप्तचर सिद्धार्थक के माध्यम से उसे वध्यस्थल से भगाकर राक्षस की शरण में पहुँचा देता है। परन्तु पाठकों को यह नहीं पता चल पाता कि, उन्हें क्या आदेश दिया गया है। भद्रभट, पुरुषदत्त, डिङ्गरात, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष, विजयवर्मा इत्यादि प्रधान पुरुषों को राक्षस के पास भेज दिया जाता है, परन्तु अन्य लोग यही समझते हैं कि, वे चन्द्रगुप्त से असंतुष्ट होकर राक्षस की शरण में चले गए हैं।

द्वितीय अंक – विराधगुप्त नामक राक्षस के गुप्तचर का आगमन होता है। वह जीर्णविष नामक सपेरे का वेश धारण कर कुसुमपुर का समाचार जानने गया था, इस दृश्य से द्वितीय अंक का प्रारम्भ होता है। इसी अंक में राक्षस अपनी सभी योजनाओं का प्रयोजन बतलाता है कि वह केवल अपने दिवंगत स्वामियों को प्रसन्न करने के लिए ही चन्द्रगुप्त से उनका राज्य वापस लेना चाहता है। अंक के प्रारम्भ में राक्षस इस बात से अत्यधिक चिन्तित हो जाता है कि, उसकी योजनाएँ सफल भी हो पाएंगी या नहीं। तभी मलयकेतु का कञ्चुकी प्रवेश करता है और वह राक्षस के लिए मलयकेतु द्वारा अपने शरीर से उतार कर भेजे गए आभूषण लाता है, जिन्हें राक्षस मलयकेतु की भावनाओं का आदर करने के लिए पहन लेता है। विराधगुप्त राक्षस को कुसुमपुर के समाचार बतलाता है तथा यह भी बताता है कि, राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिए जो योजनाएँ बनाता है, वे किस प्रकार असफल हो जाती हैं। पर्वतक का पुत्र मलयकेतु भी कुसुमपुर से भाग जाता है तब चाणक्य पर्वतक के भाई वैरोचक को आधा राज्य देने की घोषणा कर देता है तथा नन्दभवन में प्रवेश करने का शुभ मुहूर्त आधी रात में बतलाया जाता है।

कलह से मलयकेतु का राक्षस के प्रति अविश्वास पञ्चम अंक में और भी अधिक दृढ़ हो जाता है और वह राक्षस को अपमानित कर निष्कासित कर देता है। इस प्रकार चन्द्रगुप्त के आगे राज्य का भागीदार वैरोचक तथा राक्षस के दोनों गुप्तचर दारुवर्मा और वर्वरक चाणक्य की कूटनीति से मार दिए जाते हैं। राक्षस अभयदत्त वैद्य को चन्द्रगुप्त को विष देकर मारने के लिए नियुक्त करता है, चाणक्य की बुद्धिमत्ता से वही विष अभयदत्त वैद्य को पिला दिया जाता है, जिससे उसकी मृत्यु हो जाती है। राक्षस चन्द्रगुप्त को मारने के लिये चन्द्रगुप्त के ही शयनागार में प्रमोदक को नियुक्त करता है। राक्षस के द्वारा चन्द्रगुप्त के वध के लिए किये गये सारे षड्यन्त्रों को चाणक्य नष्ट कर देता है। राक्षस की सारी योजनाएँ असफल ही नहीं, अपितु अनिष्ट फलवाली हो जाती हैं। विराधगुप्त राक्षस को यह भी बतलाता है कि, उसके तीन मित्रों क्षपणक जीवसिद्धि, शकटदास और चन्दनदास को किस–किस अपराध में पकड़ लिया गया है और उन्हें क्या–क्या दण्ड दिया गया है। तभी प्रथम अंक में वर्णित चाणक्य की योजनानुसार सिद्धार्थक शकटदास को वध्यस्थल से भगा कर राक्षस के पास ले आता है। राक्षस प्रसन्न होकर पुरस्कार रूप में अपने शरीर से उतार कर

वही आभूषण सिद्धार्थक को दे देता है जो कुछ समय पूर्व ही मलयकेतु का कञ्चुकी उसे पहना कर गया था। सिद्धार्थक उन आभूषणों को चुपके से राक्षस की मुद्रा से अंकित कर रख लेता है और उन्हें वहीं रखवा देता है। शकटदास राक्षस की अँगूठी पहचान लेता है व सिद्धार्थक से उसे ले लेता है। शकटदास व सिद्धार्थक दोनों के चले जाने पर विराधगुप्त राक्षस को बतलाता है कि मलयकेतु के कुसुमपुर से भागने के कारण चाणक्य और चन्द्रगुप्त में अत्यधिक मनमुटाव रहने लगा है। राक्षस यह सुनकर अत्यधिक प्रसन्न होता है तथा विराधगुप्त द्वारा ही अपने प्रिय मित्र स्तनकलश नामक वैतालिक को सन्देश भिजवाता है कि जब–जब चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा का उल्लंघन करे तब–तब वह चन्द्रगुप्त को चाणक्य के विरुद्ध भड़काने में समर्थ श्लोक गाए। विराधगुप्त चला जाता है। तभी शकटदास राक्षस के पास तीन आभूषण भेजता है, जो बेचे जा रहे हैं। राक्षस उन्हें बहुमूल्य समझ कर खरीदने की अनुमति दे देता है। वास्तव में ये पर्वतक के ही आभूषण है जिन्हें प्रथम अंक में चाणक्य के कहने से विश्वावसु आदि तीन भाइयों ने चन्द्रगुप्त से पर्वतक के श्राद्ध के अवसर पर ग्रहण किया था और अब चाणक्य की योजनानुसार ही राक्षस को बेच दिए गए हैं।

तृतीय अंक – इस नाटक में तृतीय अंक का विशेष महत्त्व है इसमें चन्द्रगुप्त और चाणक्य के कृत्रिम नकली विवाद का वर्णन किया गया है, जो नाटक को एक नया मोड़ दे देता है। इसी नकली विवाद के कारण मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति अविश्वास पंचम अंक में और भी अधिक दृढ़ हो जाता है और वह राक्षस को अपमानित कर निष्कासित कर देता है। चन्द्रगुप्त और चाणक्य की पूर्वयोजना के अनुसार चन्द्रगुप्त कुसुमपुर में कौमुदी महोत्सव का आयोजन करने का आदेश देता है परन्तु चाणक्य इसका निषेध करवा देता है। चन्द्रगुप्त ऐसा अभिनय करता है जैसे कि, उसे इस कौमुदी महोत्सव के निषेध के विषय में कोई ज्ञान नहीं है। इस प्रकार चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त में कृतक कलह (नकली विवाद) होता है। चाणक्य अपना मन्त्रीपद त्यागने की घोषणा करते हैं। चन्द्रगुप्त भी कहता है मैं चाणक्य के बिना राज्य का संचालन कर लूँगा। चन्द्रगुप्त अपने कञ्चुकी वैहीनर से राज्य में यह घोषणा करने का आदेश दे देता है कि 'चाणक्य को अमात्यपद से हटाकर चन्द्रगुप्त स्वयं राज्य करेगा'।

चतुर्थ अंक – राक्षस चाणक्य को अमात्यपद से हटाए जाने के कारण यह सोच कर प्रसन्न हो जाता है कि, अब उसके लिए चन्द्रगुप्त को जीतना अत्यधिक सरल हो जाएगा और वह अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेगा। इसी शुभ घटना की सूचना देने के लिए वह मलयकेतु को देखना चाहता है। मलयकेतु तो वहाँ पहले से ही दरवाजे के पीछे छिपकर राक्षस व करभक की बात सुन रहा होता है, अतः तुरन्त बाहर आ जाता है। राक्षस मलयकेतु को कहता है कि चाणक्य चन्द्रगुप्त से अलग हो गया है। अब चन्द्रगुप्त राज्य चलाने में सर्वथा असमर्थ है। इसी अवसर का लाभ उठाते हुए हम शत्रु पर आक्रमण कर देंगे। मलयकेतु के मन में राक्षस के प्रति शङ्का उत्पन्न हो जाती है परंतु साथ ही वह युद्ध करने के उत्साह से भी भर जाता है। राक्षस क्षपणक जीवसिद्धि से जो वास्तव में चाणक्य का ही गुप्तचर है, प्रयाण करने का शुभ मुहूर्त निकलवाता है परन्तु

उसके द्वारा बतलाए गए मुहूर्त्त से राक्षस सन्तुष्ट नहीं होता अतः वे अन्य ज्योतिषियों से भी परामर्श लेना चाहता है। इस पर क्षपणक क्रुद्ध होकर चला जाता है।

पंचम अंक में नाटक की मुख्यकथा का वर्णन है। इस अंक में मुद्रित लेख तथा आभूषण के साथ सिद्धार्थक पकडा़ जाता है परिणामस्वरूप मलयकेतु का विश्वास राक्षस से हट जाता है और वह राक्षस का विरोधी बन जाता है। राक्षस के विरोध के परिणामस्वरूप मलयकेतु अपने सहयोगियों के साथ पकड़ लिया जाता है तथा राक्षस को पकड़ने का प्रयास किया जाता है।

षष्टम् अंक में राक्षस चन्दन दास की प्रवृत्ति जानने के लिए कुसुमपुर लौट जाता है जहाँ उसे चन्दनदास को दिए जाने वाले मृत्युदण्ड की सजा की सूचना मिलती है। कुसुमपुर व राजा नन्दों की पुरानी स्मृतियाँ राक्षस के मानसपटल पर पुनः नवीन हो जाती हैं। साथ ही मलयकेतु की विवेकशून्यता तथा भाग्य की विपरीतता पर भी वह आँसू बहाता है। तभी उसे अपने सामने एक पुरुष स्वयं को फाँसी लगाता हुआ दिखाई देता है, वस्तुतः वह चाणक्य का ही व्यक्ति है। राक्षस द्वारा स्वयं को फाँसी लगाए जाने का कारण पूछे जाने पर वह बतलाता है कि वह कुसुमपुर में रहने वाला मणिकार श्रेष्ठी विष्णुदास का मित्र है और विष्णुदास चन्दनदास नामक मणिकार श्रेष्ठी का परम मित्र है। विष्णुदास अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति दान में देकर अग्नि में प्रवेश करने जा रहा है क्योंकि उसके मित्र चन्दनदास को उसके द्वारा राक्षस का परिवार न सौंपे जाने पर मृत्युदण्ड दिया जा रहा है और चूंकि विष्णुदास आग में प्रवेश कर रहा है अतः उसकी मृत्यु के विषय में सुनने से पूर्व ही वह आत्महत्या कर लेना चाहता है। यह सुनकर राक्षस उसे बताता है कि मैं ही राक्षस हूँ। राक्षस उस पुरुष को विष्णुदास को मरने से रोकने के लिये भेजता है और स्वयं चन्दनदास की रक्षा के लिए निकल जाता है।

सप्तम् अंक में दो चाण्डाल (जल्लाद) चन्दनदास को वध्य स्थान की ओर ले जाते हैं। चन्दनदास की पत्नी तथा पुत्र विलाप करते हैं। चन्दनदास उन दोनों को सान्त्वना देता है। तभी राक्षस वहाँ उपस्थित होकर आत्मसमर्पण कर देता है। चाणक्य भी वहाँ उपस्थित हो जाता है और राक्षस का अभिवादन करता है। चाणक्य राक्षस से कहता है कि, आपको चन्द्रगुप्त का मन्त्री बनाने के लिए यह लीला मैंने रची है। चन्द्रगुप्त सामने आकर राक्षस का अभिवादन करता है। राक्षस भी अन्ततः मित्र चन्दनदास की रक्षा के लिए चन्द्रगुप्त का मन्त्रित्व स्वीकार करता है। राक्षस की प्रार्थना पर मलयकेतु को उसके पिता का राज्य दे दिया जाता है। चन्दनदास 'नगरसेठ' बना दिया जाता है। इस प्रकार चाणक्य द्वारा की गई नन्दवंश के वध की प्रतिज्ञा राक्षस को चन्द्रगुप्त का अमात्य बनाकर पूर्ण हो जाती है। चाणक्य अपनी खुली हुई शिखा बाँध लेता है और भरतवाक्य के साथ नाटक की सुखद समाप्ति हो जाती है।

11.7 विशाखदत्त की नाट्यकला –

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक अनेक दृष्टियों से संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। विशाखदत्त संस्कृत के उन नाटककारों में हैं, जिन्हें प्रगतिवादी नाटककार कहा जा सकता है। उनमें क्षमता है कि, वे नई विधा, नयी परम्परा को जन्म दे सकें। उनकी रचनाशैली में मौलिकता, नवीनता और शक्तिमत्ता है। विशाखदत्त का यह नाटक पाठकों के लिये ऐतिहासिक तथ्यों तथा चरित्रों को जानने और समझने का एक कोश है। उन्होंने परम्परागत रुढ़ियों का त्याग कर संस्कृत–साहित्य में अपना अनूठा स्थान प्राप्त किया है।

11.7.1 मौलिकता –

विशाखदत्त ने अपने नाटकों को कई दृष्टियों से मौलिक बनाया है– राजा के अतिरिक्त मंत्री चाणक्य को नायक बनाया, नायिका का सर्वथा अभाव, चन्दनदास की पत्नी एकमात्र स्त्रीपात्र, विदूषक का अभाव, शृङ्गार और हास्य से मुक्त, परम्परागत प्रेमाख्यान का परित्याग, सर्वथा राजनीतिक वातावरण, आदर्शवादिता का अभाव इत्यादि।

11.7.2 नाट्यकुशलता –

विशाखदत्त की नाट्यकुशलता का सबसे प्रमुख अंग गत्यात्मकता है। कथा इस प्रकार से बनायी गई है कि, कहीं भी गतिरोध नहीं होता है। कवि की नाटकीय विशेषता यह भी है कि, नाटक के प्रारम्भ से ही अघटित घटनाओं के लिये उसकी उत्सुकता बनी रहती है। नाटक में अन्त तक रहस्य बना रहता है। कोई जान नहीं सकता कि, चाणक्य के किस दाँव–पेंच का क्या परिणाम होगा और उसका क्या उद्देश्य है। राजनीतिक नाटक होने पर भी सुखान्त है तथा रंगमंच पर कोई अप्रिय घटना नहीं घटने पाती है, यह नाटककार के लिये गौरव की बात है।

इन्हीं बातों को ध्यान में रखते हुये कवि ने राक्षस के द्वारा नाटककार और राजनीतिज्ञ की असाधारण कठिनाइयों की चर्चा कराई है।

कार्योपक्षेपमादौ तनुमपि रचयंस्तस्य विस्तारमिच्छन्।
बीजानां गर्भितानां विमर्श फलमति गहनं गूढ़मुद्भेदयंश्च।
कुर्वन बुद्धधा विमर्श प्रसृतमपि पुनः संहरन् कार्यजातं
कर्ता वा नाटकानामिममनुभवति क्लेशमस्मद्विधो वा (मुद्राराक्षस 10–4–3)

11.7.3 कथा संयोजन–

विशाखदत्त की सूक्ष्म दृष्टि कथा संयोजन में अत्यन्त दक्ष है। नाटक के लिये क्या उचित क्या अनुचित है। क्या प्रासंगिक और क्या अप्रासंगिक है। इस सबको परखकर विवेकपूर्ण ढंग से उसका समायोजन किया गया है। यहीं कारण है कि, वह नाटक में नन्दवंश–विनाश से लेकर राक्षस द्वारा चन्द्रगुप्त के अमात्य पद स्वीकृति तक के विशाल घटनाचक्र को समेटने में सफल हो सके हैं। विशाखदत्त ने अपने पात्रों का चयन और उनका चित्रण बड़ी ही कुशलता से किया है। नाटक में 29 पात्र हैं जिसमें 28 पुरुष और मात्र एक स्त्रीपात्र जो नाटक के सांतवें अंक में दिखाई पड़ती है।

11.7.4 पात्रों का चित्रण –

नाटक में छहः प्रमुख पात्र हैं– चाणक्य, चन्द्रगुप्त, मलयकेतु, चन्दनदास और शकटदास। विशाखदत्त ने नाटकीय परम्पराओं को तोड़कर एक नया मानक गढ़ा है। अतः चन्द्रगुप्त को नायक न बनाकर प्रधानामात्य चाणक्य को नायक बनाया है। चाणक्य ही आदि से अन्त तक सभी घटनाओं का नियामक, संचालक, प्रेरक और स्वाभीष्ट का प्राप्तिकर्ता हैं।

11.7.5 नाटकीय तत्व –

वस्तुतः फल प्राप्ति चन्द्रगुप्त को नहीं चाणक्य होती है। क्योंकि उसकी सभी योजनाएं, प्रतिज्ञाएं, निर्णय, निश्चय सफल हुये होते हैं। अतएव प्रतिज्ञापूर्ति पर अपनी शिखा बांधता है। मुद्राराक्षस में सभी अर्थ प्रकृतियों, अवस्थाओं, सन्धियों का समुचित प्रयोग हुआ है। इस प्रकार हम भाषा भाव शैली वस्तु पात्र चित्रण के आधार पर कह सकते हैं कि विशाखदत्त का यह नाटक वास्तव में एक महनीय सफल कृति है। जिसमें कालिदास के समान कोमल भाव तरलता तो नहीं है न ही भवभूति के समान हृदय को भावुकता प्रदान करने वाली शैली परन्तु दो विशाल राजनीतिज्ञों के बुद्धि वैभव की नाना खेलों का विपुल आगार है। नाटक में मानवता की भव्यमूर्ति को उपस्थित करने वाली नाट्यशैली का सुन्दर रूप पाठकों के सामने प्रस्तुत होता है। निःसन्देह मुद्राराक्षस संस्कृत नाटक होने के अतिरिक्त विश्व साहित्य में अपना उचित स्थान बनाये रखने की योग्यता रखता है।

11.6 बोध प्रश्न –

बहुविकल्पीय प्रश्न –

(1) कौन सी रचना विशाखदत्त की है।

(क) मुद्राराक्षस (ख) अभिसारिवंचितक (ग) महावीर चरित (घ) मेघदूत–

उत्तर – मुद्राराक्षस

(2) नायिका रहित रचना है?

(क) वेणीसंहार (ख) रघुवंश (ग) ऋतुसंहार (घ) मुद्राराक्षस

उत्तर – मुद्राराक्षस

(3) मुद्राराक्षस कितने अंको में विभाजित है?

(क) सात (ख) पाँच (ग) तीन (घ) चौदह

उत्तर – सात

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1– 'मुद्राराक्षस' की कथा का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 2– 'विशाखदत्त' के कर्तृत्व पर प्रकाश डालते हुए उनकी नाट्यकला का वर्णन कीजिए।

खण्ड – घ

इकाई–12

गद्यकाव्य का उद्‌भव एवं विकास

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 गद्यकाव्य की उत्पति और विकास

12.3.1 गद्यकाव्य का विकास

12.3.2 कथा और आख्यायिका में भेद

12.4 महाकवि दण्डी का व्यक्तित्व

12.5 महाकवि दण्डी का समय

12.6 महाकवि दण्डी का कर्तृत्व

- **12.6.1** दशकुमारचरित
- **12.6.2** काव्यादर्श
- **12.6.3** अवन्तिसुन्दरी कथा
- **12.6.4.5** छन्दोविचिति एवं कला परिच्छेद
- **12.6.6** द्विसंन्धान काव्य

12.7 दशकुमार चरित की संक्षिप्त कथा

12.8 दण्डिनः पदलालित्यम्

12.9 महाकवि सुबन्धु का जीवनवृत्त

12.10 महाकवि सुबन्धु का समय

12.11 महाकवि सुबन्धु का कर्तृत्व

12.12 महाकवि सुबन्धु की गद्यशैली

12.13 बोध प्रश्न

13.1 महाकवि बाणभट्ट का जीवनवृत्त

13.2 महाकवि बाणभट्ट का कर्तृत्व–

13.3 महाकवि बाणभट्ट का समय

13.4 हर्षचरित की संक्षिप्त कथा

13.5 कादम्बरी संक्षिप्त कथा–

13.6 महाकवि बाणभट्ट की गद्यशैली–

13.7 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'

13.8 बोध प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

- ✓ इस खण्ड में दो इकाई हैं। इकाई 12 और इकाई 13।
- ✓ इस इकाई के अध्ययन से गद्य साहित्य की उत्पत्ति एवं विकास के बारे में जान सकेंगे।
- ✓ कवि दण्डी और सुबन्धु के जीवन–वृत्त के बारे में अवगत हो सकेंगे।
- ✓ महाकवि बाणभट्ट के जीवन–वृत्त उनकी कृतियों एवं उनकी शैली से परिचित होंगे।

12.2 उद्देश्य–

इस खण्ड में संस्कृत गद्य साहित्य के इतिहास उसके उद्भव एवं विकास के बारे में आप गहनता से अध्ययन कर सकेंगे। इसके साथ ही दण्डी, सुबन्धु और बाणभट्ट आदि की गद्यशैली एवं काव्यसौन्दर्य से परिचित हो सकेंगे। कादम्बरी जैसे महानग्रन्थ जिसमें काल्पनिकता को कवि कितने चरम पर ले जाता है इसको तीन जन्मों की कथा में प्रस्तुत किया गया है। कवि ने दशकुमार चरित में वासवदत्ता के सुन्दर प्रेम की अनुभूति कराया है। दशकुमार चरित में दण्डी ने तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था एवं युद्ध आदि का वर्णन किया है जिससे तत्कालीन समाज का जो चित्र हमारे सामने इन ग्रन्थों के माध्यम से उपस्थित हुआ है वह प्रेम, युद्ध, राजकाज आदि की एक झलक दिखाता है कि, उस समय भी प्रेम आदि पर नाटकों–ग्रन्थों का प्रणयन उच्च स्तर का था।

12.3 गद्यकाव्य की उत्पति और विकास

गद्य काव्यों की उत्पति कब और कैसे हुई, इस पर अनके मत प्रस्तुत किये गये हैं। उनमें विशेष तीन मत उल्लेखनीय हैं।

1)गद्य–काव्यों की उत्पत्ति पद्य–काव्यों के माध्यम से हुई।

2)ग्रीक गद्य रचनाओं से भारतीय गद्य–काव्यों की उत्पत्ति हुई।

3) गद्य–काव्यों की उत्पत्ति पद्य–काव्यों के समानान्तर स्वाभाविक क्रमिक विकास से हुई।

प्रथम मत का अभिप्राय है कि, संस्कृत के गद्य काव्य मूलतः पद्य काव्यों से उत्पन्न हुये हैं। पद्य काव्यों के प्रभाव के कारण ही उनमें आलङ्कारिता, मनोभावों की अभिव्यक्ति, नैतिक तथा प्रकृति वर्णनों की प्रचुरता का सामञ्जस्य प्राप्त होता है। जहां तक कथानक की बात है तो वह लोक कथाओं आदि से लिया गया है।

दूसरा मत पीटर्सन आदि ने प्रस्तुत किया है। भारतीय गद्य काव्य यूनानी गद्य काव्य के अनुकरण पर विकसित हुआ परन्तु आगे चलकर इसका खण्डन बहुत से विद्वानों द्वारा किया गया। यूनानी गद्य काव्य और भारतीय गद्यकाव्य की भाषा शैली, कथावस्तु, अलंकार योजना पूर्णतया एक दूसरे से भिन्न हैं। वास्तविकता यह है कि, वैदिक काल से ही हमें गद्य साहित्य का प्रमाण वैदिक संहिताओं में मिलता रहा है। जिस प्रकार वैदिक संस्कृत के साथ प्राकृत भाषा समान्तर अविच्छिन्न रूप से विकसित होती रही है, उसी प्रकार पद्य शैली के साथ ही गद्यशैली समानान्तर चलती रही। पद्य शैली में जब और जिस रूप में विकास और परिवर्तन हुए उसी तरह गद्यशैली में भी विकास और परिवर्तन होते रहे।

लोकप्रियता के लिये पद्य शैली ने राम और कृष्ण के उदात्त चरित का आश्रय लिया तो गद्य शैली ने उदयन, वासवदत्ता, यक्ष आदि से जुड़ी कथाओं का आश्रय लिया। कालिदास, भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि ने पद्य धारा को पुष्पित पल्लवित किया तो वाणभट्ट,दण्डी, सुबन्धु, हरिषेण आदि ने गद्यधारा को साहित्य के आकाश पर पहुंचाया है। दोनों ही धाराओं का स्वतन्त्र रूप से अविच्छिन विकास होता रहा है। यदि वैदिक हिमगिरि से निकलने वाली पद्य–धारा गंगा है तो गद्य–धारा यमुना है।

12.3.1 गद्यकाव्य का विकास–

संस्कृत–गद्य का जो परिनिष्ठित रूप सुबन्धु,दण्डी एवं बाणभट्ट के गद्य–काव्य में प्राप्त होता है, उससे पूर्व संस्कृत गद्य–काव्य व्यवस्थित स्वरूप में कब सामने आता है, इस विषय में कुछ भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता है। किन्तु भारतीय मनीषा किसी भी प्रश्न का समाधान ढूढ़ने के लिये वेदमुखापेक्षी हुआ करती है। एतत्सम्बन्धी अन्वेषण करने पर सर्वप्रथम वैदिक काल में गद्य का विकास याजुष् मन्त्रों में दिखायी देता है। गद्य विचार का संवाहक है और वैचारिक ज्ञान को वाणी का मूर्त रूप देने में इसका प्रयोग हुआ करता है।

वैदिक साहित्य में ही हमें गद्य का प्रथम दर्शन मिलता है। पद्य और गद्य के लिये प्राचीन पारिभषिक शब्द क्रमशः ऋच् (ऋक) और यजुष थे। जिस रचना पद्धति में अर्थ के अनुसार पाद (चरण) की व्यवस्था होती है उसे 'ऋक' कहते हैं अर्थात पद्यात्मक बन्ध 'ऋक्' है। जब ऋग्वेद की ऋचाएं संगीत पद्धति पर गेय होती है तब वे 'साम' कही जाती हैं।**'अनियताक्षरावसानो यजुः'** और **'गद्यात्मको यजुः'** परिभाषाओं के अनुसार यजुष में अक्षरों का अवसान सम्बन्धी कोई नियम नहीं होता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है जो चरण या एक वाक्य की सीमा में आने वाली प्रतिबद्धता से मुक्त रचना हो यजुष कहा जाता है। यानि इसी का दूसरा नाम गद्य है। वैदिक गद्य का प्राचीनतम रूप हमें शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद की तैतरीय, काठक, मैत्रायणी संहिताओं में मिलता है। ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः गद्यात्मक हैं। शतपथ, ऐतरेय आदि वैदिक मंत्रों की विशद व्याख्या यज्ञादि परक विनियोग प्राचीन आख्यान और कर्मकाण्ड परक विधि वर्णित है।

वैदिक गद्य की मुख्य विशेषता यह है कि, इनमें सरलता, स्वाभाविकता, प्रवाहशीलता, रोचकता एवं संवादात्मकता है। सूत्र–गद्य के अतिरिक्त अन्य वैदिक गद्य में अथ, वै, ह, नु, खलु, इति आदि निपातों का प्रयोग वाक्यालंकारों के लिये किया जाता है। वैदिक ग्रन्थ लौकिक संस्कृत व्याकरण से मुक्त हैं। इनमें सरल भावों को साधारण बोलचाल की भाषा में व्यक्त किया गया है। उदाहरणों का प्रयोग बहुलता से होता है। एक–दो उदाहरणों से वैदिक गद्य के स्वरूप को समझा जा सकता है, यथा –

'व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समेरयत। स प्रजापतिःसुवर्णमात्मन्पश्यत् तत् प्राजनयत्। तदेकमभवत्, तल्ललामभवत्,तन्महदभवत्, तज्जेष्ठमभवत्, तद् ब्रह्माभवत,तत् तवोऽभवत्,तत् सत्यमभवत्,तेनप्रजायत।।

(अथर्ववेद काण्ड 15 सूक्त –1)

ब्राह्मण ग्रन्थों में में गद्य का रूवरूप प्रष्टव्य है–''

अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या दवेताः। आग्नावैष्णवं पुरोडाशं निर्वपन्ति दीक्षणीयमेकादशकपालं सर्वाभ्य एवैनं तद्देवताभ्योऽनन्तरायं निर्वपन्ति (ऐतरेय ब्राह्मण, प्रथम पञ्चिका)

वैदिक वाङ्मय के पश्चात् सूत्रकाल से होता हुआ संस्कृत–गद्य पतञ्जलि के महाभाष्य एवं शबर के मीमांसाभाष्य में दिखायी देता है, जिसका चरम परिपाक शङ्कराचार्य के शारीरिक भाष्य में प्राप्त होता है। आचार्य शङ्कर के पश्चात् संस्कृत का दार्शनिक गद्य अत्यधिक रूप से अलङ्कृत शैली का रूप लेने लगा था, जिसका एक रूप वाचस्पति मिश्र, चित्सुखाचार्य आदि के वेदान्त ग्रन्थों में और दूसरा गङ्गेश उपाध्याय आदि के द्वारा प्रवर्तित नव्यन्याय की शैली में प्राप्त होता है। आगे चलकर साहित्यिक ग्रन्थों में गद्य का प्रयोग होने लगा एवं साहित्यिक गद्य लिखे जाने लगे। साहित्य में भी हम दो प्रकार की गद्य शैली पाते हैं– एक गद्य की स्वाभाविक शैली एवं सरल शैली पाते है और दूसरी कृत्रिम अलङ्कृत शैली। स्वाभाविक एवं सरल शैली का दर्शन हमें सर्वप्रथम

पञ्चतन्त्रों में मिलता है और इसका सातत्य नैतिक कथा साहित्य में बना रहा। अलङ्कृत गद्य शैली का रूप हमें सुबन्धु, दण्डी एवं बाणभट्ट तथा परवर्ती गद्यकाव्यकारों की गद्यकृतियों में देखने को मिलता है।

अध्ययन की दृष्टि से संस्कृत–गद्य–काव्य के विकासक्रम को निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं–

(1) वैदिक रूप

(2) शास्त्रीय रूप

(3) पौराणिक रूप

(4) साहित्यिक रूप

शास्त्रीय गद्य –

वैदिक सूत्रग्रन्थों की परम्परा में ही शास्त्रीय गद्य का विकास हुआ। भारतीय दर्शन भी इसी पद्धति पर विकसित हुए। समस्त संस्कृत व्याकरण भी इसी सूत्र शैली में विकसित हुआ। इन सूत्र ग्रन्थों की दुर्वोधता को दूर करने के लिये भाष्यों की रचना हुई। यास्क का निरुक्त, शंकराचार्य का शारीरिक भाष्य, न्यायमंजरी इत्यादि बहुत लोकप्रिय रहा। अलंकार शास्त्र और कौटिल्य का अर्थशास्त्र भी शास्त्रीय गद्य के उदाहरण हैं। शंकराचार्य के गद्य की सुषमा निराली है। उनके वाक्य सारगर्भित, प्रौढ़ तथा प्राञ्जल हैं। वाचस्पति मिश्र जैसे विद्वानों ने उसे यथार्थतः गम्भीर कहा है। उनके गद्य मे ंवीणा की मधुर झंकार सुनाई पड़ती है।

पौराणिक गद्य –

वैदिक गद्य तथा लौकिक संस्कृत के गद्य को मध्य में मिलाने का कार्य पौराणिक गद्य करता है। यह गद्य नितांत आलंकारिक तथा प्रासादिक है। श्रीमद्भागवत तथा विष्णु पुराण का गद्य यत्र–तत्र मिल जाता है। इसमें साहित्य गद्य का समग्र सौन्दर्य विद्यमान है। वैदिक गद्य के समान इसमें भी लघुबन्धों का प्रयोग किया जाता है। भाषा का स्वाभाविक प्रवाह भी मिलता है। भागवत का गद्य तो नितान्त प्रौढ़, अलंकृत तथा भावभिव्यञ्जक है।

'यथैव व्योम्नि वह्निपिण्डोपमं त्वामहमपश्यं तथैवाद्याग्रतो गतमप्यत्र भगवता किञ्चिन्न प्रसादीकृतं विशेषमुपलक्षयामीत्येवमुक्ते भगवता सूर्येण निजकण्ठादुन्मुच्य स्यमन्तकं नाम महामणिवरमवतार्यैकान्ते न्यस्तम्।

(विष्णु पुराण 4/13/14)

साहित्यिक गद्य –

संस्कृत में गद्यात्मक कथाओं का उदय विक्रम से लगभग चार सौ वर्ष पूर्व हुआ था। कात्यायन ने 4/2/60 सूत्र के अपने वार्तिक **"आख्यानाख्यातिकेतिहास–पुराणेभ्यश्च"** में आख्यान और आख्यायिका का अलग–अलग वर्णन किया है।

(1) आख्यान – काल्पनिक कथा

(2) आख्यायिका – व्यक्तिमूलक या ऐतिहासिक कथा।

पतञ्जलि ने 'आख्यायिका' शब्द की व्याख्या करते हुये तीन–तीन आख्यायिका ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

(1) वासवदत्ता

(2) सुमनोत्तरा

(3) भैमरथी

शूद्रक कथा, वृहत्कथा कादम्बरी, दशकुमार चरित संस्कृत गद्य काव्य का निखरा रूप हमें दण्डी के दशकुमार चरित से मिलना प्रारम्भ होता है। सुबन्धु कृत वासवदत्ता अलंकृत और श्लेष प्रधान शैली का परिचायक है। बाणकृत–हर्षचरित और कादम्बरी गद्य शैली के सर्वोत्कृष्ट रूप हैं।

परवर्ती गद्य कवियों में ये प्रमुख हैं। धनपाल, अम्बिकादत्त व्यास, पण्डित क्षमाराव, डा0 रामशरण त्रिपाठी आदि।

12.3.2 कथा और आख्यायिका में भेद –

गद्य साहित्य के मुख्यतः दो भेद किये गये हैं। कथा और आख्यायिका।

कथा एवं आख्यायिका में भेद विवेचन करने से पूर्व इन दोनों के स्वरूप पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने आपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ साहित्य दर्पण में कथा एवं आख्यायिका दोनों के स्वरूप बतायें हैं। वे कहते हैं कि, सरस गद्य में कथा की रचना होनी चाहिये। उस गद्य में कहीं–कहीं आर्या, वक्त्र तथा अपर वक्त्र छन्दों का भी निवेश किया जाना चाहिये। प्रारम्भ में पद्यमय नमस्कार एवं दुष्टों का चरित भी हुआ करता है। उदाहरण के रूप में कादम्बरी को देते हैं –

कथायां सरसं वस्तु गयैरेव विनिर्मितम्।
क्वचिदत्र भवैदाया क्वाचिद्वक्त्रापवन्त्रके।
आदौ पाद्यैः नमस्कारः खलादेवृत्तिकीर्तिनम्। (यथा कादम्बयौदि)

कथा एवं आख्यायिका के स्वरूपाधायिका उक्तकारिकाओं में आचार्य विश्वनाथ ने इसमें भेद का भी सङ्केत कर दिया है। पूर्ववर्ती काव्य शास्त्रीय आचार्यों, यथा भामह, दण्डी आदि को अपने–आपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में कथा एवं आख्यायिका में कतिपय भेद बताये हैं, जिन्हें हम निम्न रूप में देख सकते हैं।

1–कथा कवि कल्पित होती है जबकि आख्यायिका इतिवृत्त पर अवलम्बित होती है।

2–कथा में वक्ता स्वयं नायक अथवा अन्य कोई होता है जबकि आख्यायिका में नायक स्वयं ही वक्ता होता है। आख्यायिका को आत्मकथा भी कहा जा सकता है।

3–आख्यायिका उच्छवासों में विभक्त होती है और उसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द के पद्यों का समावेश होता है।

4–कथा वर्णनात्मक होती है जिसमें कन्याहरण, संग्राम, विप्रलम्भ, सूर्योदय, चन्द्रोदय, संध्या, रात्रि आदि का विस्तृत वर्णन होता है परन्तु आख्यायिका में ऐसे वर्णन को महत्व नहीं प्राप्त होता है।

5–आख्यायिका प्रायः भावात्मक शैली में लिखी जाती है। कथा में कुछ विचार विशिष्ट सांकेतिक शब्दों का प्रयोग होता है जबकि आख्यायिका में ऐसे शब्द प्रयुक्त नहीं होते हैं।

6– कथा संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश– किसी में भी लिखी जा सकती है, जबकि आख्यायिका संस्कृत में ही लिखी जाती है।

आख्यायिका भी कथा के समान होती है। इसमें कविवंश का वर्णन हुआ करता है। कहीं–कहीं पर अन्य कवियों की चर्चा भी होती है। कहीं–कहीं पद्य का भी सन्निवेश हुआ करता है। आख्यायिका के कथाभागों का का नाम 'आश्वास' (उच्छवास) होता है। आर्या, वक्त्र, अपर वक्त्र के माध्यम से अन्योक्ति द्वारा आश्वास के प्रारम्भ में ही भावी कथा की सूचना दी जाती है। आचार्य ने हर्षचरित को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया है–

आख्यायिका कथावत्स्याद् कवेर्वंशनुकीर्तनम्।

अस्यामन्य कवीनां च वृत्तं पद्यं क्वचित्क्वचित्।

कथांशानां व्यवच्छेद आश्वास इति बध्यते आर्या वक्त्रापवक्त्राणां छन्दस्त येन केनचित्।

अन्यापदेशेनाश्वास मुखे भाव्यर्थ सूचनाम्।। (यथा हर्षचरितादि)

इस प्रकार कथा एवं आख्यायिका में भेद–विवेचन विषयक उक्त बातों से यह कहा जा सकता है कि इनमे कोई मौलिक भेद नहीं है, तथापि कतिपय अन्तर अवश्य है।वस्तुतः दण्डी इन दोनों भेदों की एक गद्यरूप जाति को स्वीकार करते हैं–

"तत् कथाख्यामिकेत्यका जातिः सञ्जा द्वयाङ्किताः।"

महाकवि दण्डी

12.4 महाकवि दण्डी का व्यक्तित्व

संस्कृत–गद्य–साहित्य गगन में दण्डी न तो सूर्य की भाँति अलङ्कृत शैली के तेज से पाठक को चकाचौंध करते हैं और न ही जुगनू की तरह पाठक को फीका करते है, और अत्यधिक कृत्रिम गद्यशैली एवं पञ्चतन्त्र की सहज शैली के बीच एक मध्यमार्गीय शैली देते हुए दिखायी देते हैं। संस्कृत–गद्यकाव्य के लेखकों में वे अकेले लेखक हैं, जिसने तड़क–भड़क वाली शैली न अपनाकर यथार्थ शैली के पास अपने आपको रखा है। दण्डी के जीवन के विषय में अत्यल्प जानकारी प्राप्त होती है। इनके विषय जो कुछ जीवन–चरित्र सम्बन्धी जानकारी प्राप्त होती है, वह एकमात्र ग्रन्थ 'अवन्तिसुन्दरी' कथा के आधार पर ही उपलब्ध है। अन्यथा अन्य महाकवियों के समान ही महाकवि दण्डी के विषय में कोई स्पष्ट जानकारी नहीं उपलब्ध होती है। अवन्तिसुन्दरी कथा के अनुसार दण्डी किराताजुनीयम् महाकाव्य के रचयिता भारवि के प्रपौत्र थे। कविवर भारवि के तीन पुत्र हुए, जिसमें मनोरथ मध्यम पुत्र थे। मनोरथ के चार पुत्र हुए, वीरदत्त सबसे छोटे पुत्र और एक सुयोग्य दार्शनिक थे। वीरदत्त की पत्नी का नाम 'गौरी' था। कविवर दण्डी वीरदत्त और गौरी के पुत्र थे। बचपन में ही इनके माता और पिता की मृत्यु हो गई थी अतः कुछ दिनों तक ये निराश्रित रहकर इधर–उधर घूमते रहे। उसी समय एक चालुक्य राजा ने काञ्ची नगर पर आक्रमण करके लूटपाट आरम्भ कर दिया, जिससे आत्मरक्षार्थ दण्डी को भी काञ्ची त्यागना पड़ा। काफी समय तक इधर–उधर भटकते हुए दण्डी उच्च शिक्षा की प्राप्ति में लगे रहे। जब राजा नरसिंह वर्मा प्रथम ने पुन काञ्ची पर अधिकार किया, तब महाकवि दण्डी भी काञ्ची वापस लौट आये। वहीं उन्होंने **'अवन्तिसुन्दरीकथा'** ग्रन्थ की रचना की।

'अवन्तिसुन्दरीकथा' ग्रन्थ और **दशकुमार चरित** महाकवि दण्डी की ही रचना मानी जाती है। इस सम्बन्ध में एन0 रंगाचार्य ने एक किवदन्ति का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार राजा के पुत्र को शिक्षा देने के लिये दण्डी ने **'काव्यादर्श'** ग्रन्थ की भी रचना की थी। काव्यादर्श के प्राचीन टीकाकार तरुण वाचस्पति की सम्मति में दण्डी ने एक प्रहेलिका में काञ्ची तथा वहां के शासक पल्लवनरेशों की ओर इंगित किया हैं।

नासिक्यमध्या परितश्चतुर्वर्णविभूषिता।

अस्ति कांचित् पुरी यस्यामष्टवर्णाह्वया नृपाः।।

महाकवि दण्डी ने 'काव्यादर्श' में महाराष्ट्रीय प्राकृत और वैदर्भी रीति की प्रशंसा की है। दशकुमारचरित में दण्डी ने काञ्ची नगर कावेरीपत्तन, आन्ध्र, चोल, कलिंग आदि प्रदेशों के साथ विन्ध्याटवी का अत्यधिक वर्णन किया है। विश्रुत की कथा में विन्ध्यवासिनी देवी का विस्तृत वर्णन किया है। दशकुमारचरित में दक्षिण में प्रचलित सामाजिक एवं पारंपरिक परिपाटियों का भी वर्णन मिलता है। इस आधार पर दण्डी को दक्षिणात्य मानना उचित प्रतीत होता है।

12.5 महाकवि दण्डी का समयकाल–

प्रायः किसी भी कवि का समय को जानने के लिये पूर्व सीमा एवं अपरसीमा का निर्धारण किया जाता है। दण्डी के समय निर्धारण में भी हमें पूर्वसीमा एवं अपर सीमा का महत्त्वपूर्ण योगदान मिलेगा।

नवम शताब्दी के ग्रन्थों में दण्डी का नामोल्लेख पाये जाने के निश्चित है कि उनका काल उक्त शताब्दी के बाद का नहीं होगा। दण्डी ने काव्यादर्श में प्राकृत काव्य 'सेतुबन्ध' का उल्लेख किया है– ''सागरः सूक्तिरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्'' (काव्यादर्श परिच्छेद0–1–34) बाण ने हर्षचरित की भूमिका में सेतुबन्ध काव्य को प्रवरसेन की प्रसिद्ध कृति माना है। सम्राट प्रवरसेन का समय 284 ई0 से 344 ई0 तक माना जाता है। कुछ विद्वान् इसको सेतुबन्ध का लेखक मानते हैं। यह समय दण्डी की पूर्व सीमा है।

काव्यादर्श के अनुसार सिंघली भाषा के अलंकार ग्रन्थ 'सिय–वस–लंकार' (स्वभाषालंकार) है। इसके रचयिता राजा सेन प्रथम का समय 846 से 866 ई0 का है। अतः दण्डी का समय 9वीं शताब्दी प्रथम चरण के बाद का नहीं हो सकता। इससे भी पहले के कन्नड भाषा के अलंकारग्रन्थ 'कविराजमार्ग' में काव्यादर्श की यथेष्ट छाया देखी गई है। इसके लेखक अमोघवर्ष का समय 815 ई0 वर्ष पूर्व के आस–पास माना गया है। अतः दण्डी का समय इससे पूर्व का होना चाहिये।

रानी विजयांका (प्रचलित नाम विज्जिका) ने अपने प्रसिद्ध श्लोक में दण्डी के 'सर्वशुक्ला सरस्वती' पर कठोर व्यङ्ग्य करते हुये कहा है कि, दण्डी` नील कमलदल श्यामल मुझ विज्जिका को नहीं जानता था। अतः उन्होंने सरस्वती को 'सर्वशुक्ला' कहा है। यदि विज्जिका पुलकेशी द्वितीय 634 ई के पुत्र चन्द्रादित्य (660 ई0 लगभग) की पत्नी विजयभट्टारिका ही हो, तो उनका समय 660 ई0 के लगभग होगा और दण्डी का समय इससे पूर्व 600 ई0 के लगभग माना जाता है। दण्डी को बाणभट्ट आदि से पूर्ववर्ती मानने के कुछ विशेष निम्न कारण माने जाते हैं–

(1) दण्डी की भाषा सर्वथा प्रसादगुणयुक्त है। इसमें बाण, सुबन्धु आदि की कृत्रिमता नाममात्र की भी नहीं है। बाण के पूर्ववर्ती के लिये आवश्यक था कि वह प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिये बाण जैसी रीति परंपरा का आश्रय लेता।

(2) दशकुमारचरित में जिस सामाजिक व्यवस्था का चित्रण है, वह गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद हर्ष के शासनकाल से पूर्व की अवस्था का सूचक है। इन सभी घटनाओं को जोड़ते हुए दण्डी का समय 600 ई0 के लगभग मानना उचित है।

12.6 महाकवि दण्डी का कर्तृत्व

महाकवि दण्डी की निम्नलिखित कृतियां मिलती हैं।

1) दशकुमार चरित

2) काव्यादर्श

3) अवन्तिसुन्दरी कथा

4) छन्दोविचित

5) कलापरिच्छेद

6) द्विसंन्धानकाव्य

राजशेखर ने इस प्रख्यात पद्य में दण्डी के तीन प्रबन्धों के अस्तित्व का स्पष्ट निर्देश किया है।

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणा :।

त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः।।

12.6.1 दशकुमारचरित – सभी विद्वान इसको दण्डी की कृति मानते हैं। इस पर मतभेद मात्र इतना है कि, पूर्ण ग्रन्थ दण्डी की रचना है अथवा दण्डी की कृति केवल इसका मध्यभाग है। माना जाता है कि, पूर्वपीठिका और अन्त की संक्षिप्त उत्तरपीठिका दण्डी की रचना नहीं है। एक दूसरा मत यह है कि, मध्य भाग ही दण्डी की कृति है पूर्व और उत्तरपीठिका नहीं है। इसके समर्थकों में पाश्चात्य विद्वान ईग्लिग, अगाशे, विल्सन एवं कीथ आदि हैं। इनका तर्क है कि–

- पूर्व पीठिका में दी गई वंशावली आदि में अन्तर है।
- पूर्व पीठिका और उत्तर पीठिका की पांडुलिपियों में पर्याप्त पाठभेद हैं।
- शैली की दृष्टि से पूर्वपीठिका और मध्य भाग से कुछ शिथिल है।

दण्डी के गद्य में न तो सुबन्धु के तुल्य प्रत्यक्षरश्लेष' की योजना है और न ही बाण के तुल्य 'सरसस्वरवर्णपद' की कृत्रिमता है। कथाओं और उपन्यासों में प्रयुक्त मनोज्ञ शैली का इसमें अन्तर्भाव दिखलाई पड़ता है। भाषा की मधुरता, सरलता एवं सहज सुन्दरता नीरस में भी सरसता का आधान कर देती है।

12.6.2 काव्यादर्श – दण्डी की इस विश्रुतप्रबन्धत्रयी में काव्यादर्श निःसन्देह अनन्यतम रचना है। यह संभवतः उनकी परिपक्वावस्था की कृति है।जो अलङ्काशास्त्रीय प्रतिमानों पर लिखी गयी है। यह कृति आचार्य दण्डी को महान अलङ्कारिक की श्रेणी में लाकर खड़ा करती है। कवियों के मागदर्शन एवं काव्य–नियमों के आलेखन के सन्दर्भ में यह कृति लोकप्रिय है।

12.6.3 अवन्तिसुन्दरीकथा – ऐसा माना जाता है कि, यह दण्डी की कृति नहीं हैं। हाँ, कुछ विद्वान् मानते हैं कि, किसी अन्य कवि ने 'दण्डी' उपनाम से बाद में यह ग्रन्थ लिखा होगा। इसमें दशकुमारचरित की पूर्व पीठिका को आधार माना गया है। अतः इससे अनुमान लगाना सहज हो जाता है कि, अवन्तिसुन्दरी ही दण्डी की विश्रुत कथा है जिसका सारांश किसी अन्य कवि ने दशकुमारचरित की पूर्व पीठिका के रूप में निबद्ध किया है। अवन्तिसुन्दरी बहुत ही उदात्त शैली में विरचित कथा है, जबकि, वर्ण्य विषय के अनुसार शैली में अन्तर पाया जाता है।

12.6.4.5 छन्दोविचिति एवं कला परिच्छेद –

काव्यादर्श में दण्डी ने 'छन्दोविचिति' और 'कलापरिच्छेद' का उल्लेख किया है। जैसा कि निम्नलिखित श्लोक से ज्ञात होता है।

पद्यं चतुष्पदी तच्च, वृतं जातिरिति द्विधा।
छन्दोविचित्यां सकलस्तप्रपञ्चो निदर्शितः।। (काव्यादर्श परिच्छेद1–11,12)

उपयुर्क्त श्लोक से ज्ञात होता है कि, छन्दोविचिति छन्दों का विवरण दिया गया था। यह कोई बृहद्ग्रन्थ न होकर अत्यन्त लघुकाय ग्रन्थ रहा होगा, या फिर काव्यादर्श का परिशिष्ट रहा होगा।

इत्थं कलाचतुःषष्टिविरोधः साधु नीयताम्।
तस्याः कलापरिच्छेदे रूपमाविर्भविष्यति।। (काव्यादर्श–परिच्छेद 3–171)

उपर्युक्त श्लोक **के "आविर्भविष्यति"** से ज्ञात होता है कि, 64 कलाओं की स्वतन्त्र व्याख्या के लिये कलापरिच्छेद की रचना की योजना की गई थी। संभवतः यह भी छान्दोविचिति की तरह पुस्तिका के रूप में रही होगी।

12.6.6 द्विसंन्धान काव्य– भोज के "शृङ्गार प्रकाश" में दण्डी की एक कृति 'द्विसन्धान–काव्य' का उल्लेख मिलता है। परन्तु उससे यह भी ज्ञात होता है कि, वे इस विषय में पूर्ण आश्वस्त नही थे।

12.7 दशकुमार चरित की संक्षिप्त कथा–

मगध की राजधानी पुष्पपुरी (वर्तमान पटना) पर राजहंस का शासन था। उसके दरबार में तीन मन्त्री थे। धर्मपाल, पदमोद्भव और सितवर्मा। इसमें से धर्मपाल के सुमन्त्र, सुमित्र और कामपाल और पद्मोद्भव के सुश्रुत तथा रत्नोद्भव एवं सितवर्मा के सुमति और सत्यवर्मा पुत्र थे। इसमें से कामपाल यायावर थे और वे घर का त्याग करके चले गये थे। रत्नोद्भव ने समुद्री व्यापार को अपनाया था। सत्यवर्मा संसार की असारता से खिन्न होकर तीर्थयात्रा पर चले गये। शेष चार मन्त्रिपुत्र सुमन्त्र, सुमित्र, सुश्रुत और सुमति बड़े होकर राजहंस के मन्त्री बने। राजहंस सर्वथा सुखी होने पर भी सन्तानहीनता के कारण बहुत चिन्तित थे।

मालव नरेश मानसार ने एक बार मगध पर आक्रमण किया। वह परास्त होकर बन्दी बनाया गया। राजहंस ने दया करके उसे मुक्त कर दिया। उसका राज्य भी उसको वापस कर दिया। पराजित मानसार ने शिव की आराधना से एक गदा प्राप्त की और पुनः राजहंस पर चढ़ाई की। इसबार मानसार की जीत हुई। घायल राजहंस वन में पहुंचे। मन्त्रियों सहित रानियां वन में पूर्व में ही सुरक्षित पहुंच गईं थी। वे पति को लापता समझकर सती होने की तैयारी कर रही थीं और विलाप कर रही थीं। तभी राजहंस ने वहां पहुंचकर उन सभी को बचा लिया। राजहंस ने स्वस्थ होकर वामदेव नामक एक तपस्वी की सेवा की और उनको अपनी दुःख भरी गाथा सुनाई। ध्यान लगाकर वामदेव ने बताया कि राजहंस को एक पुत्र होगा। वह अपने साथियों के साथ विजय अभियान करके खोया राज्य पुनः प्राप्त करेगा। वह अपने शत्रुओं का नाश करेगा। वामदेव की भविष्यवाणी सही सिद्ध हुई। राजा को एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राजवाहन रखा गया। लगभग इसी समय चार मन्त्रियों के चार पुत्र हुये। उनके नाम मित्रगुप्त, मन्त्रगुप्त, विश्रुत और प्रमति रखे गये। राजहंस राजवाहन सहित इन चार मन्त्रिपुत्रों का भी पालन करने लगे। तभी उनके यायावर पुत्र कामपाल का पुत्र अर्थपाल, समुद्री व्यापार पर गये। रत्नोदभव का पुत्र पुष्पोद्भव और तीर्थयात्रा पर गये। सत्यवर्मा के पुत्र सोमदत्त अपने पिताओं के विभिन्न दुर्घटनाओं में ग्रस्त हो जाने के कारण राजहंस के पास वापस लाये गये।

इसी समय राजहंस को ज्ञात हुआ कि, मानसार के साथ युद्ध में उनके हारने से खिन्न उनका मित्र मिथिला नरेश प्रहारवर्मा हताश होकर अपने परिवार के साथ राज्य की ओर लौट रहा था। मार्ग में शबरसेना ने आक्रमण करके उसको मार दिया। रानियां विमुक्त हो गईं। उस विपन्न अवस्था में रानियां दो पुत्रों को जन्म देकर दिवगंत हो गईं। वे दोनों बालक उपहार वर्मा और अपहार वर्मा राजहंस के पास लाये गये। इस प्रकार राजहंस ने दस कुमारों (एक अपना पुत्र और 6 मन्त्री पुत्रों सहित प्रहार वर्मा के दो पुत्रों) का पालन किया। ये दसों कुमार बड़े होकर दिग्विजय के लिये निकले। अपने अभियान के लिये सभी एक–दूसरे से अलग हो गये। अन्त में एक–एक करके सभी राजकुमार राजवाहन को मिलते गये और अपनी विजय गाथा सुनाते रहे। इस साहसिक विजय गाथा का वर्णन 'दशकुमारचरित' में किया गया है।

पूर्व पीठिका में पांच उच्छ्वास हैं, जिनमें क्रमशः राजवाहन का जन्म(कुमारोत्पत्ति) मन्त्रिपुत्रों का जन्म (द्विजोपकृतिः) सोमदत्त के साहसिक कार्य (सोमदत्त चरितम्)पुष्पोदभवचरितम् तथा राजवाहन का

अवनितसुन्दरी के परिणय (अवन्तिसुन्दरी परिणयः) का वर्णन है। उत्तर पीठिका ग्रन्थ का उपंसहार है। इसमें वर्णन किया गया है कि सभी राजकुमार राजहंस और वसुमती सें मिलते हैं। राजहंस दशों कुमारों को अपने जीते हुये राज्य सौंपकर वानप्रस्थ स्वीकार करते हैं और दसो कुमार नीति पूर्वक राज्यों का शासन करते हैं।

12.8 दण्डिनः पदलालित्यम् –

महाकवि दण्डी की प्रसिद्धि पदलालित्य के लिये विशेष है और उनकी यही विशेषता उनके काव्य में गौरव–गरिमा की अभिवृद्धि करती है। उनकी भाषा में सुकुमारता, कोमलता, परिष्कार, प्रांजलता, प्रसाद और माधुर्य के गुण हैं। दशकुमार चरित पढ़ने पर पाठक को यह अनुभूति होती है कि वह कुछ सरस रचना का रसास्वादन कर रहा है। जीवन की अनुभूतियां आंखों के सामने उतर आती हैं। पाठक कवि को अपने एक अंतरंग से मित्र सा अनुभव करता है। सहृदय पाठक के चित्त को विशेष रूप से आकर्षित करती है। वस्तुतः महाकवि दण्डी सुगम एवं मनोरम शैली के आचार्य कवि हैं। उनकी गद्यशैली बड़ी ही सुबोध, सरल और प्रवाहमयी है। उनका गद्य न तो श्लेष के बोझ से कहीं दबा है और न ही कहीं पर समास के प्रहार से पीड़ित है। उनका गद्य दिन–प्रतिदिन के व्यवहार योग्य, सजीव और चुस्त है। पद योजना से कवि वर्ण्य–विषयों का एक शब्द चित्र प्रस्तुत कर देता है। दण्डी के वाक्य प्रायः लघु होते हैं, इसके अतिरिक्त रसाभिव्यक्ति, शब्द विन्यास की चारूता, शब्दों की ध्वनि भावानुरूप एवं मधुर है।

राजा राजहंस और उसकी पत्नी वसुमती के वर्णन में द्राक्षारसभरित कवि की वाणी दर्शनीय है, यथा–

"अनवरतयागदक्षिणारक्षितशिष्टविशिष्टविद्यासंभारभासुरभूसुर, निकर....राजहंसो नाम धनदर्पकन्दर्प सोदर्यहृद्यनिरवद्यरूपो भूपो बभूव।' (पूर्व उच्छवास–1)

उक्त स्थल पर कवि ने अनुप्रास से अलङ्कृत श्रुतिसुखद ललित पदों की योजना कर काव्य में पदलालित्य का सुन्दर सन्निवेश किया है। राजहंस की रानी वसुमती ललना कुलललामभूता थीं,उसका परिचय देते हुए कवि कहता है कि

तस्य वसुमती नाम सुमती लीलावतीकुलशेखरमणि रमाणी बभूव।"

पदलालित्य के लिये दण्डी का निम्नांकित स्थल अत्यधिक प्रसिद्ध है, जहां दिग्विजय के लिये प्रस्थान करने के इच्छुक राजकुमारों के वर्णन में यमक अलङ्कार से अलङ्कृत भाषा में किया है।

"कुमारा माराभिरामा रामाद्यपौरुषा भस्मीकृतारयो रयोपहसितसमीरणा रणाभियानेन यानेनाभ्युदयाशंसं राजानमकार्षु ।" (पूर्व उत्तर 2)

अर्थात् कामदेव के तुल्य सुन्दर, रामादिवत बली, क्रोध से श.त्रुओ को भस्म करने वाले, वेग में वायु का उपहास करने वाले राजकुमारों में दिग्विजयार्थ प्रस्थान के द्वारा राजा के अभ्युदय की सूचना दी।

राजा धर्मवर्धन की पुत्री के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये कवि लिखता है–**"तस्य दुहिता प्रत्यादेश इव श्रियः, प्राणा इव कुसुमधन्वनः" सौकुमार्य विडम्बितनवमालिका,नवमालिका नाम कन्यका।**"'नवमालिका पद की पुनरावृत्ति एवं कन्या को कुसुमधन्वा का प्राण आदि में पदलालित्य एवं बाला का लालित्य भी सूचित होता है। पर्वत का वर्णन करते समय कवि हृदय पदलालित्य का व्यामोह नहीं छोड़ सका है–

> **" अहो रमणीयोऽयं पर्वतनितम्बभागः कान्ततरे्यं गन्धपाषाणवत्युपत्यका शिशिरमिदमिन्दीवरराविन्द मकरन्दबिन्दुचन्द्रकातां गोत्रवारि रम्याऽयनेके–वर्ण कुसुमञ्जरी भरस्तरुवनाभोगः।"**

शय्या पर शयन करती हुई राजकन्या का यह वर्णन कवि की सूक्ष्म दृष्टि एवं वर्णन–वैदग्ध्य को सूचित करता है–

" अवगाह्य कन्यान्तःपुरं प्रज्वलत्सुमणिप्रदीपेषु–कुसुमलवदुरित– पर्यन्ते पयङ्कतले.......ईषाद्विवृतमधुरगुल्मसन्धि, आभुग्नश्रोणि मण्डलम् अतिश्लिष्ट चीनांशुकान्तरम्, अनतिवलिनानुतरेदरम् अर्धलक्ष्णधरकर्णपाशानिभृत कुण्डलम्, आमोलितलोचननेन्दीवरम्, अविभ्रान्त भूपतालकम्...........चिरविलसनखेरनिश्यचलां शरदम्भोधरोत्सङ्गशायिनीभवसौदामिनी राजकन्यामपश्यत्।"

आचार्य महाकवि दण्डी ने अपने ग्रन्थ में पदलालित्य सन्निवेश में पूर्णतः सफलता प्राप्त की है। यहीं नहीं 'दशकुमारचरितम्' की उत्तरपीठिका के सप्तम उच्छवास में दण्डी ने अपना एक नवीन चमत्कार दिखाया है। पूरे उच्छवास में एक ओष्ठय वर्ण का प्रयोग नहीं है। फिर भी शैली आयाससाध्य नहीं है शब्द सौष्ठव एवं लालित्य में न्यूनता नहीं आयी है। भाषा में प्रवाह एवं वही स्वाभाविकता है– **जैसे**

" याते च दिनत्रये अस्तगिरिशिखरगैरिकतट साधारणच्छायतेजसि अचलराजकन्यकाकदर्थन यानितरिक्षाख्येन शङ्करशरीरेण संसृष्टायाः सन्ध्याङ्गनायाः रक्तचन्दनचार्चितैकस्तनकलदर्शनीये दिनाधिनाथे जनाधिनाथः स आगत्य जनस्यास्य धरणिन्यस्तचरणनखकिरणच्छादितकिरीटः कृताञ्जलिरतिष्ठत्। आदिष्टश्च 'दिष्टया दृष्टेष्टसिद्धि। इह जगति हि न निरीहं देहिन श्रियः संश्रयते श्रेयांसि च सकलान्यनलसानां हस्ते नित्यसान्निध्यानि।।

उक्त अनके उद्धरणों के साथ विवेचन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि दण्डी के काव्य में अनुप्रास, माधुर्य, योजना सौष्ठव, रम्यवर्णन, युक्ति–प्रयुक्ति से प्रशस्त पद–पद उक्त अनके उद्धरणों के साथ विवेचन करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि दण्डी के काव्य में अनुप्रास, माधुर्य, योजना सौष्ठव, रम्यवर्णन, युक्ति–प्रयुक्ति से प्रशस्त पद–पद पर पदलालित्य दिखायी देता है। यही उनके काव्य में कमनीयता का आधान करता है, इसलिये समीक्षकों का यह कथन 'दण्डिनः पदलालित्यम्' समीचीन ही है। साथ ही दण्डी भाषा को देखकर सजाना भी नहीं भूलते। उनकी सरलता एवं सुबोधता को देखकर किसी समीक्षक ने तो यहां तक कह दिया कि– **"कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, कविर्दण्डी, न संशयः"**

महाकवि सुबन्धु

12.9 महाकवि सुबन्धु का जीवनवृत्त

सुबन्धु के जीवन की कोई प्रमाणिक सूचना अंतःसाक्ष्य या बहिःसाक्ष्य से प्राप्त नहीं होती है। उनके समय और स्थान का परिचय कुछ अनुमानों पर ही आधारित है। कोई इन्हें कश्मीरी, कोई मध्यदेशीय मानता है। बाणभट्ट की काव्यशैली की परिभाषा को यथार्थ माने तो सुबन्धु को कश्मीरी मानना चाहिये। बाणभट्ट के द्वारा प्रशंसित किये जाने के कारण ये बाण से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं।

गद्य काव्य के लेखकों में सुबन्धु ही सर्वप्रथम लेखक हैं, जिनका ग्रन्थ अलंकृत शैली में निबद्ध गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। सुबन्धु ने अपने काव्यग्रन्थ के प्रारम्भ में सरस्वती की स्तुति के बाद दो श्लोकों में कृष्णस्तुति और एक श्लोक में शिवस्तुति की है। अतः उन्हें सहिष्णु समन्वयवादी धार्मिक भक्त कहा जा सकता है। वासवदत्ता के अध्ययन से ज्ञात होता है कि, वे काव्यशास्त्र के अतिरिक्त वेद, धर्मशास्त्र, दर्शन, नीति, पुराण, कामशास्त्र और संगीत आदि के ज्ञाता थे।

12.10 महाकवि सुबन्धु का कर्तृत्व –

सुबन्धु की एकमात्र रचना 'वासवदत्ता' प्राप्त होती है। सुबन्धु की इस 'वासवदत्ता' का सम्बन्ध प्राचीन भारत की प्रसिद्ध आख्यायिका 'वासवदत्ता' तथा उदयन की प्रणय कहानी से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह पूरा कथानक कवि की अपनी कल्पना है।

12.11 वासवदत्ता की संक्षिप्त कथा –

राजा चिन्तामणि का पुत्र राजकुमार कन्दर्पकेतु स्वप्न में एक अंत्यन्त सुन्दरी कन्या को देखता है। जिसकी खोज में अपने मित्र मकरन्द के साथ वह निकल पड़ता है। रात में विन्ध्य की तलहटी में वृक्ष के नीचे ठहरता है। पेड़ पर बैठी हुई सारिका से पता चलता है कि, पाटिलपुत्र की राजकुमारी ने स्वप्न में कन्दर्पकेतु को देखा है। जिसको खोजने के लिये उसकी सारिका तमालिका निकली है। इस शुक्र जोड़े सारिका की सहायता से वासवदत्ता और कन्दर्पकेतु का मिलन होता है। दोनों के हृदय में आपस में गाढ़ा अनुराग है, परन्तु वासवदत्ता का पिता शृङ्गारशेखर उसका विवाह किसी विद्याधर से करना चाहता है। इस अड़चन के कारण दोनों प्रेमी एक जादू के घोड़े पर चढ़कर भाग जाते हैं और विन्ध्य पर्वत पर पहुंचते हैं। एक बार वासवदत्ता और कन्दर्पकेतु को सोता हुआ छोड़कर वन में घूमने जाती है। वहां पर उसको पाने के लिये किरातों के दो गुटों में लड़ाई होती है। वासवदत्ता चुपके से एक ऋषि के आश्रम में चली जाती है। आश्रम में ऋषि के श्राप से वह शिला बन जाती है। उधर जागने के बाद कन्दर्पकेतु वासवदत्ता के वियोग में आत्महत्या करने की सोचता है, परन्तु आकाशवाणी उसे आत्महत्या करने से रोकती है और दोनों के पुनर्मिलन का आश्वासन देती है। कुछ समय बाद वह वासवदत्ता को खोज निकालता है। जो उसके छूते

ही मानुषी का रूप धारण कर लेती है। उसी समय कन्दर्पकेतु का मित्र मकरन्द वहां आ जाता है। तीनों राजधानी लौट आते हैं और सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

12.11 महाकवि सुबन्धु का समय –

सुबन्धु के समय के बारे में कोई प्रमाणिक जानकारी नहीं मिलती है। इनको बाणभट्ट का पूर्ववर्ती माना जाता है।

(1) डा0 कीथ, डा0 एस0 के0 डे और डा0 काणे आदि सुबन्धु को बाण से पूर्ववर्ती मानते हैं जबकि डा0 पीटर्सन आदि बाण को सुबन्धु का पूर्ववर्ती मानते हैं।

(2) हर्षवर्धन का सभापण्डित होने से बाणभट्ट का समय 630–640 ई0 मानना उचित लगता है। यहां स्मरण रखना चाहिये कि, दण्डी, सुबन्धु और बाण ये तीनों ही महाकवि गद्यकार 550 ई0 से 650 ई0 के मध्य हुए हैं। अतः प्रायः एक दूसरे से बहुत कम अन्तर से ये तीनों सम–सामायिक हैं।

(3) काव्यशैली, गद्यशैली विकास आदि की दृष्टि से सुबन्धु और बाणभट्ट का यह क्रम माना जाता है।

(4) वासवदत्ता में एक श्लेष के वर्णन में न्यायवर्तिकाकार, उद्योतकर और बौद्धसंगत्यलंकार के कर्ता धर्मकीर्ति का उल्लेख मिलता है। 'न्यायस्थितिभिवोद्योतकारस्वरूपाम।' इनका (उद्योतकर) का समय छठी शताब्दी का अन्त और सप्तम शताब्दी का आदि माना जा सकता है। इसलिये सुबन्धु का समय उद्योतकर के आसपास का माना जाता है। अतः सुबन्धु का समय 600 ई0 पूर्व के पहले का नही है।

(5) महाकवि बाणभट्ट (620 से 640 ई0) ने हर्षचरित्र में स्पष्ट रूप से 'वासवदत्ता' ग्रन्थ का उल्लेख किया है और इसको कवित्व के गर्व का नाशक बताया है। कादम्बरी में अद्वितीय कथा कहकर दो कथाग्रन्थों (बृहत्कथा और वासवदत्ता) से कादम्बरी को श्रेष्ठ बताया गया है।

(6) वाकपतिराज (640 ई0 के लगभग) ने अपने प्राकृतकाव्य 'गउडवहो' में सुबन्धु का उल्लेख किया है। किन्तु बाण का नहीं। इससे प्रतीत होता है कि उस समय तक बाण को उतनी प्रसिद्धि नहीं मिली थी।

(7) वामन ने (850 ई के लगभग) अपनी काव्यालंकारसूत्रवृत्ति में वासवदत्ता और कादम्बरी दोनों से उद्वरण दिय गये है।

(8) कविराज (1200 ई0) ने 'राघवपाण्डवीयम' में सुबन्धु के बाद बाणभट्ट का नामोल्लेख करते हुये अपने आपको तीसरा वक्रोक्ति निपुण कवि बताया है।

उपर्युक्त तथ्यों में सभी स्थलों पर सुबन्धु को बाण से पूर्व रखा गया है। इसीलिये छठी शताब्दी का अन्त उनका समय निर्णीत किया जाना उचित ही है।

12.12 महाकवि सुबन्धु की गद्यशैली –

सुबन्धु संस्कृत गद्यकारों में अपना अनुपम स्थान रखते हैं। वे अपनी रचना–कुशलता, काव्यगौरव और प्रखर पाण्डित्य के लिये विख्यात है। उनकी रचना 'वासवदत्ता' प्रौढ़ पाण्डित्य की कसौटी पर खरी उतरती है। अत एव वे संस्कृत गद्यकारों की 'बृहत्रयी' में गिने जाते हैं। सुबन्धु नाना विधाओं, मीमांसा, न्याय, बौद्ध आदि नाना प्रकार के दर्शनों में नितांत प्रवीण थे। उन्होंने श्लेष और उपमा अलंकारों के प्रसंग में रामायण, महाभारत तथा हरिवंश की अनेक प्रसिद्ध एवं अल्पप्रसिद्ध घटनाओं का वर्णन कर अपनी विद्वता का परिचय दिया है। उनकी दृष्टि में सत्काव्य वही हो सकता है जिसमें अलंकारों का चमत्कार श्लेष का प्राचुर्य तथा वक्रोक्ति का सन्निवेश विशेष रूप से रहता है।

"सुश्लेषवक्रघटनापटु सत्काव्य विरचनमिव"

सुबन्धु का श्लेष–प्रयोग कलाकार की कलाकृति का प्रदर्शन करता है। विरोधाभास, परिसंख्या, उत्प्रेक्षा आदि के प्रयोग कवि की नई सूझ–बूझ और सूक्ष्म दृष्टि को प्रदर्शित करता है। उनकी रचना संगीतात्मक है, लयात्मक है और उसमें नाद सौन्दर्य है। यदि सुबन्धु ने एक ओर क्लिष्ट पदावली दी है तो दूसरी ओर कोमलकान्त पदावली का भी मिश्रण किया है। यदि एक ओर थकाने वाले श्लेष के प्रयोग हैं तो दूसरी ओर सुन्दर स्वाभावोक्ति और उत्प्रेक्षायें भी हैं एक ओर पाण्डित्य– प्रदर्शन है तो दूसरी ओर सरस पदावली। इन विरोधी गुणों के समन्वय के कारण वासवदत्ता में मणिकांचन संयोग प्राप्त होता है।

सुबन्धु काव्यशास्त्र, व्याकरण, दर्शन और पुराणों के विशेषज्ञ थे। अतएव पग–पग पर रामायण, महाभारत, हरिवंश पुराण आदि के अनेक कथानक और सन्दर्भ स्थान–स्थान पर वासवदत्ता में मिलते हैं। वे उत्तम काव्य में अलंकार, मुख्यतया, श्लेष प्रयोग और वक्रोक्ति का समन्वय आवश्यक मानते हैं। सुबन्धु के श्लेष प्रयोग मनोहर है– वर्षा के वर्णन में उनका श्लेष का सजीव वर्णन मिलता है–

"कुमारमयूर इव समारूढशरजन्मा, महातपस्वीव प्रशमितरजःप्रसरःलङ्केश्वर इव समेघनादः विन्ध्य इव घनश्यामः युवतिजन इव पीनपयोधरः समाजगाम वर्षासमयः।।" (वास–पृ0 246)

कार्तिकेय से अधिष्ठित कार्तिकेय के मोर के तुल्य सरकण्डों की अधिकता से युक्त, रजो गुण से रहित हो महातपस्वी की भांति, धूल को शान्त करने वाला, मेघनाद से युक्त रावण के समान मेघों के नाद से युक्त, विन्ध्यपर्वत के तुल्य बादलों से नीलवर्ण, पीनस्तनी युवतियों के तुल्य घने बादलों से युक्त वर्षा ऋतु आयी"। कितना मनोरम चित्रण किया है प्रकृति का।

विरोधाभास का सुन्दर प्रयोग भी देखते ही बनता है–

'धनदेनापि प्रचेतसा, गोपालेनापि रामेण, भरतेनापि लक्ष्मणेन, तिथिपरे माप्यतिथिसत्कारप्रवणेन, असंख्येनापि संख्यावता अमर्मभेदिनाऽपि वीरतरेण.... निवासिजनेनानुगतम'।

प्रकृति वर्णन में प्रभात वर्णन, सन्ध्या वर्णन और वर्षा वर्णन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें श्लेष, उपमा, उत्प्रेक्षा और अतिश्योक्ति अलंकार मुख्यतया दर्शनीय हैं। उन्होंने सन्ध्या का वर्णन भी बहुत अद्भुत ढंग से किया

'विद्रुमलतेव चरमार्णवस्य, रक्तकमलिनीव गगनतटाकस्य, काञ्चनकेतुरिव कन्दर्परथस्य......भिक्षुकीव तारानुरक्ता, रक्ताम्बरधारिणी, वारमुख्येव पल्लवानुरक्ता, बभ्रुरिव कपिलतारका भगवती सन्ध्या समदृश्यत। (वास0 पृ0 158–159)

वर्षा वर्णन में सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का संकलन है। बादलरूपी लकड़ी पर बिजली रूपी आरा चलने से बुरादारूपी जलकण शोभित होते हैं। ओले मानो दिग्वधू के टूटे हार के मोती है।

'जलददारूणि लोलतडिल्लताकरपत्रदारिते पवनवेग निर्धताश्चूर्ण निकरा इव जलकणा वभुः, विच्छिन्नदिग्वधूहारमुक्तानिकरा इव....... करका व्यराजन्त'। (वास0 पृ0 248–249)

स्थान–स्थान पर परिसंख्या मालादीपक यमक आदि अलंकारों का अद्भुत वर्णन देखने को मिलता है। सुबन्धु सरल सरस और मधुर पदावली के प्रयोग में भी उतने ही दक्ष हैं जैसे–

"अविदितगुणाऽपि सत्कवि भणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम।
अनधिगत परिमलाऽपि हि हरति दृशं मालती माला।।" (भूमिका श्लोक –11)

इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर बाण, वामनभट्ट बाण और कविराज ने सुबन्धु की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुये कहा है–

"कवीनामगल्द् दर्पो नूनं वासवदत्तया।
शक्त्येव पाण्डुपुत्राणां गतया कर्णगोचरम।। (बाण हर्षचरित, श्लोक 11)

12.13 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1– सुबन्धु की जीवनी लिखिए।

प्रश्न 2– सुबन्धु किसके समकालीन थे और उनके समय काल का उल्लेख कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1– सुबन्धु की रचना वासवदत्ता की कथा विस्तार से लिखिए।

प्रश्न 2– सुबन्धु की गद्यशैली का वर्णन कीजिए।

इकाई –13

महाकवि बाणभट्ट

13.1 महाकवि बाणभट्ट का जीवनवृत्त

महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित (प्रथम उच्छवास) और कादम्बरी (भूमिका श्लोक 10 से 20) में अपनी आत्मकथा और वंश परिचय आदि प्रामाणिक जीवनवृत्त दिया है। बाण का जीवनवृत्त अनुमान विवाद और अनुसंधान का विषय नहीं रहा है। हर्षचरित के उच्छवासों में बाण का आत्मवृत्त वर्णित हैं। उसके आधार पर उनके वंशज, माता–पिता एवं उनके बारे में पूर्ण जानकारी मिलती है। इनके वंश प्रवर्तक वत्स, सरस्वती के पुत्र सारस्वत के चचेरे भाई थे। वत्स वंश में कुबेर नामक महाविद्वान हुये। उनके अच्युत, पाशुपत आदि चार पुत्र हुये। पाशुपत के एकमात्र पुत्र अर्धपति थे। अर्थपति के चित्रभानु आदि ग्यारह पुत्र थे। चित्रभान के पुत्र वाणभट्ट थे। बाण के पुत्र भूषणभट्ट (कुछ विद्वानों के अनुसार पुलिनभट्ट या पुलिन्द) थे। बाण का पूरा वंश वेदादि शास्त्रों को महाविद्वान था। अतः शास्त्रीय विद्वता इन्हें पैतृक संपत्ति के रूप में मिली थी। बाल्यावस्था में ही इनकी माता का स्वर्गवास हो गया था। इनके पिता ने ही इनका पालन–पोषण किया। 14 वर्ष की आयु में इनके पिता का भी स्वर्गवास हो गया। इनके पूर्वजों का निवास स्थान सोन नदी (अब बिहार) के पास प्रीतिकूट नामक ग्राम था। अभिभावक के न रहने पर बाण बुरी संगतों में पड़ते चले गये। परन्तु कुछ वर्षों के बाद इनकी विद्वता के प्रभाव से श्रीहर्ष के प्रिय पात्र बन गये। श्रीहर्ष के संपर्क में आने के बाद उनकी संपत्ति और बढ़ी। वाण का जीवन अन्य साहित्य कवियों की अपेक्षा अधिक सम्पन्नता के साथ व्यतीत हुआ।

13.2 महाकवि बाणभट्ट का कर्तृत्व–

बाणभट्ट की मुख्य रूप से दो ग्रन्थ ही उपलब्ध होते हैं–**(1)** हर्षचरित **(2)** कादम्बरी

बाणभट्ट की लेखनी से कई ग्रन्थ रत्नों की उत्पत्ति हुई परन्तु कुछ ही ग्रन्थों की जानकारी प्राप्त होती है। जिसमें तीन अन्य ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है–

(1) चण्डी शतक **(2)** मुकुटताडितक **(3)** कादम्बरी का पद्यात्मक रूप

चण्डी शतक – चण्डी शतक में बाणभट्ट में देवी दुर्गा की स्तुति 100 श्लोकों में की गई है।

मुकुटताडितक – यह नाटक महाभारत के कथानक के ऊपर आधारित है। जिसमें भीम दुर्योधन को मारकर उसके मुकुट को तोड़ देता है। परन्तु यह नाटक अप्राप्त है।

कादम्बरी पद्यात्मक – क्षेमेन्द्र ने 'छह औचित्य विचार चर्चा' में बाण का एक पद्य कादम्बरी विरह – कथा–विषयक उद्‌धृत किया। इससे अनुमान लगाया जाता है कि, बाण ने ऐसी रचना की हो, परन्तु तीनों रचनाओं की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

13.3 महाकवि बाणभट्ट का समय

बाणभट्ट का समय निर्धारण में बहुत कठिनाई नहीं रही, हर्षवर्धन के सभापण्डित होने के नाते बाणभट्ट का समय ईसा की 7वीं शताब्दी में सिद्ध होता है। हर्ष का राज्याभिषेक अक्टूबर 606 ई० में हुआ और मृत्यु 648 ई० में हुई। ऐसा ताम्रपत्रों से प्रमाणित हो चुका है। उनके समय को लेकर कोई संशय नहीं है। परवर्ती कवियों के उद्धरणों से यह अवश्यमेव सिद्व हो जाता है। सर्वप्रथम वामन ने 800 ई० में अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार सूत्र' में कादम्बरी के एक लम्बे समास वाले गद्य को उद्‌घृत किया है। **'अनुकरोति भगवतो नारायणस्य'**। आनन्दवर्धन ने (850 ई०) ध्वन्यालोक में बाण के दोनों ग्रन्थों का उल्लेख हुआ है। राजा भोज ने (1025 ई०) सरस्वती कण्ठाभरण में बाण के पद्य की अपेक्षा गद्य की प्रशंसा 'यादृग्गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः'। इससे सिद्ध होता है कि, बाणभट्ट इनसे पहले थे।

13.4 हर्षचरित की संक्षिप्त कथा

यह महाकवि बाण की प्रथम रचना है और संस्कृत साहित्य की सबसे पुरानी आख्यायिका है।

ओजः समासभयस्त्मेतद गद्यस्य जीवितम् गद्य का जीवन समास बहुलता मानी जाती थीं।

इस आख्यायिका में कुल आठ उच्छवास हैं। प्रथम दो उच्छवासों में हर्ष के वंश का वर्णन किया गया है और अन्य छह उच्छवासों में पूर्वजों से लेकर राज्यश्री प्राप्ति तक का वर्णन है।

उच्छवास–1 और 2–

इन दो उच्छवासों का सारांश बाण के जीवनवृत्त में दिया गया है। वंश प्रवर्तक वत्स से लेकर बाण के जन्म तथा सम्राट हर्ष से उसके परिचय और राजसम्मान का वर्णन।

उच्छवास–03–

यहाँ से हर्षचरित की वास्तविक कथा प्रारम्भ होती है। बाण घर लौट आता है और अपने चचेरे भाइयों के कहने पर हर्षचरित की रचना करने बैठता है आरम्भ में श्री कण्ठ जनपद उसकी राजधानी थानेवर वंश के संस्थापक पुष्पभूति की कथा के अनन्तर तांत्रिक साधनों में उनके सहायक और भैरवाचार्य का सुन्दर वर्णन है।

चतुर्थ उच्छवास–

इसमें वंश के संक्षिप्त वर्णन के अनन्तर राजाधिराज प्रभाकर वर्धन तथा उनकी महिषी यशोमती का वर्णन है तथा इनके प्रथम पुत्र राज्यवर्धन की जन्मकथा बड़े ही विस्तार तथा रोचकता के साथ वर्णित है। हर्षवर्धन तथा पुत्री राजश्री का जन्म, राजश्री का विवाह, मौखरि वंशज राजा ग्रहवर्मा से विवाह का वर्णन किया गया है।

पंचम उच्छवास –

राजकुमार राज्यवर्धन और हर्षवर्धन की विजय गाथा प्रारम्भ होती है। हूणों के जीतने के किए राज्यवर्धन तथा हर्षवर्धन सेना के साथ प्रस्थान करते हैं। हर्ष शिकार खेलने के लिए जाता है, पिता की रूग्णता का समाचार सुनकर उसका वापस आ जाना। प्रभाकर वर्धन की मृत्यु से पूर्व ही यशोवती का सती होने का संकल्प, मृत्यु के अनन्तर हर्षवर्धन का विलाप और समस्त प्रजा का शोक संतप्त होना वर्जित है।

षष्ठ उच्छवास –

राज्यवर्धन का हूणों पर विजय प्राप्त कर लौटना, पिता की मृत्यु के समाचार से उनका विह्वल होना। हर्ष को राज्यभार देकर निवृत्त होने का प्रयास और उसी समय समाचार प्राप्त होना कि, मालवराज ने ग्रहवर्मा को मारकर बहन राज्यश्री को बन्दी बना लिया है। यह सुनकर राज्यवर्धन सेना के साथ मालवराज पर आक्रमण कर विजय प्राप्त करता है। परन्तु राजधानी लौटते समय गौड़ राजा शशांक द्वारा छलपूर्वक राज्यवर्धन की हत्या कर दी जाती है। इस शोक समाचार को सुनकर हर्षवर्धन इसका बदला लेने का संकल्प करता है।

सप्तम उच्छवास –

इस उच्छवास में हर्षवर्धन पूरी तैयारी के साथ सेनासहित प्रस्थान करके विन्ध्यदेश में पहुँचकर मालव नरेश पर आक्रमण करके उसको जीत लेता है। राज्यश्री के सपरिवार विन्ध्यवन में चले जाने की सूचना मिलने पर राज्यश्री को ढूढ़ने के लिए हर्ष का प्रस्थान तथा गौड़ नरेशपर आक्रमण के लिए भण्डि को आदेश देना वर्णित है।

अष्टम उच्छवास–

हर्ष एक निषाद की सहायता से राज्यश्री को विन्ध्याटवी में खोजते हुए दिवाकर मित्र नामक ऋषि के आश्रम में जाते हैं। एक भिक्षुक द्वारा राज्यश्री के सपरिवार सती होने की तैयारी की सूचना पाकर हर्ष का दौड़कर जाना और राज्यश्री को सती होने से बचाना। दिवाकर मित्र का राज्यश्री को सान्त्वनाप्रद उपदेश देना और हर्ष का राज्यश्री के साथ लौटकर आना, दिग्विजय विषयक प्रतिज्ञा की पूर्ति होने पर हर्ष का राज्यश्री के साथ ही गेरूआ वस्त्र का धारण करना। यही पर कथा समाप्त होती है।

बाण का यह हर्षचरित ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें तत्कालीन भारत के सांस्कृतिक एवं बौद्धिक जीवन का सफल चित्र देखने को प्राप्त होता है। हर्षचरित अपूर्ण ही प्राप्त होता है, परन्तु बाणभट्ट की कवित्व शक्ति एवं अद्भुत प्रतिभा का स्पष्ट परिचय मिलता है।

13.5 कादम्बरी संक्षिप्त कथा–

कादम्बरी बाणभट्ट की सर्वोकृष्ट रचना है। इसके दो खण्ड हैं, पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्ध। इसमें एक में काल्पनिक कथा वर्णित है। यह गद्यकाव्य का 'कथा' भेद है। इसमें चन्द्रपीड और वैशम्पायन के तीन जन्मों का विवरण है।

आरम्भ में विदिशा के राजा शुद्रक के प्रभाव तथा वैभव का परिचायक वर्णन है। इसके बराबर में एक परम सुन्दरी चाण्डाल कन्या वैशम्पायन नामक शुक को लेकर आती है जो मनुष्य की बोली बोलता है। उसे राजा को समर्पित करती है। राजा के पूछने पर तोते ने बताया कि, उसकी माता की मृत्यु हो गयी है। पिता को शिकारियों ने पकड़ लिया है। मुझे जाबालि ऋषि के शिष्य पकड़कर आश्रम में ले गए। यही पर ऋषि जाबालि के द्वारा वर्णित राजा चन्द्रपीड और मित्र वैशम्पायन की कथा आती है

पूर्वार्द्ध की कथा–

उज्जयिनी के राजा तारापीड और रानी विलासवती को तपस्या से चन्द्रपीड नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा के सुयोग्य मंत्री शुकनास के वैशम्पायन नामक पुत्र हुआ। दोनों में घनिष्ठ मित्रता थी। दोनों की शिक्षा गुरूकुल ने हुई, साथ पले बढें। उसी समय राज्याभिषेक के साथ शुकनास ने चन्द्रापीड को सारगर्भित उपदेश दिया। उसी समय इन्द्रायुध नामक घोड़ा और पत्रलेखा नामक दासी भी मिली। चन्द्रापीड और वैशम्पायन दिग्विजय के लिए निकल पड़े। किन्नर युगल का पीछा करते हुए चन्द्रापीड आच्छोद सरोवर के पास पहुंचता है। वहाँ उसका एक युवा तपस्विनी महाश्वेता से परिचय हुआ। महाश्वेता ने बताया कि, पुण्डरीक नामक ऋषि कुमार से उसका प्रेम हो गया था परन्तु मिलने से पूर्व से पुण्डरीक कामपीड़ा से दिवंगत हो गया। तत्पश्चात महाश्वेता अपनी अपनी सखी कादम्बरी से मिलाने के लिए चन्द्रापीड को ले जाती है। चन्द्रापीड और कादम्बरी दोनों के हृदय में नैसर्गिक मधुर आकर्षण उपजता है, परन्तु प्रणय की पूर्ति के पहले ही राजा अपनी राजधानी उज्जैनी लौट जाता है और वैशम्पायन को वहां से बाद में आने के लिए छोड़ देता है। ताम्बूल करकंवाहिनी पत्रलेखा कादम्बरी के वास्तविक प्रेम का संदेश लाती है और यहीं पूर्व कादम्बरी का अन्त होता है।

उत्तरार्द्ध की कथा –

बहुत समय तक वैशम्पायन के न लौटने पर चन्द्रपीड अपने मित्र को खोजने आच्छोद सरोवर पर पहुँचता है। महाश्वेता ने बताया कि, वैशम्पायन मुझपर आसक्त हो गया था इसलिए मैने उसे श्राप देकर शुक बना दिया। अपने मित्र शोक में चन्द्रापीड अपना शरीर त्याग देता है और वह भी अपना प्राण त्यागना चाहती है तभी आकाशवाणी होती है कि, शीघ्र ही तुम दोनों सरिवयों का अपने प्रेमी से मिलन होगा। जाबालि कथा यहीं समाप्त हो जाती है। ऋषि जाबालि से अपने पूर्व जन्म का विवरण सुनते ही शुक को महाश्वेता की स्मृति सताने लगती है। तोते ने राजा से कहा कि, महाश्वेता से मिलने के लिए अधीर होकर उड़ा तो मुझे चाण्डाल कन्या ने पकड़ लिया और अपने पास ले आयी है, पश्चात चाण्डाल कन्या ने राजा को बताया मैं पुण्डरीक पूर्व जन्म वैशम्पायन की माता हूँ। आप भी पूर्व जन्म में चन्द्रापीड थे।

यह सुनते ही राजा शुद्रक को कादम्बरी की तीव्र स्मृति हो गयी। तोते की कथा समाप्त होते ही पुण्डरीक महाश्वेता का पुनर्मिलन हो गया। वे प्राणी युगल सुख पूवर्क अपना जीवन बिताने लगे। भले ही बाण ने बृहद कथा से कादम्बरी की कथा का स्रोत ग्रहण किया हो, ऐसा कुछ विद्वानों का मत है तथापि बाणभट्ट की कादम्बरी संस्कृत साहित्य में अनुपम और अद्वितीय है। कादम्बरी गद्य साहित्य का मौलिक और उत्कृष्ट रत्नग्रन्थ है।

कादम्बरी में एक ओर भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर कल्पनाओं की मनोरम उड़ान है। एक ओर अर्थगौरव है, तो दूसरी ओर मनोज्ञ शब्दावली का संचयन, एक तरफ प्रसाद और माधुर्य की मधुर मुस्कान है तो दूसरी ओर ओज की प्रौढ़ गम्भीरता, एक ओर सम्भोग–शृङ्गार की उद्दमता है तो दूसरी ओर विप्रलम्भ शृङ्गार की भाव प्रवणता। सभी रसों का सुन्दर समुच्चय तो प्रकृति की सुन्दर छटा। न केवल बाह्य सौन्दर्य से ही सहृदयों को आकृष्ट करते हैं, अपनी भाव, भाषा प्रस्तुतीकरण से नीरसता में सरसता का संचार कर देते हैं। पम्पासरोवर का वर्णन करते हुए कोमलकान्त पदावली का सुन्दर वर्णन किया है।

'उत्फुल्लकुमुदकुवल पकंह्रम्....... अनेक जलचर पतङ्गशत संचलन चलित–वाचाल वीचि मालम्'।

इस कोमल कान्त पदावली के अतिरिक्त विन्ध्याटवी, शबरसेनापति मंदिर, सरोवर आदि के वर्णनों में विषय के अनुकूल कठोर दीर्घकाय समासयुक्त वाक्यावली का प्रयोग अद्भुत रचना शक्ति एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। बाणभट्ट के पास अक्षय शब्द भण्डार, शास्त्रीय ज्ञान की निधि और कवि सुलभ संवेदनशीलता है। इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर अनेकानेक कवियों ने उनके विभिन्न गुणों का गुणगान किया है।

मधुराविजय की लेखिका गंगादेवी को बाण की रचना में सरस्वती की वीणा की झङ्कार सुनाई देती है।

13.7 महाकवि बाणभट्ट की गद्यशैली–

बाणभट्ट की नूतन गद्यशैली का स्वरूप उनकी कृतियों में देखने को मिलता है। बाण संस्कृत गद्य–काव्य के मूर्धाभिसिक्त सम्राट हैं। बाण ने गद्य में पद्यों की अपेक्षा अधिक चमत्कारिक प्रदर्शन किया है। बाण ने केवल अलंकारों की चमत्कृति से युक्त रचना में बड़े–बड़े शब्दों के जाल को अपनी कृति में स्थान नहीं दिया है। अपितु बाणभट्ट ने भाव और भाषा दोनों का अनुपम समन्यवय अपनी गद्य शैली में किया है। उनकी रीति पाञ्चाली है। पाञ्चाली रीति की विशेषता है कि, उनमें शब्द और अर्थ का समन्वय सन्तुलित होता है। **'शब्दार्थयो समो गुम्फः पांञ्चाली रीति रिष्यते'** (सरस्वती कण्ठाभरण) बाणभट्ट ने इसका पूर्णतया पालन करते हुये हमारे समक्ष सर्वोत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया है। बाणभट्ट ने सभी रूचि के व्यक्तियों के लिये यह कामना की है कि, उनके ग्रन्थ का आनन्दानुभाव कर सके। इस श्लोक में बाण ने अपनी भावना व्यक्त की है।

श्लेषप्रायमुदीच्येषु प्रतीच्येष्वर्थ मात्रकम्।
उत्प्रेक्षा दक्षिणात्येषु गौडेष्वक्षरडम्बरः।। (श्लोक 7–हर्षचरित)

उदीच्य यानि उत्तर के कवि श्लेष आदि अलंकारों पर बल देते हैं। प्रतीच्य (पश्चिम के) कवि केवल अर्थ गौरव और अर्थगाम्भीर्य पर बल देते हैं। दाक्षिणात्य (दक्षिण के) कवि उत्प्रेक्षा पर बल देते हैं और गौड़ (वंगीय) कवि शब्दाडम्बर पर बल देते हैं। अतएव बाण ने नवीन शैली के सारे दुर्लभ गुण एक साथ एकत्र किये। चमत्कारिक अर्थ उत्कृष्ट स्वभावोभित सरल श्लेष प्रयोग, सुन्दर रसाभिव्यक्ति और ओजगुण युक्त शब्दों की योजना ।

"नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटोरसः।

विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।। (हर्षचरित – 8)

बाण की रचना में उपर्युक्त ये सभी गुण सम्यक रूप से विद्यमान है। ये सभी गुण बेशक हर्षचरित में चरम पर प्राप्त नहीं हुए परन्तु कादम्बरी में इसका परिपाक और परिष्कार दृष्टिगोचर होता है।

कादम्बरी में एक ओर भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर कल्पनाओं की मनोरम उड़ान है। एक ओर अर्थगौरव है तो दूसरी ओर मनोज्ञ शब्दावली का संचयन, एक तरफ प्रसाद और माधुर्य की मधुर मुस्कान है तो दूसरी ओर ओज की प्रौढ़ गम्भीरता, एक ओर सम्भोग शृङ्गार की उद्दामता है तो वहीं दूसरी तरफ विप्रलम्भ शृङ्गार की भाव प्रवणता। सभी रसों का सुन्दर समुच्चय के साथ प्रकृति की सुन्दर छटा का अवलोकन भी होता है। वे न केवल बाह्य सौन्दर्य से ही सहृदयों को आकृष्ट करते हैं, अपनी भाव, भाषा के प्रस्तुतीकरण से नीरसता में भी सरसता का संचार कर देते हैं।

रस कोमलकान्त पदावली के अतिरिक्त विन्ध्याटवी, शबरसेनापति मंदिर, सरोवर आदि के वर्णनों में विषय के अनुकूल कठोर दीर्घकाय समासयुक्त वाक्यावली का प्रयोग अद्भुत रचनाशक्ति एवं प्रकाण्ड पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है। बाणभट्ट के पास अक्षय शब्द भण्डार, शास्त्रीय ज्ञान की निधि और कवि सुलभ संवेदनशीलता है। इन्हीं गुणों पर मुग्ध होकर अनेकानेक कवियों ने उनके विभिन्न गुणों का गुणगान किया है।

मथुरा विजय की लेखिका गंगादेवी को बाण की रचना में सरस्वती की वीणा की झंकार सुनाई देती है।

वाणीपाणिपरामृष्ट–वीणानिक्वाण हारिणीम्।

भावयन्ति कथं वाऽन्ये भट्टबाणस्य भारतीम्।। (गंगादेवी)

विदग्धमुखमण्डल के लेखक धर्मदास ने मुग्ध होकर बाण की स्तुति में कहा है कि–

'रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।

सा किं तरुणी? नहि–नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।। (धर्मदास)

जिस प्रकार अधिक दक्षता प्राप्त करने के लिये शिखण्डिनी पूर्वजन्म में शिखण्डी हुआ, उसी प्रकार वाणी (सरस्वती) भी बाण (पुरुष) के रूप में अवतीर्ण हुई थीं। ऐसा गोवर्धनाचार्य का कथन है–

जाता शिखरिणी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।

प्रगल्भ्यमधिकमवाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह।। (गोवर्धनाचार्य)

वस्तुतः बाणभट्ट ने अपनी रचना में गद्य की उन सभी विशेषताओं का समावेश किया है जिसकी उत्कृष्ट गद्य के लिये आवश्यकता थी। बाण एक प्रतिभा सम्पन्न गद्य सम्राट हैं। उन्होंने किसी विषय को अछूता नहीं छोड़ा है और उन्होंने जो कुछ वर्णन कर दिया है उससे आगे कहने के लिये कुछ बचता नहीं हैं।

13.8 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'

बाण संस्कृत भाषा के सम्राट हैं। शब्दों पर उनकी अद्‌भुत प्रभुता है। चित्रण की सजीवता तथा प्रभावशालिता उत्पन्न करने के लिये बाणभट्ट ने समासबहुल ओजोगुण से मण्डित शैली के प्रयोग के साथ छोटे– छोटे वाक्यों का प्रयोग कर उन्होंने अपनी शैली को सशक्त तथा प्रभावोत्पाद्क बनाया है। बाण का वर्ण्य विषय यदि घनघोर अरण्यानी है तो कवि की वाणी उत्कट पदावली से मण्डित है। उन्होंने गद्य–साहित्य संसार के लिये जो कुछ वर्णन कर दिया है उससे आगे कुछ कहने को शेष नहीं बचता है।

बाण ने जितनी सुन्दरता, सहृदयता और सूक्ष्मदृष्टि से बाह्य प्रकृति का वर्णन किया है, उतनी ही गहराई से अन्तः प्रकृति और मनोभावों का विशलेषण किया है। बाण ने प्रत्येक वर्णन इतने सटीक ढंग से किया है कि, पाठक ग्रन्थ को पढ़ते हुये यह सोचने पर विवश हो जाये कि वह उन परिस्थितियों में क्या सोचता और क्या करता।

प्रातःकालीन वर्णन, शुक वर्णन, चाण्डालकन्या वर्णन, विन्ध्याटवी वर्णन, उज्जयिनी वर्णन, तारापीड वर्णन, इन्द्रायुधवर्णन, आच्छोद–सरोवर वर्णन, महाश्वेता वर्णन, कादम्बरी वर्णन आदि में बाण ने वर्णन ही नहीं वरन् प्रत्येक वस्तु का मूर्त चित्र प्रस्तुत कर दिया है। इसी प्रकार विलासवती पुत्रहीनता जन्य विषाद का वर्णन, चन्द्रपीड को देखकर स्त्रियों के हाव–भाव का वर्णन, कादम्बरी के प्रेमभावों का वर्णन, चन्द्रापीड को दिये गये शुकनासोपदेश में तो कवि की प्रतिभा का चरमोत्कर्ष परिलक्षित होता है। शुकनासोपदेश में ऐसा प्रतीत होता है मानो सरस्वती साक्षात् मूर्तिमती होकर बोल रही हैं–ऐसे ही कुछ मनोरम उदाहरण दिये जा रहे है।

सन्ध्या वर्णन करते हुये कवि की कल्पना कितनी उच्चकोटि की है–

ऊर्ध्वमुखै...... उष्मपैस्तपोधनैरिव परिपीयमानतेजःप्रसरो विरलातपो दिवसस्तनिमानमभजत्। उद्यत्सप्तर्षिसार्थस्पर्शपरिजिहीर्षयेव रविरम्बरतलाद्‌लम्बत। क्वापि विहृत्य दिवसावसाने लोहिततारका तपोवनधेनुरिव कपिला परिवर्तमाना सन्ध्या मुनिभिरदृश्यत। अपराम्भसि पतिते दिनकरे.... अम्भःसीकरनिकरमिव तारागणमम्बरमधारयत्।।

उर्ध्वमुख ऋषियों ने सूर्य का तेज पी लिया है, अतः उनका तेज मन्द पड़ गया है। सप्तर्षियों को पैर न लग जाये, इसलिये मानो सूर्य ने अपने पैर समेट लिये हैं। तपोवन की धेनु की तरह सन्ध्या मानो दिनभर कहीं घूम कर अब आ गयी है। सूर्य के पश्चिम समुद्र से जो बूंदे उठीं वो मानों तारे हो गये।

ऋषि जाबालि के वर्णन में कला और कल्पना का सुन्दर समन्वय दृष्टव्य है–

स्थैर्येणाचलानां गाम्भीर्येण सागराणां तेजसा सवितुः प्रशमेन तुषाररश्मे निर्मलतयाम्बरतलस्य संविभागमिव कुर्वाणम्,.... शन्तनुमिव प्रियसत्यव्रतम्......पशुपतिमिव भस्मपाण्डुरोमाश्लिष्टशरीरं भगवन्तं जाबालिमपश्यम्।। (कादम्बरी–पृष्ठ 76)

कादम्बरी के सौन्दर्य के वर्णन में उत्प्रेक्षा, उपमा, श्लेष अलंकारों की छटा दर्शनीय है–

देहार्थ प्रविष्ट हर गर्वितगौरीविजिगीषयेव सर्वाँनुप्रविष्टमनमथदर्शित सौभाग्यविशेषाम्... गौरीमिव श्वेतांशुकरचितत्तमौँभरणाम....... आकाश कमलिनीमिव स्वच्छम्बरदृश्यमानमृणालकोमलोरुमूलाम्... कल्पतरुलतामिव कामफलप्रदाम्.... कादम्बरीं ददर्श।।

विन्ध्याटवी–वर्णन में समासभूयस्तव, ओजगुण और विरोधाभास का तालमेल दर्शनीय है–

उन्मादमातङ्ग कपोलस्थलगलितमदसलिलसिक्तेनेव निरन्तरमेलालतावनेनमदगन्धिनान्धकारिता, ... प्रेताधिपनगरीव सदासंनिहितमृत्युभीषणा महिषाधिष्ठिता च,..... क्रूरस्त्वापि मुनिजनसेविता, पुष्पवत्यपि पवित्रा विन्ध्याटवी नाम।

शुकनासोपदेश में लक्ष्मी स्वभाववर्णन में विरोधाभास् का मनोहर प्रयोग है–

उन्नतिमादधानाऽपि नीचस्वभावतामाविष्करोति। अमृत सहोदरापि कटुकविपाका। विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना पुरुषोत्त्मरतापि खलजनप्रिया। (कादम्बरी–पृष्ठ 173)

शुकनासोपदेश में चपला लक्ष्मी के दोष–वर्णन में प्रसाद, प्रवाह, छोटे वाक्य, माधुर्य और वक्रोक्ति का समन्वय किस सहृदय का हृदय आह्लादित नहीं करा देता है–

न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रुपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारमति।। (कादम्बरी – पृष्ठ 171)

बाण के गद्य में सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति, चमत्कृत वर्णन प्रणाली, अक्षयशब्द राशि तथा कल्पना प्रसूत मौलिक अर्थों की उद्भावना विशेष रूप से पायी जाती है। बाण की रचना में अलङ्कार स्वयं प्रकट हो जाते हैं। श्लेष, परिसंख्या और विरोधाभास वाले स्थल आयाससाध्य हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक के उदाहरण पद–पद पर प्राप्त होते हैं। उज्जयिनी वर्णन में परिसंख्या अलङ्कार का प्रयोग करते हुये वर्णन किया गया है कि–

यस्यां चानिवृत्तिर्मणिप्रदीपानाम्, अन्तस्तरलता हाराणाम्.... द्वन्द्ववियोगश्चक्रवाकनाम्नाम्, वर्णपरीक्षा कनकानाम, अस्थिरत्वं ध्वजानाम्, मित्रद्वेषः कुमुदानाम्, कोशगुप्तिरसीनाम्। (कादम्बरी– पृ0सं0 91)

अर्थात केवल मणि दीपों में ही अनिर्वाण (न बुझना) था, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसे मोक्ष प्राप्ति न हो। चकवा–चकवी के युगल का ही वियोग होता था, अन्य किसी के जोड़े का वियोग नहीं होता। वर्ण (जाति) परीक्षा सोने की ही होती थी, अन्य की नहीं। ध्वजाओं में ही अस्थिरता थी अन्यत्र नहीं। कुमुद ही मित्र से द्वेष करते थे अन्य कोई मित्रद्वेषी नहीं था।

नायिका के यौवन का वर्णन बहुत ही सुन्दर ढंग से प्रकृति की सुन्दरता के साथ किया गया है कि– महाश्वेता में नवयौवनावस्था का प्रवेश उसी प्रकार हुआ जैसे वसन्त में चैत्रमास, चैत्रमास में नवपल्लव, नवपल्लव में फूल, फूल में भौंरा, भौंरे में मद। एकावली अलंकार का बहुत ही सुन्दर वर्णन है।

क्रमेण च कृतं मे वपुषि वसन्त इव मधुमासेन, मधुमास इव नवपल्लवेन, नवपल्लव इव कुसुमेन, कुसुम इव मधुकरेण, मधुकर इव मदेन नवयौवना पदम्।। (कादम्बरी–पृष्ठ 221)

उपर्युक्त वर्णनों में बाण की सूक्ष्म दृष्टि, भाव भाषा अलंकारों के सुन्दर समन्वय, कल्पनाओं की ऊंची उड़ान, रसों का परिपाक अन्तर्भावों के मार्मिक विशलेषणने सहृदयों को यह कहने पर बाध्य कर दिया है कि **''बाणोच्छिष्ट जगतसर्वम्''**।

13.9 बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न –

प्रश्न 1 – सुबन्धु किनके समकालीन थे तथा समय काल का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2 – बाण के कर्तृत्व के बारे में लिखिए।

प्रश्न 3 – दण्डी की कृतियों का विषयवस्तु बताइए।

प्रश्न 4 – कथा और आख्यायिका में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न –

प्रश्न 1 – बाणभट्ट की गद्यशैली का विस्तार से वर्णन कीजिये?

प्रश्न 2 – कथा और आख्यायिका में अन्तर बताते हुये गद्यकाव्य की उत्पत्ति के बारे में प्रकाश डालिये।

प्रश्न 3 – दशकुमारचरित की संक्षेप में कथा लिखते हुये दण्डी की शैली का वर्णन कीजिये।

प्रश्न 4 – ''बाणोच्छिष्ट जगतसर्वम्'' की व्याख्या कीजिये।

प्रश्न 5 – सुबन्धु की गद्यशैली का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6 – गद्यकाव्य के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।